श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदास कृत

विनय-पत्रिका

जो

अत्यन्त शुद्ध हस्तलिखित प्रामाणिक प्राचीन
प्रतियों के आधार पर शुद्धता-पूर्वक
सम्पादित हुई है

और

जिसकी टीका

ज्ञानपुर-निवासी पण्डित महावीरप्रसाद
मालवीय वैद्य उपनाम "वीर कवि"

ने

भावार्थ के अतिरिक्त शङ्का-समाधान, कथानकों की टिप्पणी, रस, भाव, ध्वनि,
अलंकारादि से विभूषित अत्यन्त मनोहारिणी सरल हिन्दी-भाषा में की है।

प्रकाशक
बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग

संवत् १९८० विक्रमाब्द

प्रथम बार] मूल्य २॥)

चित्र-परिचय

विनय-पत्रिका में चार एक रंग के और एक रंगीन कुल पाँच चित्र लगे हैं। टीकाकार और स्वामी श्रीरामजी के चित्रों का परिचय कराने की कोई आवश्यकता नहीं है। गोस्वामी तुलसीदासजी की भिन्न भिन्न अवस्था के भिन्न भिन्न चित्रकारों के बनाये तीन चित्र हैं, उनका परिचय जहाँ तक ऐतिहासिक पुस्तकों और किम्वदन्तियों द्वारा उपलब्ध हुआ वह नीचे प्रकाशित किया जाता है।

(१) प्रथम एक रंग के चित्र को बादशाह अकबर के चित्रकारों ने सम्वत् १६२५ विक्रमाब्द के लगभग बनाया, उस समय गोस्वामीजी की अवस्था ३६ वर्ष की थी और वे तपश्चर्या में अनुरक्त थे। इतिहास से पता चलता है कि सम्राट अकबर अपनी राजसभा में प्रत्येक मत के विद्वानों को रखने का अनुरागी और प्रसिद्ध पुरुष तथा महात्माओं के चित्रों का संग्रह कर अपनी चित्रशाला सजवाने का बड़ा शौक़ीन था। अकबर का प्रसिद्ध वज़ीर नवाब ख़ानख़ाना गोस्वामीजी से परम स्नेह रखता था। बहुत सम्भव है कि यह चित्र उसी के उद्योग से बन कर शाही चित्रालय में रक्खा गया हो। पहले पहल इस चित्र को लंडन के किसी समाचार पत्र ने प्रकाशित किया और उसी के द्वारा इसका भारत में प्रचार हुआ है।

(२) दूसरा चित्र बादशाह जहाँगीर के चित्रकारों ने सम्वत् १६६५ विक्रमाब्द के लगभग निर्माण किया होगा; क्योंकि जहाँगीर सम्वत् १६६२ से १६८४ विक्रमाब्द पर्यन्त दिल्ली के राज्यासन पर विराजमान था। उस समय गोस्वामीजी की अवस्था ७६ वर्ष की रही होगी। गोस्वामीजी के जीवन-चरित्र में लिखा है कि बादशाह जहाँगीर उनसे मिलने काशी आया था। बादशाह उन पर बड़ा प्रेम रखता और पूज्य दृष्टि से देखता था। गोस्वामीजी एक बार भयंकर व्याधि से अत्यन्त पीड़ित हुए थे, सम्भव है कि उनकी बीमारी का

हाल सुन कर स्नेह वश वह काशी आया हो और उसी समय अपने चित्रकारों को चित्र लेने की आज्ञा दी हो। इसी से यह चित्र सद्यः रोगमुक्त अवस्था का मालूम होता है। उन दिनों प्रह्लादघाट पर पं० गंगाराम जोशी के यहाँ गोस्वामीजी निवास करते थे। पं० गंगाराम गोस्वामीजी के मित्रों में कहे जाते हैं, किसी प्रकार चित्रकारों से मिल कर उन्हों ने इस चित्र की प्रतिलिपि प्राप्त कर ली हो तो आश्चर्य नहीं। सुना जाता है कि वह चित्र उनके वंशजों के पास अब तक सुरक्षित है। वर्तमान काल के पं० रणछोड़लाल व्यास अपने को पं० गंगाराम ज्योतिषी का उत्तराधिकारी बतलाते हैं। उन्हों ने सन् १८१५ ई० में गोस्वामीजी की जीवनी लिखवा कर एक छोटी सी पुस्तिका प्रकाशित की है और उसमें एक रंग का वही चित्र भी प्रकाशित किया है। व्यासजी का कथन है कि यह चित्र बादशाह जहाँगीर ने सम्वत् १६५५ विक्रमाब्द में जयपुर के कारीगर से बनवाया था। परन्तु उस समय अकबर गद्दी पर था और जहाँगीर राजकुमार था, वह तो सम्वत् १६६२ में गद्दी पर बैठा था। यदि यह कहा जाय कि राजकुमार की अवस्था में ही जहाँगीर ने चित्र बनवाया तो सम्भव नहीं; क्योंकि गद्दी पर बैठने के बाद उसने एक बार गोस्वामीजी को बुलवाकर जेल में बन्द करवा दिया था। यदि वह राजकुमार की अवस्था में गोस्वामीजी का प्रेमी होता तो राज्यासन पर बैठ कर उन्हें बन्दी न बनाता। जेल में बन्द करने पर उनके महत्व से परिचित हो प्रेमी हुआ और तभी चित्र बनवाने की आज्ञा दी होगी, इसलिये पं० रणछोड़लाल का वक्तव्य इतिहास से विपरीत होने के कारण विश्वास योग्य नहीं है। उस पुस्तिका में व्यासजी ने यह भी लिखा है कि "इस चित्र की रजिस्टरी हुई है, बिना हमारी आज्ञा कोई छापे नहीं"। आप की इस अनुदारता पर हँसी आती है और घृणा उत्पन्न होती है कि जिस महापुरुष के दर्शन की लालसा हिन्दू-समाज के अतिरिक्त कितने ही विदेशीय सज्जनों के हृदय में वर्तमान है उनके चित्र को इस प्रकार प्रतिबन्ध के साथ प्रकाशित करना संकीर्णता की पराकाष्ठा नहीं तो और क्या है? काशी नागरी-प्रचारिणी सभा को सहस्रशः धन्यवाद है कि उसने इस चित्र को

चतुर चित्रकार द्वारा रोगीपन का दोष दूर करा कर बड़े साइज़ में प्रकाशित किया है। उसकी एक रंग की प्रतिलिपि (असली चित्र के अनुसार) ज्ञानमंडल-कार्यालय ने और रंगीन आवृत्ति माधुरी ने प्रकाशित की है। इस चित्र के एक प्रधान दोष पर चित्रकार और सभा ने कुछ ध्यान नहीं दिया वह दर्शकों के लिये भ्रमोत्पादक हो सकता है। सिर पर शिखा और छोटे बाल दिखाये गये हैं, वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों गोस्वामीजी फूलदार कनटोप दिये हों। गोस्वामीजी वैष्णव थे, वैष्णवों में यह रीति बहुत काल से प्रचलित है कि या तो वे शिखा के अतिरिक्त सिर दाढ़ी और मूँछ के बाल साथ ही बनवाते हैं और रखते हैं तो सब साथ ही, जैसा कि गोस्वामीजी का प्रथम चित्र है। जब दाढ़ी मूँछ में बाल की खूटियाँ नहीं हैं तब सिर पर उन्हें दिखाना अयुक्त है और असली चित्र में ऐसा प्रगट नहीं होता है। हम लोगों ने प्रवीण चित्रकार द्वारा इस दोष को दूर कराकर यह रंगीन चित्र प्रकाशित किया है। इसमें सन्देह नहीं कि संख्या १ और २ के दोनों चित्र गोस्वामी तुलसीदासजी के हैं, इनमें अन्तर केवल अवस्था भेद का है।

(३) तीसरा चित्र ग्रियर्सन साहब ने खड्गविलास प्रेस की रामायण में पहले पहल प्रकाशित कराया था, उसी के आधार पर वह अन्यान्य प्रेसों में भी मुद्रित हुआ है। यह ऊपर के दोनों चित्रों से ठीक मिलता नहीं, इससे कल्पित होने का सन्देह होता है; किन्तु ग्रियर्सन साहब की खोज सर्वथा अप्रामाणिक कहने योग्य नहीं है। कदाचित् नव्वे वर्ष की उमर में अत्यन्त वृद्धावस्था के कारण शरीर स्थूल हो गया हो उस समय यह चित्र लिया गया इससे मिलान न होता हो। बस यही तीनों चित्र गोस्वामी तुलसीदासजी के प्रामाणिक और लोकमान्य अबतक प्रसिद्ध हुए हैं। एक चित्र हिन्दी-नवरत्न में मिश्र-बन्धुओं ने प्रकाशित किया है; किन्तु वह कल्पित होने के कारण उल्लेखनीय नहीं है।
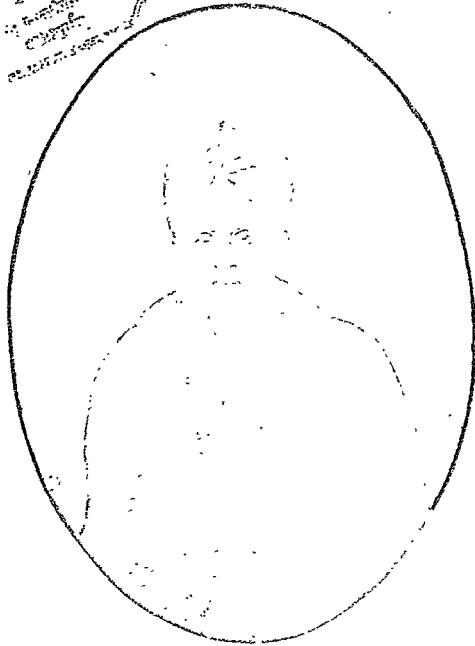
टीकाकार-पण्डित महावीरप्रसाद मालवीय "वीर कवि"

निवेदन ।

दलन दुरित भव-भीर, भूरि भाग हतभाग के * कृपासिन्धु रघुबीर, दीनबन्धु अशरण शरण ॥१॥
साहेब शील-निधान, दुर्दिन-दुर्मति-दुख-दहन * पावन जन कल्यान, चरण-शरण-श्रीराम के ॥२॥
कपि अञ्जनीकुमार, कोटि कल्पतरु तें अधिक * महिमा अगम अपार, बीर-शिरोमणि साहसी ॥३॥
पुरवनि जन-मन-काम- मारुतनन्दन की दया * हृदय बसहिं श्रीराम, दुरहिं मदादिक दोष-गण ॥४॥
को अस करुणा-अयन, थोरेही सेवा द्रवन * सुर-हित मर्दन-मदन, बीर वरद हरिभक्ति-प्रद ॥५॥
रामभक्ति-आगार, विनती तुलसीदास की * निज-मति के अनुसार, बीर सरल भाषा कियो ॥६॥
विनयपत्रिका-ग्रन्थ, राम-प्रेम-मूरति शुभग * लहइ "बीर" शुभ पन्थ, देहु अचल-मति-पावनी ॥७॥

सटीक विनय-पत्रिका —
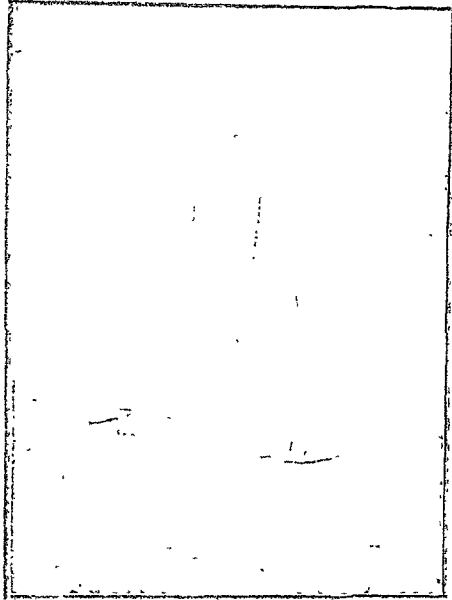
श्री ६ स्वामी श्रीरामजी।

समर्पण।

श्रीगुरुवर अंशज अमल, आशुतोष अभिराम।
करउं समर्पण तिलक यह, कर कमलन्ह श्रीराम ॥१॥
जिनकी स्वाभाविक दया, उर उपजायो धीर।
विघ्न-रहित चढ़ि अगम-मग, पार भयो कवि वीर ॥२॥

प्रस्तावना

प्रातःस्मरणीय परम पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी के बनाये ग्रन्थों में रामचरितमानस और विनय-पत्रिका का स्थान विद्वन्मण्डली में सब से श्रेष्ठ माना जाता है। रामचरितमानस के सम्बन्ध में अधिक कहने का प्रयोजन नहीं है, उसके महत्व को कौन ऐसा भारतीय होगा जो न्यूनाधिक रूप में न जानता हो ?

विनय-पत्रिका में गोस्वामीजी ने अपनी प्रगाढ़ कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। यद्यपि यह कहने के लिये भाषा का ग्रन्थ है और ग्रामीण शब्दों का अधिकांश प्रयोग है; किन्तु विषय कहीं कहीं इतने गम्भीर हैं कि उसके समझने में बड़े बड़े विद्वानों की बुद्धि चकरा जाती है। विनय-पत्रिका श्रीराम-चन्द्रजी को स्वीकार हुई है। अन्त के पद में गोस्वामीजी लिखते हैं कि इस पर रघुनाथजी के हस्ताक्षर हुए हैं। आधुनिक विज्ञानाचार्यों को चाहे इस कथन पर भले ही विश्वास न हो, परन्तु जिन माननीय रामभक्तों को गोस्वामी जी के वचनों में श्रद्धा और विश्वास है वे इस बात को ब्रह्म-वाणी के समान ही सत्य समझते हैं।

इस ग्रन्थ की रचना-शैली से इस बात की दृढ़ सम्भावना होती है कि इसके कितने ही पदों को समय समय पर भिन्न भिन्न स्थानों में गोस्वामीजी ने निर्माण किया था और ग्रन्थाकार करते समय उन पूर्व के बनाये पदों को भी सम्मिलित कर दिया। कहा जाता है कि राम-नाम का उच्चारण सुन कर काशी में गोस्वामीजी ने एक हत्यारे को शुद्ध मान कर अपने चौके में भोजन कराया। इस पर काशी के पंडितों ने बड़ा विरोध किया, जब उन लोगों ने समझाने से नहीं माना तब विश्वनाथजी के मन्दिर में पत्थर के नन्दी के सामने उस

हत्यारे के हाथ से भोजन रखवा कर कपड़-ओट कराया गया। कहते हैं कि नन्दी ने भोजन कर लिया। इस विलक्षणता को देख कर बहुत से लोग रामभक्ति में अनुरक्त हो गये। कलियुग को यह बात अच्छी न लगी, उसने गोस्वामीजी को प्रत्यक्ष में धमकाया, तब उन्हों ने दुःखी होकर हनूमानजी से पुकार मचाई। अञ्जनीकुमार ने आश्वासन दिया कि घबड़ाओ मत, तुम स्वामी की सेवा में एक विनय-पत्रिका लिखो उसको हम प्रभु के सन्मुख उपस्थित करके आज्ञा प्राप्त कर लेंगे तब ठीक होगा। कलियुग समय का राजा है, बिना रघुनाथजी की आज्ञा के हम उसे कुछ कह नहीं सकते। इसी आदेश पर तुलसीदासजी ने विनय-पत्रिका बनाई, इसकी पुष्टि २२० वें पद से बहुत कुछ हो रही है। सम्भव है कि इसके निर्माण का यही कारण हो, इसमें सन्देह नहीं कि विनय-पत्रिका के अधिकांश पदों की रचना गोस्वामीजी ने सङ्कट के समय में की है।

जिस प्रकार रामायण में पाठान्तर की भरमार है, उसी तरह विनय-पत्रिका में भी लोगों ने मनमानी घरजानी करके इसके असली रूप को और का और ही बना दिया। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिये हमने बम्बई, लखनऊ, कानपुर, मुरादाबाद, प्रयाग, काशी, पटना और कलकत्ता आदि नगरों की छपी मूल और सटीक सैकड़ों प्रतियाँ मँगवाईं; परन्तु उनसे पाठान्तर का सन्देह निवृत्त होना तो दूर रहा उलटे भ्रम ही बढ़ता गया, फिर मैं प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों की खोज में प्रवृत्त हुआ। कई वर्ष के अनवरत उद्योग से हस्तलिखित विनय-पत्रिका की चार प्रतियाँ प्राप्त हुईं। उनमें एक प्रति मिरज़ापुर-निवासी पंडित रामगुलामजी द्विवेदी की प्रति से संवत् १८८५ विक्रमाब्द की लिखी हुई, दूसरी सम्वत् १८३७ की, तीसरी संवत् १८५४ की और चौथी सम्वत् १७७४ विक्रमाब्द की लिखी चित्रकूट से स्वामी श्रीरामजी के द्वारा प्राप्त हुई। इसी चतुर्थ प्रति के आधार पर हमने सर्वत्र मूल पाठ रक्खा है और प्रथम प्रति से भी बड़ी सहायता मिली है। यथासाध्य कवि-कृत पाठ की पूरी खोज की गई है और खटक आदि छन्द दोषों के निवारण करने में पूरा ध्यान रक्खा

गया है। गोस्वामीजी के हाथ की लिखी विनय-पत्रिका दुष्प्राप्य है, इससे विश्वस्त प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के सिवा विशुद्ध मूलपाठ के पता लगाने का उत्तम मार्ग ही कौन सा है? प्रतियों का आधार छोड़ कर शब्दों की बात दूर रहे, हमने कहीं मात्रा भी नहीं घटाई बढ़ाई और न ऐसा करने का मुझे कुछ अधिकार ही है।

अब इस बात की आवश्यकता है कि इस पाठ के अनुसार सरल हिन्दी-भाषा में टीका होनी चाहिये। पर विनय-पत्रिका के पद्यों का अर्थ-गाम्भीर्य विचार कर और अपनी अल्पज्ञता को देखते हुए किं कर्त्तव्य विमूढ़ होना पड़ा है। ऐसे जटिल ग्रन्थ की टीका लिखने का साहस करना मुझ सरीखे अल्पज्ञ के लिये निरी धृष्टता और उपहास का कारण होगा। इस असमञ्जस ने हृदय को बहुत ही डाँवाडोल मचा रक्खा है, तो भी मन में यह भरोसा रख कर कि—"सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिँ राम-कृपालु। उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु"। वे दया निधान अवश्य मेरी सहायता करेंगे बस इसी बल पर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार विनय-पत्रिका की टीका तैयार करके रामानुरागी सज्जनों के सामने उपस्थित करता हूँ। यद्यपि इसके प्रत्येक पद्यों की व्याख्या करने में इस बात का पूरा ध्यान रक्खा गया है कि गोसाँईजी के अभिप्राय को मैं बिना किसी घटाव बढ़ाव के सीधे शब्दों में प्रगट करूँ; किन्तु इसमें मुझे कितनी सफलता हुई है इसका निर्णय विज्ञ रामभक्तों और विद्वानों द्वारा हो सकता है। विनय-पत्रिका के सङ्ग में पड़ कर मेरी टूटी फूटी भाषा भी आदरणीय समझी जायगी; क्योंकि सुसङ्ग से सभी को बड़ाई मिली है। जिनकी बुद्धि रामभक्ति के रङ्ग में सराबोर है और जिन्हें रघुनाथजी के चरणों में अनुराग है वे महानुभाव इस अमूल्य रत्न का समुचित आदर करेंगे।

विनय-पत्रिका में ग्रन्थकर्त्ता ने अरबी और फ़ारसी भाषा के शब्दों का अधिकांश प्रयोग किया है, उनमें कुछ शब्दों की सूची संग्रह करके हम आगे प्रकाशित करते हैं। इसीसे व्याख्या में कहीं कहीं उक्त भाषाओं के शब्दों के प्रयोग मिलेंगे। जब कि विदेशीय भाषा के शब्दों को ग्रन्थकार ही ने मूल में

वराव नहीं किया, तव टीका में उसका प्रयोग होना विरुद्ध नहीं है। यदि हिन्दी-प्रेमी पाठक इसे अनुचित समझें तो इसके लिये हमें क्षमा करेंगे।

टीका का क्रम इस प्रकार रक्खा गया है। प्रत्येक पदों की संख्या का अङ्क उनके ऊपर दिया है, फिर दे दे चरण मूल के लिख कर उनमें भी अङ्क लगाये गये हैं। उनका अक्षरार्थ नीचे लघु अक्षरों में उल्लेख कर मूल के अङ्क लगा कर वह पंक्ति छोड़ दी गई है। उसके नीचे टिप्पणी में व्यङ्ग, भाव, अलङ्कार और कहीं कहीं ऐतिहासिक कथाओं का वर्णन है। शब्दार्थ का विस्तार टीका में इसलिये नहीं किया गया है कि विनय-पत्रिका के सम्पूर्ण शब्दों के अकारादि क्रम से संग्रह करके हमने एक 'विनयकोष' तैयार किया है, उसमें प्रत्येक शब्दों के पर्य्यायी नाम और ऐतिहासिक शब्दों के इतिहास विस्तार-पूर्वक लिखे गये हैं। विनयकोष पास में रहने से साधारण समझ का मनुष्य भी 'विनय' के पदों का आसानी से अर्थ लगा सकता है। शब्दज्ञान के लिये कोष का निरीक्षण परमावश्यक है, वह भी आगे चल कर प्रकाशित किया जायगा—

अन्त में बेलवेडियर प्रेस के स्वामी श्रीमान् बाबू भक्तशिरोमणिजी को मैं धन्यवाद देता हूँ जिन्हों ने इस अनुपम ग्रन्थ को उत्साह-पूर्वक प्रकाशित कर के नामानुसार गुण का परिचय दिया है।

मि० चैत्र शुक्ल ५ सोमवार
संवत् १९८० विक्रमाब्द।

सज्जनों का कृपाकांक्षी
महावीर प्रसाद मालवीय
'वीर कवि'
ज्ञानपुर—बनारस स्टेट।

अरबी भाषा के शब्द। अकसर, इहाता, आम, कबूल, कहर कुल, ख़याल, ख़लल, ख़ाम, ग़नी, ग़रीब, ग़ार, ग़ुलाम, ग़ोता, तकिया, ताज, तूल, दाम, दीवान, नियत, फ़हम, बाकी, मनशा, मना, महल, मालूम, मिसकीन, मुक़ाम, मुसाहिब, रद्द, लायक़, वसीला, शतरञ्ज, सर्द, सदी, साहेब, सूम, हाल।

फ़ारसी भाषा के शब्द। अगर, कस, कूच, ख़रगोश, ख़ाक, गप, गरम, गार, गुल, चारह, ज़हर, जहान, जान, ज़ोर, दग़ाबाज़, दरबार, दरमान, दाग़, दाद, दार, नरम, निवाज, निशान, पील, बन्द, बलन्द, बाज, बाज़ीगर, बानी, बार, बारी, बैरक, यार, रुख़ शरम, शहर, शाख़, सौदा।

ईश-प्रार्थना

विप्रबन्धु खल पतित अजामिल, गज गनिका अघ-मूल ।
व्यभिचारिनी तीय पाहन को, नास भयउ सब सूल ॥
जा की कृपा मूक बानी लहि, होत जगत बाचाल ।
कीन्हें सुगम मनोरथ दुर्गम, सो प्रभु दीनदयाल ॥१॥

तिलक-जयन्ती

उनइस सौ अस्सी सम्बत्सर, चैत शुक्ल शशिवार ।
नौमी तिथि शुभ राम जन्मदिन, अति पुनीत सुख सार ॥
विनय-पत्रिका तिलक सुहावन, सज्जन प्रद अभिराम ।
पूरन भयउ वीर मनभावन, लहि प्रसाद श्रीराम ॥२॥

(चित्र-संख्या १)

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

अवस्था ३९ वर्ष।

दो०—रामचन्द्र पद प्रीति दृढ़, त्यागि जगत की आस।
संतराज सादर जपत, कविवर तुलसीदास॥

विनय-पत्रिका के पदों की सूची।

रामकथा

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग। अवस्था ७६ वर्ष।

'संगीतशास्त्र प्रकाण्ड कोविद, नाम में विश्वास।
रामभक्त प्रसिद्ध कवि,-सम्राट तुलसीदास॥

रामचरित मानस

हमारे यहाँ के छपे 'रामचरितमानस' के सम्बन्ध में कतिपय प्रसिद्ध हिन्दी और अंग्रेज़ी के समाचार पत्रों ने कैसी सम्मति प्रदान की है, उसमें से कुछ नीचे प्रकाश की जाती है।

"आज" रविवार सौर १७, असाढ़ सं० १९८० वै०

सटीक, सचित्र और सजिल्द रामायण। टीकाकर ज्ञानपुरनिवासी पंडित महावीरप्रसाद, मालवीय वैद्य उपनाम 'वीर कवि'। प्रकाशक बेलवेडियर प्रेस प्रयाग। आकार डबलक्राउन अठपेजी (बड़े पन्ने) पृष्ठसंख्या १४०० से ऊपर। मूल्य ८) प्रकाशक से प्राप्य।

इस तुलसीकृत रामायण का सम्पादन "अत्यन्त शुद्धतापूर्वक प्रामाणिक और प्राचीन हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर" हुआ है। पण्डित महावीर प्रसाद मालवीय हिन्दी भाषाके एक पुराने कवि हैं। उन्होंने सरल-हिन्दी भाषा में इसकी टीका की है। टीका अच्छी हुई है और अपनी कुछ विशेषता भी रखती है। इसमें क्षेपक का नाम नहीं है। क्षेपक देनेवालों ने रामायण और इसके रचयिता की मानमर्यादा की परवा न रख कर केवल भोले-भाले पाठकों की रुचि के लिहाज से तथा बिक्री बढ़ाने के विचार से रामचरित मानस को भ्रष्ट सा कर रक्खा था। हर्ष की बात है कि अच्छे ग्रन्थ प्रकाशकों ने इस दोष से गोसाईंजी की कीर्ति को बचाने का प्रयत्न किया है और सुधी समाज में उनके प्रयत्न का आदर भी हुआ है। बीस पचीस वर्ष पहले जहाँ क्षेपक पर क्षेपक मिलाकर रामायण छापना ही अच्छा समझा जाता था वहाँ अब क्षेपक से बिलकुल बचना और यथासंभव गोसाईंजी के अच्छरौटी पर उन्हीं के नाम करणानुसार रामचरित-मानस प्रकाशित करना ही उत्तम माना जाता है। उसी उत्तम और विद्वत्प्रिय प्रथा का अनुसरण बेलवेडियर प्रेस ने भी किया है। टीका की भाषा भी पहले पंडितानियाँ ब्रजभाषा मिश्रित या खिचड़ी सी

होती थी, अब खड़ी बोली रक्खी जाने लगी है। इस टीका की भाषा भी बहुत शुद्ध और वर्तमान हिन्दी है। अर्थ सरल रखा गया है, क्लिष्ट कल्पना या आडम्बर से काम नहीं लिया गया है अर्थ के साथ अलङ्कार दिया है जो कविता प्रेमियों और ऊँचे दर्जे के छात्रों के लिये अधिक उपयोगी है। इस दृष्टि से इस टीका की उपादेयता इस बात से और बढ़ गयी है कि रामायण के अन्त में मानस पिंगल देकर इसमें आये हुए सब छन्दों के लक्षण समझा दिये गये हैं। यह कवि टीकाकार की विशेषता है। प्रत्येक सोपान के अन्त में यह लिख दिया है कि कौन कौन छंद कितने कितने हैं। मानस-पिंगल में सब सोपानों (कांडों) की छंद-संख्या इकट्ठी दे दी है। शंका-समाधान, कथान्तरों की टिप्पणी रस भाव ध्वनि आदि से भी यह रामायण विभूषित की गयी है। कुछ चित्र भी हैं जो थोड़े होने पर भी चित्र कहलाने योग्य हैं, खोगीरकी भर्ती नहीं है। दो चित्र* रंगीन हैं एक फुलवारी लीला (गिरिजा-पूजन) का और दूसरा चित्रकूट निवास का। दोनों सुन्दर, भावपूर्ण हैं, दर्शनीय हैं। गंगापार करने का एक चित्र एक रंग का होने पर भी खासा बना है नाव की शकल महाराजा बनारस की मोरपंखी की याद दिलाती है।

इस रामायण में कागज़ अच्छा लगाया गया है। छपाई बहुत साफ़ बेलवेडियर प्रेस के नाम के अनुसार ही हुई है। अक्षर बड़े हैं। अन्त में गोसाइँ तुलसीदास का जीवनचरित है। उसमें गोसाईंजी के तीन विवाह होना लिखा है। सारांश, यह सटीक रामचरितमानस प्रायः हर तरह से अच्छा है और संग्रह करने योग्य है। हमारी समझमें रामायण प्रेमी इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

---

*एक रंगीन चित्र अशोक वाटिका का और लगाया गया है, यह भी अति दर्शनीय है।

"लीडर" शुक्रवार ता: २४ अगस्त सन १९२३ ई०

(अंग्रेजी का अनुवाद)

रामायण की एक नवीन आवृत्ति। बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, ने अभी हाल ही में तुलसीदास कृत रामायण की एक नवीन आवृत्ति प्रकाशित की है जिसकी टीका पं० महावीर प्रसाद मालवीय उपनाम 'वीर कवि' ने की है। इस पुस्तक में कुल लगभग १४०० पृष्ठ हैं जिसका मूल्य ८) रुपया है। पाठ उत्तम, हस्तलिखित प्रतियों के मिलान से लिखा गया, क्षेपकरहित और शुद्ध है। इसकी टीका गद्य प्रचलित हिन्दी में इस प्रकार लिखी गई है कि सामान्य पढ़े लिखे मनुष्य भी सहज में समझ सकते हैं। कथानकों के वर्णन तथा अन्यान्य टीका टिप्पणियों से इसकी उत्तमता और भी बढ़ गई है। अन्त में रामायण के छन्दों का एक पिंगल तथा तुलसीदास की विस्तृत जीवनी विश्वस्त सूत्रों से अनुसन्धान करके लिखी गई है। कुछ चित्रों ने पुस्तक का सौन्दर्य बढ़ा दिया है। यह पुस्तक हिन्दूसमाज में आदर पाने के योग्य है।

"भारतमित्र" ता० १० सितम्बर सन् १९२३ ई०

भक्तशिरोमणि कविश्रेष्ट गोस्वामी तुलसीदासजी के सर्वप्रिय और सर्वमान्य रामायण "रामचरितमानस" की यह टीका ज्ञानपुर-निवासी भगवद्भक्त पण्डित महावीर प्रसाद मालवीय "वीर कवि" ने की है। प्रकाशक है बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद; और मूल्य ८) । सुप्रसिद्ध रामायणी स्वर्गीय पण्डित रामगुलामजी द्विवेदी द्वारा संवत् १८४५ में प्रकाशित रामायण की क्षेपकरहित प्रति के अनुसार ही इसमें मूल पाठ रक्खा गया है। काशी नागरी-प्रचारिणी सभा तथा लाला सीताराम द्वारा प्रकाशित प्रतियों से भी मिलान किया गया है। टीका का क्रम इस प्रकार है कि पहले मूल पद्य (दोहा चौपाई आदि) रख कर उसके नीचे उसका सरल अर्थ दिया है और फिर इसके बाद संक्षेप में "कथान्तरों की टिप्पणी, शंका-समाधान, रस,भाव, ध्वनि, अलंकारादि" से युक्त व्याख्या की गई है। रामचरितमानस के इस सरल अर्थ और टीका का बहुत सा अंश हम देख गये और हमारी सम्मति में यह टीका प्रामाणिक और बहुत उपयुक्त हुई है। टीकाकार ने इस टीका के लिखने में

जो परिश्रम किया है वह पूर्ण सफल हुआ है और ऐसी सुन्दर टीका से रामायण के प्रेमियों का उपकार अवश्यम्भावी है। इस प्रकार सातों काण्ड रामायण की टीका करके टीकाकार ने रामचरितमानस में प्रयुक्त छन्दों के लक्षण, पिंगल शास्त्र के अनुसार बतलाने के लिये "मानस-पिंगल" नाम से उन छन्दों की सूची और उनका परिचय दे दिया है। और फिर अन्त में गोसाईंजी का जीवनचरित भी जोड़ दिया गया है। मूल रामचरितमानस और उसकी टीका १२६७ पृष्ठों में सम्पूर्ण हुई है और शेषोक्त दो प्रकरण ४० पृष्ठों में। छपाई सफ़ाई भी प्रशंसनीय है! गोसाँई तुलसीदास, टीकाकार के गुरुदेव और स्वयं टीकाकार के चित्रों के अतिरिक्त कथा प्रसंग के भी तीन रंगीन और एक एकरंग का चित्र दिया गया है। इस प्रकार ग्रन्थ का बहिरंग और अन्तरंग दोनों ही सुन्दर है और यह सर्वांग सुन्दर ग्रन्थ लोकादर का पात्र और सर्वथा ग्राह्य है।

भूतपूर्व 'सरस्वती' सम्पादक पण्डित महवीर प्रसाद द्विवेदी रामचरितमानस की टीका के सम्बन्ध में टीकाकार के पास ता: १७ सितम्बर सन १९२३ ई० की चिट्ठी में इस प्रकार अपनी सम्मति प्रकट करते हैं–

रामायण का यह संस्करण बहुत अच्छा निकला। प्रेस ने उसकी मनोहरता और उपादेयता बढ़ाने में कोई कसर नहीं की। टीका भी आपने बड़े श्रम से और ख़ूब समझ बूझ कर लिखी है। ऐसी कितनी ही बातें आप की टीका में हैं जो औरों में नहीं पाई जातीं। आप की रामायणज्ञता प्रशंसनीय है। अनेक जगह मैं ने टीका पढ़ी और मुझे पसन्द आई।

मैं रामायण का प्रेमी हूँ। उसकी समालोचना करना मेरी शक्ति के बाहर की बात है। क्योंकि प्रेमपात्र में गुण ही गुण देख पड़ते हैं और समालोचना में दोषों का भी पंडितों को निदर्शन करना पड़ता है।

(चित्र संख्या ३)

बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग।

अवस्था ८० वर्ष।

दो०—रामचरण वन्दन करत, हृदय अटल विश्वास।
भक्तशिरोमणि पूज्यवर, अर्चक तुलसीदास॥

श्रीगणेशाय नमः

श्रीजानकीवल्लभो विजयते

श्रीमद् गोस्वामि तुलसीदासजी-कृत

विनय-पत्रिका

(१)

राग बिलावल ।

गाइय श्रीगनपति जगबन्दन । सङ्कर सुवन भवानी नन्दन ॥
सिद्धि सदन गज बदन बिनायक । कृपासिन्धु सुन्दर सब लायक ॥१॥
मोदक प्रिय मुद मङ्गल दाता । बिद्या बारिधि बुद्धि बिधाता ॥
माँगत तुलसिदास कर जोरे । बसहिं राम-सिय मानस मोरे ॥२॥

जिनकी संसार वन्दना करता है, जो शङ्कर और पार्वतीजी के आनन्द-दायक पुत्र हैं। सिद्धियों के स्थान, हाथी के समान मुखवाले, माननीय, कृपा के समुद्र सुन्दर और सब प्रकार से योग्य हैं ॥१॥ जिनको लड्डू प्यारा है और जो आनन्द-मङ्गल के देनेवाले, विद्या के सागर तथा बुद्धि के ब्रह्मा (उत्पन्न करनेवाले) हैं, ऐसे श्रीगणेशजी का गुण गान करके तुलसीदास हाथ जोड़ कर वर माँगते हैं कि मेरे हृदय (मन्दिर) में श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी निवास करें ॥ २ ॥

(२)

दीनदयाल दिवाकर देवा । कर मुनि मनुज सुरासुर सेवा ॥
हिम तम करि केहरि करमाली । दहन दोष दुख दुरित रुजाली ॥१॥

हे दीनदयाल सूर्य्य देवता ! आप की सेवा मुनि, मनुष्य, देव और दैत्य करते हैं। हे आदित्य भगवान् ! आप पाला और अन्धकार रूपी हाथी के लिए सिंह रूप हैं दोष, दुःख, पाप और रोग-समूह के जलानेवाले हैं ॥ १ ॥

हिम और तम में हाथी का आरोप करके सूर्य्य नारायण में सिंह का आरोपण इसलिए किया गया कि सिंह हाथी के झुण्ड को विदीर्ण करने में समर्थ है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। दोष, दुःख, पाप और रोग-समूह के दहन करनेवाले, एक साथ बहुत सा मनोरञ्जक बातें वर्णन करना 'सहोक्ति अलंकार' है। द, म, स और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। तीनों अलंकारों की संसृष्टि है।

कोक कोकनद लोक प्रकासी। तेज प्रताप रूप रस रासी॥
सारथि पङ्गु दिव्य-रथ-गामी। हरि सङ्कर बिधि मूरति स्वामी॥२॥

चकवा पक्षी तथा कमल को विकसित करनेवाले और लोक (जगत्) में उँजेला करने वाले हैं; तेज, प्रताप, रूप और रस की राशि हैं। सारथी पङ्गुल है; किन्तु आप दिव्य-रथ पर गमन करते हैं, विष्णु; शङ्कर और ब्रह्मा के रूप अर्थात् हे स्वामिन्! आप सृष्टि की उत्पत्ति, पालन और संहार के हेतु हैं॥ २॥

ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र के गुण को सूर्य्य नारायण में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। पङ्गुल सारथी और दिव्य-रथ पर गमन करना, अपूर्ण कारण से कार्य्य की सिद्धि होना 'द्वितीय विभावना अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

बेद पुरान प्रगट जस जागै। तुलसी रामभगति बर माँगै॥३॥

आप का यश वेद पुराणों द्वारा विख्यात जगमगा रहा है, तुलसीदास आप से रामभक्ति का वर माँगता है॥ ३॥

लोक को प्रसन्न करने में सूर्य्य देवता का सुयश प्रसिद्ध है, इसका प्रमाण वेद पुराणों के वचन से देना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है। इस पद में परिकराङ्कुर की ध्वनि है।

(३)

को जाचिये सम्भु तजि आन। दीनदयाल भगत आरति हर, सब प्रकार समरथ भगवान॥१॥

शिवजी को छोड़ कर और किससे माँगूँ? वे दीनदयाल हैं; भक्तों के दुःख हरने में सब प्रकार समर्थ और यशस्वी हैं॥ १॥

कालकूट ज्वर जरत सुरासुर, निज पन लागि कियो बिष पान।
दारुन दनुज जगत दुखदायक, जारेउ त्रिपुर एकही बान॥२॥

हलाहल की जलन से देवता और दैत्य जल रहे थे (सब भयभीत होकर शिवजी से गुहार मचाई, भक्तों के भय दूर करने को) अपनी उदार प्रतिज्ञा के लिए उन्होंने विष पान किया। संसार को दुःख देनेवाला भीषण त्रिपुर दैत्य को एक ही बाण से भस्म कर दिया॥२॥

जब देवता और दैत्यों ने मिल कर समुद्र-मन्थन किया, तब अन्यान्य रत्नों के अतिरिक्त कालकूट निकला, उसकी भयङ्कर ज्वाला से देवता-दैत्य सब जलने लगे और व्याकुल होकर शिवजी को शरणागतों के आर्त्ति हर जान कर उनसे त्राहिमाम् त्राहिमाम् पुकारने लगे। शिवजी ने भक्तों की रक्षा के लिये विष पी लिया और राम-नाम के प्रभाव से उसे हजम कर गये। त्रिपुर का वृत्तान्त विनयकोश में 'त्रिपुर' शब्द देखो। यहाँ शङ्करजी की अतिशय महिमा वर्णन में 'उदात्त अलंकार' है।

जो गति अगम महामुनि दुर्लभ, कहत सन्त स्रुति सकल पुरान।
सो गति मरनकाल अपने पुर, देत सदा सिव सबहि समान ॥३॥

जो गति बड़े बड़े मुनियों की पहुँच के बाहर, नहीं मिलने योग्य, सन्त; वेद और समस्त पुराण कहते हैं, वह गति सब को मरते समय समान रूप से शिवजी अपनी पुरी (काशी) में निरन्तर देते हैं ॥ ३ ॥

दो असम वाक्यों के समता में 'प्रथम निदर्शना' है और सन्त वेद पुराणों के वचन का प्रमाण कथन करना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है।'स' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

सेवत सुलभ उदार कलपतरु, पारबती-पति परम सुजान।
देहु राम-पद नेहु कामरिपु, तुलसिदास कहँ कृपानिधान ॥४॥

सेवा करने में सुगम श्रेष्ठ कल्पवृक्ष के समान हैं, पार्वतीजी के स्वामी और बहुत अच्छे जानकार हैं। हे कृपानिधान कामदेव के वैरी! तुलसीदास को श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति दीजिये ॥ ४ ॥

पर्वतीपति-उपमेय, कल्पवृक्ष-उपमान, उदारता-धर्म है; किन्तु समान-वाचक लुप्त होने से 'वाचकलुप्तोपमा अलंकार' है। व्यङ्ग्यार्थ से व्यतिरेक की ध्वनि है कि कल्पवृक्ष का मिलना दुर्गम है और आप सेवा करते ही भक्तों को सुलभ होते हैं। इससे श्रेष्ठ कल्पतरु हैं।

(४)

दानी कहुँ सङ्कर सम नाहीं। दीनदयाल देबोई भावइ, जाचक सदा सुहाहीं ॥१॥

शङ्करजी के समान कहीं कोई दानी नहीं है। वे दीनों पर दया करनेवाले हैं, उन्हें देना ही अच्छा लगता है और सदा मङ्गन ही सुहाते हैं ॥ १ ॥

दानशीलता में शिवजी के समान अन्य दानी का न तुलना 'चतुर्थ प्रतीप अलंकार' है।

मारि के मार थपेउ जग जाकी, प्रथम रेख भट माहीं ।
ता ठाकुर को रीझि निवाजब, कहि न परत मो पाहीं ॥२॥

जिसकी गिनती संसार के शूरवीरों में पहले होती है (ऐसे दुर्जय योद्धा) कामदेव को मार कर (रति के विलाप से प्रसन्न हो अनङ्ग रूप से उसको फिर) जिन्होंने प्रतिष्ठित किया। उस मालिक के प्रसन्न होकर दया करने से कौन सा अलभ्य-लाभ होगा ? यह मुझ से नहीं कहा जा सकता ॥ २ ॥

जोग कोटि करि जो गति हरि सौं, मुनि माँगत सकुचाहीं ।
बेद बिदित तेहि पद पुरारि पुर, कीट पतङ्ग समाहीं ॥३॥

करोड़ों प्रकार का योग करके जिस गति को मुनि लोग भगवान् से माँगने में सकुचाते हैं। वेद में विख्यात है कि उस गति को काशीपुरी के कीड़े पतिङ्गे भी पाते हैं ॥ ३ ॥

ईस उदार उमापति परिहरि, अनत जे जाचन जाहीं ।
तुलसिदास तें मूढ़ माँगने, कबहुँ न पेट अघाहीं ॥४॥

उदार स्वामी उमानाथ को छोड़ कर जो दूसरी जगह माँगने जाते हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि वे मूर्ख मङ्गन हैं, उनका पेट कभी नहीं भरता ॥ ४ ॥

(५)

बावरो रावरो नाह भवानी । दानि बड़ो दिन देत दिये बिनु, बेद बड़ाई भानी ॥१॥

(एक बार कैलास पर्वत पर आ कर ब्रह्मा ने पार्वतीजी से प्रार्थना की कि) हे भवानी ! आप के स्वामी बावले हैं, बड़े दानी हैं कि विना दिये हुए को भी नित्य ही देते हैं, इन्होंने वेद की मर्य्यादा को तोड़ डाला ॥ १ ॥

वेद कहते हैं कि बिना दिये हुए प्राणी कुछ पाते नहीं, यह वेद वाक्य इनकी करतूत से मिथ्या हो गया। यह व्यङ्गयार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्गय है।

निज घर की बर बात बिलोकहु, हौ तुम्ह परम सयानी ।
सिव की दई सम्पदा देखत, श्री सारदा सिहानी ॥२॥

आप तो अत्यन्त सयानी हैं, अपने ही घर की अच्छी बात देखिये कि शिवजी की दी हुई (दूसरों की) सम्पत्ति को देख कर लक्ष्मी और सरस्वती सिहाती हैं ॥ २ ॥

अपने घर की अच्छी बात में व्यङ्ग्य है कि भाँग, धतूर, मदार और राख का ढेर लगा है और रावण आदिकों को कुवेर बना रखा है जिनकी सम्पदा अवलोकन कर इन्दिरा और भारती बड़ाई करती हैं। यह भी तुल्यप्रधान गुणीभूत है।

जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुख की नहीं निसानी ।
तिन्ह रङ्कन्ह को नाक सँवारत, हौं आयउँ नकवानी ॥३॥

जिनके ललाट में मेरे हाथ से सुख का चिह्न तक नहीं लिखा गया; उन कङ्गालों को स्वर्ग तैयार करते हैं जिससे मुझे नाक में दम आ गया है ॥ ३ ॥

ब्रह्माजी के इस उपालम्भ से शिवजी की प्रशंसा व्यञ्जित होती है कि जिनके भाग्य में मैं ने सुख नहीं लिखा उन्हें भी शिवजी स्वर्गवासी बनाते हैं। यह 'व्याजस्तुति अलंकार' है।

दुख दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी ।
यह अधिकार सौंपिये औरहि, भीख भली मैं जानी ॥४॥

इनके दुःख से दुःख और दीनता दुःखी हैं, मङ्गनता घबड़ा गई है। यह (ब्रह्मा के पद का) अधिकार दूसरे को सपुर्द कीजिये, मैं भीख माँगना अच्छा समझता हूँ ॥ ४ ॥

दुनियाँ में कोई दुखी, दीन और मङ्गन नहीं रह गया इससे दुःख, दीनता दुःखी हैं और याचकता अकुला गई अर्थात् शिवजी के मारे इनको संसार में ठहरने का स्थान नहीं है। जब मेरे लिखने का कुछ गौरव नहीं, तब इस ब्रह्मत्व से भीख माँगना अच्छा है। यह वाच्यार्थ ही से प्रकट असुन्दर गुणीभूत व्यङ्ग है।

प्रेम प्रसंसा बिनय ब्यङ्ग जुत, सुनि बिधि की बर बानी ।
तुलसी मुदित महेस मनहिँ मन, जगतमातु मुसुकानी ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रेम, प्रशंसा, विनती और व्यङ्ग्य से मिली हुई ब्रह्मा की श्रेष्ठ वाणी को सुन कर शिवजी मन ही मन प्रसन्न हुए और जगन्माता (पार्वतीजी) मुस्कुराईं ॥५॥

एक साथ ही प्रेम, प्रशंसा, विनय और व्यंग्य भरी वाणी का वर्णन 'सहोक्ति अलंकार' है।

(६)

माँगिये गिरिजापति कासी । जासु भवन अनिमादिक दासी ॥१॥

पार्वती और काशी के स्वामी से माँगना चाहिए, जिनके घर में अणिमा आदि आठों सिद्धियाँ सेवकिनी हैं ॥ १ ॥

अवढर दानि द्रवत सुठि थोरे । सकत न देखि दीन कर जोरे ॥
सुख सम्पति मति सुगति सुहाई । सकल सुलभ सङ्कर सेवकाई ॥२॥

जो शत्रु मित्र पर समान दयालु होकर दान देते हैं और बहुत थोड़ी सेवा से दया करते हैं, गरीबों को हाथ जोड़े हुए नहीं देख सकते (दया उमड़ पड़ती है) । सुख, सम्पत्ति, बुद्धि और अच्छी सुहावनी गति शङ्करजी की सेवा करने से सब सहज में मिलती है ॥ २ ॥

शत्रु और मित्र दोनों पर बराबर दयालु होकर उन्हें दान देना 'चतुर्थ तुल्ययोगिता अलंकार' है । एक साथ बहुत सी मनोरञ्जक बातें शङ्करजी की सेवकाई से सुख, सम्पत्ति आदि का सुलभ होना वर्णन 'सहोक्ति अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

गये सरन आरति कें लीन्हे । निरखि निहाल निमिष महँ कीन्हे ॥
तुलसिदास जाचक जस गावै । बिमल भगति रघुपति की पावै ॥३॥

जो दुखी होकर शरण में गये, उन्हें कृपादृष्टि से देख कर पल भर में सुखी कर दिया । मङ्गन तुलसीदास आप का यश गान करता है, रघुनाथजी की निर्मल भक्ति (इसको भिक्षा स्वरूप) मिले ॥ ३ ॥

जब सभी शरणागत प्रसन्न हुए हैं तब मुझे भी रामचन्द्रजी की पवित्र भक्ति मिलेगी 'प्रत्यक्षप्रमाण अलंकार' है ।

(७)

कस न दीन पर द्रवहु उमाबर । दारुन बिपति हरन करुनाकर ॥१॥

हे उमाकान्त ! आप भीषण विपत्ति हरनेवाले दया की खान हैं, फिर इस दीन पर क्यों नहीं दयाल होते हैं ? ॥ १ ॥

बेद पुरान कहत उदार हर । हमरि बेर कस भयहु कृपिन तर ॥ कवन भगति कीन्ही गुननिधि-द्विज । होइ प्रसन्न दीन्हेउ सिव पद-निज ॥२॥

वेद और पुराण कहते हैं कि शिवजी बड़े दाता हैं, फिर मेरी ही बार आप अधिक कञ्जूस क्यों हुए हैं । गुणनिधि ब्राह्मण ने कौन सी भक्ति की थी ? हे शङ्करजी ! जिससे प्रसन्न होकर आपने उसको अपना पद (कैलास-वास) दिया ॥ २ ॥

शिवजी की उदारता के सम्बन्ध में वेद पुराणों के कथन का प्रमाण देना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है । गुणनिधि का इतिहास पुराणों में इस प्रकार है कि वह दर्शन के बहाने एक

चोर शिवजी के मन्दिर में गया और पुजारियों की निगाह बचाकर मूर्त्ति पर के आभूषण चुराय निकल भागा। तुरन्त दौड़ हुई। लोगों ने पकड़ कर ऐसी मार मारी कि वह प्राण हीन हो गया। शिवजी उस पर इसलिए प्रसन्न हुए कि इसने मेरे स्थान में आ कर शरीर त्याग किया। बस, इतने ही पर दयालुता वश उसको कैलास-वास दिया।

जो गति अगम महामुनि गावहिँ। तव पुर कीट पतङ्गहु पावहिँ॥ देहु कामरिपु राम-चरन-रति। तुलसिदास प्रभु हरहु भेद-मति॥३॥

जिस गति को बड़े बड़े मुनि दुर्लभ कहते हैं, उसको आप की नगरी (काशी) में कीड़े और पतिङ्गे पाते हैं। हे स्वामिन् कामदेव के वैरी! तुलसीदास की भेद-बुद्धि को हर लीजिये और श्रीरामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति दीजिये॥३॥

'कामरिपु' शब्द सव्यङ्ग है कि हे प्रभो! जब आपने कामदेव सरीखे त्रिलोक विजयी योद्धा का विनाश किया,तब तुलसीदास की भेद-बुद्धि को दूर करना कौन सी बड़ी बात है? यह काव्यार्थापत्ति अलंकार की ध्वनि है।

(८)

देव बड़े दाता बड़े सङ्कर बड़े भोरे। किये दूर दुख सबनि के जिन जिन कर जोरे॥ सेवा सुमिरन पूजिबो पात-आखत थोरे। दियो जगत जहँ लगि सबहि सुख गज-रथ-घोरे॥१॥

शङ्करजी बड़े देवता, बड़े दानी और बड़े सीधे हैं, जिन जिन लोगों ने हाथ जोड़े उन सब का दुःख दूर किया। जिनकी सेवा स्मरण और थोड़े बेलपत्र अक्षत से पूजना है, इतने ही से जगत् में सभी को जहाँ तक सुख, हाथी, रथ और घोड़े आदि ऐश्वर्य्य दिये॥१॥

थोड़े बेलपत्र और चावल की भेंट देकर बहुत पाना 'परिवृत्त अलंकार' है। बड़े और जिन शब्द में 'पुनरुक्तिप्रकाश' है। अनुप्रास भी है।

गाँउ बसत बामदेव मैं कबहुँ न निहोरे। अधिभौतिक बाधा भई ते किङ्कर तोरे॥ बेगि बोलि बलि बरजिये करतूति कठोरे। तुलसी दल रूँध्यो चहइ सठ साख सिहोरे॥२॥

हे शिवजी! आप की पुरी (काशी) में रह कर मैंने कभी विनती नहीं की; किन्तु इन दिनों शरीरधारियों द्वारा कष्ट होता है वे (पीड़ा करने वाले) आप के दास हैं। बलि जाता

हूँ ! इनकी करनी कठोर है, तुरन्त बुला कर इन्हें मना कर दीजिये, ये मूर्ख तुलसीदल को सिहोर की (काँटेदार) डाली से रूँधना चाहते हैं ॥ २ ॥

हरिभक्ति रूपी तुलसी के वृक्ष को बाधा रूपी काँटों से अवरुद्ध करना चाहते हैं अर्थात् मुझे कष्ट पहुँचा कर रामभक्ति से हटाना चाहते हैं, यह प्रस्तुत वृत्तान्त है। इसको न कहकर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है। व और म अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है। सिहोर को शाखोट कहते हैं, इसका वृक्ष काँटेदार होता है और एक प्रकार बबूल के भेद में माना जाता है।

(६)

सिव सिव होइ प्रसन्न करु दाया। करुनामय उदार कीरति बलि,-जाउँ हरहु निज माया ॥१॥

हे कल्याण रूप शिवजी ! मुझ पर प्रसन्न होकर दया कीजिये, बलि जाता हूँ। आप दया के रूप उदार कीर्त्ति वाले हैं, अपनी माया को हर लीजिये ॥ १ ॥

यहाँ आदर प्रकट करने के लिए 'शिव' शब्द दो बार आया 'विप्सालंकार' है।

जलज-नयन गुन-अयन मयन-रिपु, महिमा जान न कोई।
बिनु तव कृपा राम-पद-पङ्कज, सपनेहुँ भगति न होई ॥२॥

कमल के समान नेत्र, गुणों के मन्दिर, कामदेव के वैरी जिनकी महिमा कोई नहीं जानता। हे मदनारि ! बिना आप की कृपा के रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में सपने में भी भक्ति (प्रीति) नहीं होती ॥ २ ॥

नयन-उपमेय और कमल-उपमान है; किन्तु वाचक-धर्म दोनों लुप्त होने से 'वाचकधर्म लुप्तोपमा अलंकार' है। बिना शिवजी की कृपा के रामभक्ति का अभाव कथन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है अनुप्रास भी है।

रिषय सिद्ध मुनि मनुज दनुज सुर, अपर जीव जग माहीं।
तव पद-बिमुख पार नहिँ पावत, कलप-कोटि चलि जाहीं ॥३॥

ऋषि-गण, सिद्ध, मुनि, मनुष्य, दानव, देवता आदि संसार में और जितने जीव हैं। आप के चरणों से प्रतिकूल रह कर वे (भवसागर से) पार नहीं पाते, चाहे करोड़ों कल्प बीत जाँय ॥ ३ ॥

अहि-भूषन दूषन-रिपु-सेवक, देवदेव त्रिपुरारी। मोह निहार दिवाकर सङ्कर, सरन सोक भय हारी ॥४॥

हे शङ्करजी ! आप सर्पों के भूषण धारण करनेवाले, दूषण राक्षस के वैरी (रामचन्द्रजी) के सेवक, देवताओं के देवता और त्रिपुर दैत्य के नाशक हैं। अज्ञान रूपी कुहासे के लिये सूर्य्य और शरणागतों के भय तथा शोक के हरनेवाले हैं ॥ ४ ॥

'देव' शब्द दो बार आया किन्तु अर्थ भिन्न होने से 'यमक अलंकार' है। मोह पर कोहिरा का आरोप करके शङ्करजी में सूर्य्य का आरोपण इसलिये किया कि सूर्य्यदेव अपने प्रकाश से कोहिरे को नष्ट कर देते हैं। यह परम्परित के ढङ्ग में 'सम अभेदरूपक अलंकार' है।

गिरिजा मन-मानस मराल, कासीस मसान निवासी। तुलसिदास हरि-चरन-कमल बर, देहु भगति अबिनासी ॥५॥

पार्वतीजी के मन रूपी मानसरोवर के राजहंस, काशी के स्वामी और श्मसान में रहनेवाले हैं। तुलसीदास को रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में नाश रहित भक्ति का वर दीजिये ॥ ५ ॥

पार्वतीजी के मन को मानसरोवर का रूपण देकर शिवजी में राजहंस का आरोप करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

(१०)

राग धनाश्री ।

मोह-तम-तरनि-हर रुद्र सङ्कर सरन, हरन मम सोक लोकाभिरामं। बाल-ससि भाल सुबिसाल लोचन-कमल, काम सतकोटि लावन्य-धामं ॥१॥

अज्ञान रूपी अन्धकार के लिये शिवजी सूर्य्य रूप हैं, शरणागतों के कल्याण कर्त्ता, हमारे शोक के हरनेवाले और जगत के आनन्द दायक हैं। ललाट पर बाल-चन्द्रमा विराजमान हैं, सुन्दर कमल के समान विशाल नेत्र और असंख्यों कामदेव के समान शोभा के स्थान हैं ॥१॥

अज्ञान में अन्धकार का आरोप और शिवजी में सूर्य्य का आरोपण 'समअभेद रूपक' है। हर-रुद्र और शङ्कर शब्द में पुनरुक्ति का आभास है; परन्तु पुनरुक्ति नहीं है सब के अर्थ पृथक् पृथक् होने से 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है। 'लोचन-कमल' में वाचकधर्म लुप्तोपमा है और चरणान्त में चतुर्थ प्रतीप की ध्वनि है। यहाँ अलंकारों की संसृष्टि है।

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर विग्रह रुचिर, तरुन रवि कोटि तनु तेज भ्राजै । भस्म सर्बाङ्ग अर्द्धांङ्ग सैलात्मजा, ब्याल नृ-कपाल-माला बिराजै ॥२॥

आपका सुन्दर शरीर शङ्ख, कुन्द-पुष्प, चन्द्रमा और कपूर के समान गौर है, मध्याह्न के करोड़ों सूर्य की तरह उसमें तेज विराजमान है। सब अङ्ग में विभूति रमाये, अर्द्धाङ्ग में पार्वतीजी, गले में साँप और नर-खोपड़ी की माला धारण किये हैं ॥ २ ॥

यहाँ एक शिव-तनु के लिये अनेक भिन्न धर्म के उपमानों का वर्णन 'मालोपमा अलंकार' है। शङ्ख के समान कठिन-श्वेत, कुन्द के फूल की तरह कोमल-उज्वल, चन्द्रमा के सदृश प्रकाशमान-गौर, कपूर के तुल्य सुगन्धित-सफ़ेद और करोड़ों सूर्य के समान तेज-पुञ्ज। अनुप्रास की संसृष्टि है।

मौलि सङ्कुल जटा-मुकुट विद्युच्छटा, तटिनि बर बारि हरि-चरन-पूतं। स्रवन कुंडल गरल-कंठ करुनाकन्द, सच्चिदानन्द बन्देवधूतं ॥३॥

मस्तक पर बिजली के समान चमकीला जटा का मुकुट है उसमें भगवान् के चरण से उत्पन्न श्रेष्ठ जलवाली गङ्गा-नदी लहराती हैं। कानों में कुंडल, गले में विष शोभित है, दया के मूल, योगिराज और ब्रह्म-स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ३ ॥

जटामुकुट-उपमेय, बिजली-उपमान, छटा-धर्म है; किन्तु समान वाचक लुप्त होने से 'वाचक लुप्तोपमा अलंकार' है।

सूल सायक पिनाकासि कर सत्रु बन, दहन इव धूमध्वज बृषभजानं। ब्याघ्र गज चर्म परिधान बिज्ञान-घन, सिद्ध सुर मुनि मनुज सेब्यमानं ॥४॥

बैल (नादिया) पर सवार हाथ में त्रिशूल, बाण, धनुष और खड्ग लिये शत्रु रूपी वन को जलाने में अग्नि रूप हैं। बाघ और हाथी के चाम का वस्त्र पहने, विज्ञान के राशि, सिद्ध मुनि, देवता और मनुष्यों से सेवित हैं ॥ ४ ॥

शत्रु में जङ्गल का अरोप करके शिवजी में अग्नि का आरोपण इसलिये किया कि दावानल वन को जलाकर भस्मीभूत कर देता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

तांडवित नृत्य पर डमरु डिमडिम प्रवर, असुभ इव भाति कल्यान-रासी। महाकल्पान्त ब्रह्मांड-मंडल दवन, भवन-कैवल्य आसीन कासी ॥५॥

अति सुन्दर डमरू और डुगडुगिया बजाते हुए परमोत्तम ताण्डव नाच करनेवाले, अमङ्गल की तरह अत्यन्त शोभित और कल्याण के राशि हैं। महाप्रलय के समय भूमण्डल के नाशक, मोक्ष के स्थान और काशीपुरी में विराजमान हैं ॥ ५ ॥

अशुभ के समान और कल्याण राशि, इस विरुद्ध वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। अनुप्रास और उदात्त की संसृष्टि है।

तज्ञ सर्बज्ञ यज्ञेस अच्युत बिभव, बिस्व भवदंस-सम्भव पुरारी। इन्द्र चन्द्रार्क बरुनाग्नि बसु मरुत जम, अर्चि भवदंघ्रि सर्बाधिकारी ॥६॥

हे पुरारि! आप ब्रह्मज्ञानी, सब के ज्ञाता, यज्ञ के स्वामी, नित्य, ऐश्वर्य्य युक्त हैं और संसार आप ही के अंश से उत्पन्न है। इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य्य, वरुण, अग्नि, वसुगण, पवन, यम सब ने आपके चरणों की उपासना करके प्रभुत्व पाया है ॥ ६ ॥

इस पद में महान उपलक्षणता का होना 'उदात्त अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

अकल निरुपाधि निर्गुन निरञ्जन ब्रह्म, कर्मपथमेकमज निर्बिकारं। अखिल बिग्रह उग्ररूप सिव-भूप-सुर, सर्बगत सर्ब सर्बोपकारं ॥७॥

अखण्ड, बाधा रहित, गुणों से परे, माया से निर्लिप्त, ब्रह्म, कर्म मार्ग में प्रधान, अजन्मे और निर्दोष हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आप का शरीर है, रौद्र रूप, कल्याणमय, देवताओं के राजा, सब में स्थित और सब की सब तरह सब भलाई करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

ज्ञान बैराग्य धन धर्म कैवल्य-सुख, सुभग सौभाग्य सिव सानुकूलं। तदपि नर मूढ़ आरूढ़ संसार-पथ, भ्रमत भव बिमुख तव पाद-मूलं॥८॥

हे शिवजी! आप की कृपा से ज्ञान, वैराग्य, धन, धर्म, मोक्ष-सुख और सुन्दर सौभाग्य (खुशक़िस्मती) प्राप्त होता है। तो भी मूर्ख मनुष्य आप के चरणों से प्रतिकूल होकर संसार के मार्ग में भूले फिरते हैं ॥८॥

एक शिवजी की सानुकूलता में बहुत से उत्कृष्ट गुणों की समता एकत्र करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

नष्ट मति दुष्ट अति कष्ट रत खेद गत, दासतुलसी सम्भु सरन आया । देहि कामारि श्रीराम-पद-पङ्करुह, भक्ति भव-हरनि गत भेद माया ॥९॥

हे शङ्करजी! बुद्धि हीन, दुराचारी, अत्यन्त मुसीबत का मारा ग्लानि में पड़ कर तुलसी-दास आप की शरण आया है। हे कामारि! इस दुःखी जन को संसार की हरनेवाली भेद-भाव और माया से रहित श्रीरामचन्द्रजी के चरण-कमलों में भक्ति (प्रीति) दीजिये ॥९॥

(११)

भीषनाकार भैरव भयङ्कर भूत, प्रेत प्रमथाधिपति बिपति हर्त्ता । मोह मूषक मार्जार संसार भय हरन तारन तरन अभय कर्त्ता ॥१॥

हे रुद्र भगवान्! आप का भीषण स्वरूप भय उत्पन्न करनेवाला है, आप भूत, प्रेत और प्रमथों के मालिक तथा विपत्ति के हरनेवाले हैं। अज्ञान रूपी चूहे के लिये बिलाव रूप, संसार सम्बन्धी भय के हरनेवाले, जीवों को भवसागर से पार उतारनेवाले, मोक्षरूप और निर्भय करनेवाले हैं ॥१॥

मोह को मूषक का रूपण और शिवजी को मार्जार का रूपण देना 'परम्परित रूपक अलंकार' है, क्योंकि मूस का नाश करने में बिलाव समर्थ है। भ, प, त, म और न अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है।

अतुल बल बिपुल बिस्तार बिग्रह गौर, अमल अति धवल धरनीधराभं । सिरसि सङ्कुलित कल कूट पिङ्गल जटा, पटल सतकोटि बिद्युच्छटाभं ॥२॥

अतुल बलवान, अपरिमित विस्तारवाले, गौर शरीर, निर्मल, अत्यन्त उज्वल पर्वत (हिमालय) के समान शोभन है। सिर पर फैला हुआ सुन्दर ऊँचा पीतवर्ण जटा का जूड़ा है, उसमें असंख्यों बिजली की क़तार की चमकीली छवि है ॥२॥

शरीर-उपमेय, उज्वल पहाड़-उपमान, गौरत्व-धर्म है; किन्तु समान-वाचक लुप्त होने से 'वाचकलुप्तोपमा अलंकार' है। दूसरे चरण में भी यही अलंकार है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

आज बिबुधापगा आप पावन परम, मौलि मालेव सोभा बिचित्रं । ललित लल्लाट पर राज रजनीस कल,-कलाधर नौमि हर धनद-मित्रं ॥ ३ ॥

जटा में अत्यन्त पवित्र जलवाली देवनदी-गङ्गाजी विराजमान हैं, वे मस्तक पर माला की तरह विलक्षण शोभा बढ़ा रही हैं। सुन्दर माथे पर चन्द्रमा की कला सुशोभित है, हे कलाधर कुवेर के मित्र शङ्करजी ! मैं आप को नमस्कार करता हूँ ॥३॥

गङ्गाजी-उपमेय, माला-उपमान, इव-वाचक और शोभित होना धर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है।

इन्दु-पावक-भानु-नयन मर्दन-मयन, ज्ञान गुन अयन बिज्ञान रूपं । रवन गिरिजा भवन भूधराधिप सदा, स्रवन कुंडल बदन छबि अनूपं ॥ ४ ॥

चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य्य नेत्र हैं, आप कामदेव को नष्ट करनेवाले, ज्ञान गुण के स्थान और विज्ञान के रूप हैं। पार्वतीजी के प्रीतम, सदा कैलास-पर्वत पर निवास करनेवाले हैं, कानों में कुण्डल और मुख की अनुपम छबि है ॥४॥

चर्म असि सूल धर डमरु सायक चाप, जान वृषभेस करुना-निधानं। जरत सुर असुर नर लोक सोकाकुलं, मृदुल चित अजित कृत गरल पानं ॥ ५ ॥

हाथ में, ढाल, तलवार, त्रिशूल, डमरू, वाण और धनुष धारण किये नादिया की सवारी, दया के स्थान हैं। देवता, दैत्य, मनुष्य और सारा संसार विष की ज्वाला से जलते हुए शोकातुर हुए थे, उस समय अजीत विष को कोमल हृदय आप ही ने पान किया ॥५॥

भस्म तनु भूषनं ब्याघ्र चर्माम्बरं, उरग नरमौलि उर माल धारी । डाकिनी साकिनी खेचरी भूचरी, यन्त्र भञ्जन प्रबल कल्मषारी ॥६॥

शरीर पर विभूति का आभूषण और बाघ के चर्म का वस्त्र पहने, हृदय में साँप तथा नर-मुण्डों की माला धारण किये हैं। चुड़इल, योगिनी, आकाशचारी-ग्रह और भूमि पर चलने-वाले टोटका आदि के नाश करने में बड़े बलवान एवम् पाप के शत्रु हैं ॥६॥

काल अतिकाल कलि ब्याल ब्यालाद,-खग, त्रिपुर-मर्दन भीम-कर्म भारी । सकल लोकान्त कल्पान्त सूलाग्रकृत, दिग्गजव्यक्त गुन नृत्यकारी ॥ ७ ॥

काल, महाकाल और कलिकाल रूपी सर्पों को भक्षण करने में गरुड़ रूप, त्रिपुर दैत्य के नाश करने में आप बहुत बड़े भयानक काण्ड के करनेवाले हैं। कल्प के अन्त में समस्त लोकों को और दिशाओं के हाथियों को अपने त्रिशूल के नोक से नाश कर निर्गुण रूप से नृत्य करते हैं ॥७॥

काल, महाकाल और कलिकाल में सर्प का आरोप करके शिवजी में पक्षिराज गरुड़ का आरोपण इसलिये किया गया कि गरुड़ सर्पों के भक्षण करनेवाले हैं। यह परम्परित के ढङ्ग में 'सम अभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

पाप सन्ताप घनघोर संसृति दीन, भ्रमत जग जोनि नहिं कोपि त्राता । पाहि भैरव रूप राम रूपी रुद्र, बन्धु गुरु जनक जननी बिधाता ॥ ८ ॥

मैं अत्यन्त भीषण संसार में पाप और दुःख से दीन होकर जगत की योनियों में घूमता फिरता हूँ, मेरा कोई भी रक्षक नहीं है। हे भैरव रूप राम रूपी रुद्र ! मेरे भाई, गुरु, पिता, माता और ब्रह्मा आप ही हैं ॥८॥

शिवजी में रामचन्द्रजी का रूपण देना 'समअभेदरूपक' है। भाई, गुरु, पिता, माता और विधाता सब के उत्कृष्ट गुणों को एक रुद्र में एकत्रित करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

यस्य गुन गन गनति बिमल मति सारदा, निगम नारद प्रमुख ब्रह्मचारी । सेष सर्बेस आसीन आनन्दबन, प्रनत तुलसीदास त्रास-हारी ॥ ९ ॥

जिनके गुण-समूह को निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती, वेद, शेष और नारद सरीखे प्रधान (प्रतिष्ठित) ब्रह्मचारी गान करते हैं। सब के स्वामी, आनन्दवन (काशी) में विराजमान दीन तुलसीदास की त्रास के हरनेवाले हैं ॥९॥

ग, न, स और अ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

(१२)

सङ्करं सम्प्रदं सज्जनानन्दं, सैलकन्यावरं परमरम्यं । काम मद मोचनं तामरस-लोचनं, वामदेवं भजे भाव-गम्यं ॥१॥

कल्याणकारी, श्रेष्ठ दानी, सज्जनों को आनन्द दायक, शैलकन्या (पार्वतीजी) के स्वामी अतिशय मनोहर हैं। कामदेव के घमण्ड को छुड़ानेवाले, कमल-नयन शिवजी जो प्रेम से मिलते हैं, मैं उनका भजन करता हूँ ॥१॥

'तामरस-लोचनं' में वाचकधर्म लुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

कम्बु कुन्देन्दु कर्पूर गौरं सिवं, सुन्दरं सच्चिदानन्द कन्दं। सिद्ध सनकादि जोगीन्द्र वृन्दारका, विष्नु विधि बन्द्य चरनारविन्दं ॥२॥

शिवजी शङ्ख, कुन्दपुष्प, चन्द्रमा और कपूर के समान गौर वर्ण, सुन्दर सत् चित् आनन्द के मूल (परब्रह्म) हैं। जिनके चरण-कमल सिद्ध, सनकादि योगेश्वर, देवता, विष्णु और ब्रह्माजी से अभिवादन किये जाने योग्य हैं ॥२॥

एक शिवजी-उपमेय के लिये अनेक उपमान भिन्न धर्म के हेतु कथन करना 'मालोपमा अलंकार' है। सिद्ध सनकादि द्वारा जिनका चरण वन्दनीय है, इस सम्बन्ध से शिवजी की अतिशय प्रशंसा करना 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

ब्रह्मकुल-बल्लभं सुलभमातिदुर्लभं, बिकट बेषं बिभुं बेद पारं। नौमि करुनाकरं गरल-गङ्गा-धरं, निर्मलं निर्गुनं निर्बिकारं ॥३॥

ब्राह्मणवंश के प्यारे वा जिनको ब्राह्मण का कुल प्रिय है, सहज में मिलनेवाले, अत्यन्त दुष्प्राप्य, विकराल वेश, समर्थ और वेद से परे हैं अर्थात् वेद भी जिनकी यथार्थ प्रशंसा नहीं कर सकते। दया के स्थान, विष तथा गङ्गाजी को धारण किये, निर्मल, गुणों से परे और निर्दोष शिवजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥३॥

सुलभ भी और अत्यन्त दुर्लभ भी, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

लोकनाथं सोक-सूल-निर्मूलिनं, सूलिनं मोह-तम भूरि-भानुं। कालकालं कलातीतमजरं हरं, कठिन कलिकाल-कानन कृसानुं ॥४॥

लोकों के मालिक, शोक और शूल को निर्मूल करनेवाले, अज्ञान रूपी अन्धकार के लिये असंख्यों सूर्य्य रूप हैं। काल के भी काल, कलाओं से परे, बुढ़ाई से रहित और कठिन कलियुग रूपी वन के लिये शिवजी दावानल रूप हैं ॥४॥

मोह में अन्धकार का आरोप और शिवजी में अनेक सूर्य्य का आरोपण तथा कलिकाल में जङ्गल का आरोप करके शिवजी में अग्नि का आरोपण है। वह इसलिये कि सूर्य्य अन्धकार को नष्ट करते हैं और कृशानु वन को भस्मीभूत कर देते हैं। यह दोनों परम्परित समअभेद रूपक है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

तज्ञमज्ञान-पाथोधि-घटसम्भवं, सर्वगं सर्वं सौभाग्यमूलं ।
प्रचुर-भव-भञ्जनं प्रनत-जन-रञ्जनं, दासतुलसी सरन सानुकूलं ॥५॥

ब्रह्मज्ञानी, अज्ञान रूपी समुद्र के लिये अगस्त्य रूप सर्वत्र गमन करनेवाले शङ्करजी सौभाग्य (खुशक़िस्मती) के मूल हैं। अपार संसार (जन्म, मरण, गर्भवास) के नाशक, दीनजनों को आनन्द देनेवाले और शरणागत तुलसीदास पर कृपा करनेवाले हैं ॥५॥

अज्ञान में समुद्र का आरोप और शिवजी में अगस्त्यमुनि का आरोपण 'समअभेद रूपक अलंकार' है। अगस्त्यजी ने समुद्र को सुखा दिया था।

(१३)

राग वसन्त ।

सेवहु सिव-चरन-सरोज रेनु । कल्यान अखिल-प्रद कामधेनु ॥१॥

शिवजी के चरण-कमल की धूलि का सेवन करो, वह सम्पूर्ण कल्याण की देनेवाली कामधेनु है ॥ १ ॥

शिवजी के चरण-कमलों की धूलि और कामधेनु की पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

कर्पूर गौर करुना उदार । संसार-सार भुजगेन्द्र हार ॥
सुख-जन्मभूमि महिमा अपार । निर्गुन गुन-नायक निराकार ॥२॥

जो कपूर के समान गौर वर्ण दयालु और दानी हैं, जगत के प्रधान, सर्पों का हार पहने, सुख के जन्मस्थान, अनन्त महिमा युक्त, गुणों से परे, गुणों के मालिक और रूप रहित हैं ॥२॥

'कर्पूर गौर' में वाचकोपमेय लुप्तोपमा है। सुख के जन्म भूमि में 'द्वितीय निदर्शना' है। निर्गुण भी और गुण-नायक भी, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। स और न अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। यहाँ अलंकारों की संसृष्टि है।

त्रय-नयन मयन-मर्दन महेस । अहँकार निहार उदित दिनेस ॥
बर-बाल-निसाकर मौलि भ्राज। त्रैलोक-सोक-हर प्रमथराज ॥३॥

शङ्करजी तीन नेत्रवाले, कामदेव के नाशक और अहङ्कार रूपी कुहासे के लिये उदय हुए सूर्य्य रूप हैं। माथे पर सुन्दर बाल-चन्द्रमा सुशोभित है, भूतों के मालिक और तीनों लोक के शोक को हरनेवाले हैं ॥३॥

अहङ्कार में कोहिरा का आरोप कर शिवजी में उदय हुए सूर्य्य का आरोपण इसलिये किया गया कि सूर्य्य के प्रकाश से कुहासे का नाश होता है। यहाँ परम्परित के ढङ्ग से उपमेय और उपमान में पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन करना 'समअभेद रूपक अलंकार' है।

जिन कहँ बिधि सुगति न लिखी भाल । तिन्ह की गति कासीपति कृपाल ॥ उपकारी को पर हर समान । सुर-असुर जरत कृत गरल पान ॥४॥

जिनके कपाल में ब्रह्मा ने अच्छी गति नहीं लिखी, उनको कृपालु काशीश्वर (शिवजी) श्रेष्ठ-पद देते हैं। शिवजी के समान परोपकारी दूसरा कौन है? जिन्हों ने देवता और दैत्यों को विष की ज्वाला से जलते देख कर हलाहल पान कर लिया! ॥४॥

पहले साधारण बात कही कि शिवजी के समान परोपकारी दूसरा नहीं है, फिर विशेष उदाहरण से इसका समर्थन करना 'अर्थान्तरन्यास अलंकार' है।

बहु कल्प उपाय करिय अनेक । बिनु सम्भु कृपा नहिँ भव बिबेक ॥
बिज्ञान-भवन-गिरि-सुता-रमन। कह तुलसिदास मम त्रास समन ॥५॥

बहुत कल्प पर्य्यन्त कोई नाना उपाय क्यों न करे परन्तु बिना शम्भु की दया के ज्ञान नहीं उत्पन्न होता। विज्ञान के मन्दिर और पार्वतीजी को रमानेवाले हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि (वही शङ्कर भगवान) मेरी त्रास के नाश करनेवाले हैं ॥५॥

(१४)

देखो बन बनेउ आज उमाकन्त। जनु पेखन आई रितु-बसन्त ॥१॥

देखो, आज पार्वती-पति (शिवजी) बन बने हैं, ऐसा मालूम होता है मानों वसन्त-ऋतु देखने आई हो ॥१॥

शिवजी और बन, पार्वतीजी और वसन्त-ऋतु परस्पर उपमेय उपमान हैं। बन में वसन्त-ऋतु की बहार दृष्टिगोचर होती ही है। यह 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। और रूपक की संसृष्टि है।

मनु तनु दुति चम्पक-कुसुम-माल । बर बसन नील नूतन तमाल ॥
कल कदलि जङ्घ पद-कमल-लाल । सूचक कटि केहरि गति-मराल ॥२॥

पार्वती के शरीर की कान्ति ऐसी जान पड़ती है मानो चम्पा के फूलों की माला है, उत्तम नीले रङ्ग की साड़ी नवीन तमाल वृक्ष है। जङ्घे सुन्दर केले के खम्मे हैं, चरण-तल लाल कमल हैं, कमर सिंह को सूचित करनेवाली और चाल हंस का स्मरण कराती है ॥२॥

उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा और रूपक की संसृष्टि है।

भूषन प्रसून बहु बिबिध रङ्ग । नूपुर किङ्किनि कलरव बिहङ्ग ॥
कर नवल बकुल-पल्लव रसाल । श्रीफल-कुच कञ्चुकि-लता-जाल ॥३॥

बहुत से गहने अनेक रङ्ग के फूल हैं, पायजेब और करधनी कोकिल पक्षी है। हथेलियाँ मौलसिरी और आम के नये लाल पत्र हैं, बेल पयोधर हैं और हरे रङ्ग की अँगिया लताओं का जाल है ॥३॥

इस पद में रूपक की माला है और अनुप्रास भी है।

आनन सरोज कच-मधुप-पुञ्ज । लोचन बिसाल नव नील-कञ्ज ॥
पिक बचन चरित बर बर्हि कीर । सित-सुमन-हास लीला-समीर ॥४॥

मुख कमल है, बाल भँवरे का झुण्ड है, विशाल नेत्र नवीन श्याम-कमल है। वचन कोयल की बोल है, श्रेष्ठ चरित्र मुरैला और सुअर है, हसी सफ़ेद फूल है तथा क्रीड़ा पवन है ॥४॥

कह तुलसिदास सुनु सिव सुजान । उर बसि प्रपञ्च रच पञ्चबान ॥ करि कृपा हरिय भ्रम-फन्द-काम । जेहि हृदय बसहिँ सुख-रासि राम ॥५॥

तुलसीदासजी कहते हैं– हे सुजान शिवजी ! सुनिये, मेरे हृदय में टिक कर कामदेव प्रपञ्च रच रहा है। कृपा करके काम के भ्रमोत्पादक फन्दे को दूर कीजिये जिसमें सुख के राशि रामचन्द्रजी मेरे हृदय में निवास करें ॥५॥

इस पद में सर्वत्र रूपक उत्प्रेक्षा में अङ्गाङ्गीभाव है।

(१५)

राग-मारू ।

दुसह दोष दुख दलनि करु देवि दाया । विस्व-मूलासि जन सानुकूलासि सर,-सूल धारिनि महा-मूल-माया ॥१॥

हे देवि ! मुझ पर दया करो, आप असहनीय दोष और दुःख नाश करती हैं । आदिशक्ति भक्तों पर दया करनेवाली वाण और त्रिशूल धारण किये आप रुद्राणी दुर्गा हैं ॥१॥

द, स और म अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है ।

तड़ित गर्भाङ्ग सर्बाङ्ग सुन्दर लसत, दिव्य-पट भव्य-भूषन विराजैं । बाल-मृग मञ्जु खञ्जन-विलोचन चन्द,-बदन लखि कोटि रति-मार लाजैं ॥२॥

आप के सब अङ्ग सुन्दर बिजली के समान चमकीले शोभित हैं और दिव्य वस्त्र तथा माङ्गलिक आभूषण उनमें विराजमान हैं । हरिण के बच्चे और खञ्जन के समान नेत्र हैं, चन्द्रमा के समान मुख-मण्डल को देख कर करोड़ों रति-कामदेव लजा जाते हैं ॥२॥

धर्मलुप्तोपमा, पञ्चम प्रतीप और अनुप्रास तीनों अलंकारों की संसृष्टि है ।

रूप सुख-सील-सीमासि भीमासि रामासि बामासि बर-बुद्धि-बानी । छमुख-हेरम्ब-अम्बासि जगदम्बिके, सम्भु-जायासि जय जय भवानी ॥३॥

आप रूप, सुख और शील की अवधि हैं, भयङ्कर हैं, लक्ष्मी पार्वती और श्रेष्ठ बुद्धिवाली सरस्वती हैं । स्वामिकार्तिक और गणेशजी की माता हैं, शिवजी की प्रियतमा भार्या हैं, हे भवानी ! आप की जय हो, जय हो ॥३॥

स, ब और ज अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है और 'जय' शब्द में आदर की विप्सा तथा पुनरुक्तिप्रकाश का सन्देहसङ्कर है ।

चंड भुजदंड खंडनि बिहंडनि मुंड, महिष मद भङ्ग करि अङ्ग तोरे । सुम्भ निःसुम्भ कुम्भीस रन केसरिन, क्रोध-बारिधि बैरि बृन्द बोरे ॥४॥

चण्ड दैत्य के भुजाओं को काटनेवाली और मुण्ड दैत्य को नसानेवाली हैं, आप ने महिषासुर के घमण्ड को चूर चूर कर उसके अङ्ग तोड़े । शुम्भ और निशुम्भ रूपी मतवाले हाथियों

के मस्तक रणभूमि में फोड़ने के लिये आप सिंहिना रूपी अपने क्रोध रूप समुद्र में शत्रुओं के झुण्ड को डुबो दिया ॥४॥

शुम्भ निशुम्भ में गजराज का आरोप, दुर्गा में सिंहिनी का आरोप और उनके क्रोध में समुद्र का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

निगम आगम अगम गुर्वि तव गुन कथन, उर्विधर कहत जेहि सहस जीहा । देहि मा मोहि पन-प्रेम निज-नेम यह, राम-घन-स्याम तुलसी पपीहा ॥५॥

हे सती शिरोमणि ! आप का यश वर्णन करना वेद और शास्त्रों को दुर्गम है, पृथ्वी को धारण करनेवाले (शेषनाग) जिनको हजार जीभ है वे भी यही कहते हैं। हे माता ! मुझे प्रेम की प्रतिज्ञा का दृढ़ नेम दीजिये कि रामचन्द्रजी रूपी श्याम मेघ का तुलसी चातक रूप हो ॥५॥

रामचन्द्रजी में श्याममेघ का आरोप करके अपने ऊपर पपीहा का आरोपण इसलिए किया कि वह स्वाती के मेघ के सिवा दूसरे हजार जल दाता बादल क्यों न हों परन्तु किसी से प्रेम नहीं करता। कहने का तात्पर्य यह कि पपीहा अन्य बादलों से प्रेम नहीं करता, वैसे तुलसी अन्य देवी देवताओं का उपासक न हो कर केवल रामचन्द्रजी में प्रेम का नेम निबाहे 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

(१६)

राग-सारङ्ग

जय जय जगजननि देवि, सुर नर मुनि असुर सेवि, भक्त मुक्ति-दायनि भय हरनि कालिका । मङ्गल-मुद-सिद्धि-सदनि, पर्व सर्वरीस-बदनि, ताप तिमिर तरुन-तरनि किरन मालिका ॥१॥

हे जगन्माता कालिका देवि ! आपका जय हो, जय हो। देवता, मुनि, मनुष्य और दैत्य सेवा करते हैं, आप भक्त-जनों के भय को हरनेवाली और उन्हें मोक्ष देने वाली हैं। आनन्द, मङ्गल और सिद्धियों की स्थान, पूर्णिमा के चन्द्रमा के समान मुख है, दुःख रूपी अन्धकार के लिए आप मध्याह्न के सूर्य्य की किरण-राशि के बराबर हैं ॥ १ ॥

वाचकधर्म लुप्तोपमा और परम्परित रूपक अलंकार की संसृष्टि है। 'जय' शब्द में आदर की विप्सा है। ज, म, स और त अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

बर्म चर्म कर कृपान, सूल सेल धनुष बान, धरनि दलनि दानव-दल रन करालिका । पूतना पिसाच-प्रेत, डाकिनि साकिनि समेत, भूत-प्रमथ-ग्रह खगालि हेतु जालिका ॥२॥

कवच पहने, हाथ में ढाल, तलवार, त्रिशूल, साँगा, धनुष और बाण लिए रणाङ्गन में दानवों की सेना का नाश करने में आप बहुत ही भीषण हैं। बालकों की ग्रहबाधा, पिशाच प्रेत, चुड़इल, योगिनी, भूत, प्रमथ और क्रूरग्रह रूपी पक्षियों के झुण्ड को फँसाने में आप जाल रूपी हैं ॥ २ ॥

पूतनादि में पक्षी का आरोप करके कालिका देवि में जाल का आरोपण इसलिए किया कि वह एक साथ ही पक्षी वृन्द को बन्धन में कर लेता है। यह 'परम्परित रूपक' है और अनुप्रास की संसृष्टि है। अन्य मुद्रित प्रतियों में प्रायः 'भूत ग्रह बैताल खग मृगालि जालिका' पाठ है जिससे लय में खटक आ जाती है।

जय महेस भामिनी, अनेक रूप नामिनी, समस्त लोक स्वामिनि हिम-सैल-बालिका । रघुपति-पद-पदुम प्रेम, तुलसी चह अचल नेम, देहि होइ प्रसन्न पाहि प्रनत-पालिका ॥३॥

हे शिवजी की प्रियतमा! आपकी जय हो। आप अनेक रूप, अनन्त नामवाली 'सम्पूर्ण लोकों की मालकिन और हिमाचल की कन्या हैं। रघुनाथजी के चरण-कमलों में अविचल नियम-पूर्वक तुलसी प्रेम चाहता है, हे दीन जनों की रक्षा करने वाली माहेश्वरी ! प्रसन्न होकर मुझको यह वर दीजिये ॥३॥

यहाँ हिम-सैल-बालिका में द्वितीय सम अलंकार की ध्वनि है कि पर्वत सहज ही परोपकारी होते हैं, उसकी कन्या को प्रणत-पालिका होना ही चाहिए। अनुप्रास भी है।

(१७)

जय भगीरथ-नन्दिनि, मुनि चय चकोर चन्दिनि, नर नाग बिबुध बन्दिनि जय जह्नु-बालिका । बिष्नु-पद-सरोजजासि, ईस सीस पर बिभासि, त्रिपथगासि पुन्यरासि पाप-छालिका ॥१॥

हे भगीरथ नन्दिनी जह्नुमुनि की कन्या! आप की जय हो, जय हो। मुनिवृन्द रूपी चकोर के लिए आप चन्द्रमा की किरण रूप हैं, मनुष्य, नाग और देवताओं से वन्दनीय हैं।

विष्णुभगवान् के चरण-कमलों से उत्पन्न, शिवजी के मस्तक पर सुशोभित, आकाश-पाताल धरती तीनों मार्गों से गमन करनेवाली, पुण्य की राशि और पापों को धोनेवाली हैं ॥ १ ॥

मुनिवृन्द में चकोर का आरोप और गङ्गाजी में चन्द्रमा का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है। जय शब्द में आदर की विप्सा है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

बिमल बिपुल बहसि बारि, सीतल त्रय ताप हारि, भँवर बर बिभङ्ग तर तरङ्ग मालिका। पुरजन पूजोपहार, सोभित ससि-धवल-धार, भञ्जन भुबि भार भक्त-कल्प-थालिका ॥२॥

निर्मल शीतल गम्भीर जल से बहती हुई तीनों ताप को हरनेवाली, अत्यन्त सुन्दर भँवर और ऊँची लहरों से युक्त हैं। पुरवासियों द्वारा पूजा की सामग्री (पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, नैवेद्य आदि) के सहित आपकी उज्वल धारा चन्द्रमा के समान शोभायमान है, पृथ्वी से पाप के बोझ को नसानेवाली और भक्त रूपी कल्पवृक्ष के लिए थाला रूपिणी हैं ॥२॥

धवल धार-उपमेय, चन्द्रमा-उपमान, शोभित होना साधारण धर्म है; किन्तु वाचक पद न रहने से 'वाचक लुप्तोपमा' है। भक्तों में कल्पवृक्ष का आरोप करके गङ्गाजी में थाला--(वृक्ष की रक्षा के लिए घेरा हुआ गोंड़ा) का आरोपण इसलिए किया कि थाँवला वृक्ष का रक्षक है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। ब, त, प, ध, स, और भ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

निज-तट-बासी बिहङ्ग, जल-थल-चर पसु पतङ्ग, कीट जटिल, तापस सब सरिस पालिका। तुलसी तव तीर तीर, सुमिरत रघुबंस-बीर, बिचरत मति देहि मोह-महिष-कालिका ॥३॥

अपने किनारे के रहनेवाले पक्षी, जलचर, थलचर, पशु, पाँखी, कीड़े, हिंसकजीव और तपस्वी सबको बराबर पालनेवाली हैं। हे मोह रूपी महिषासुर की कालिका! तुलसी आपके किनारे रघुकुल के वीर (रामचन्द्रजी) का स्मरण करते हुए भ्रमण करता है, इसको बुद्धि प्रदान कीजिये ॥ ३ ॥

हित अनहित वा भले बुरे सबके साथ एक ही धर्म पालन करना 'चतुर्थ तुल्ययोगिता अलंकार' है। अज्ञान में महिषासुरका आरोप करके गङ्गाजी में कालिका देवि का इसलिए आरोपण किया कि उन्होंने उक्त दैत्य का विध्वंस कर डाला 'परम्परित रूपक अलंकार' है। इस पद में सीधे गङ्गाजी का नाम न लेकर 'भगीरथ नन्दिनि और जह्नु बालिका' आदि कह कर परिचय कराने में प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार है। तीर शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(३)

राग-रामकली

जयति जय सुरसरी जगदखिल-पावनी । विष्नु-पद-कञ्ज-मकरन्द इव अम्बु बर, बहसि दुख दहसि अघ-बृन्द-बिद्रावनी ॥१॥

हे गङ्गाजी ! आप सम्पूर्ण जगत् को पवित्र करनेवाली हैं, आपकी जय हो, जय हो। विष्णु भगवान् के चरण-कमल के रस के समान पवित्र जल बहता हुआ दुःख को जलानेवाला है, आप पाप की राशि को नाश करनेवाली हैं ॥ १ ॥

'जयति जय' शब्द में आदर की विप्सा है। विष्णु-पद-कमल का मकरन्द उपमेय, गङ्गा जल-उपमान, इव-वाचक और वर साधारण-धर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है।

मिलित-जलपात्र अज जुक्त हरि-चरन रज, बिरज तर बारि त्रिपुरारि सिर धामिनी । जह्नु कन्या धन्य पुन्य कृत सगर-सुत, भूधरद्रोनि बिदरनि बहु नामिनी ॥२॥

आप का अत्यन्त निर्मल जल ब्रह्मा के कमण्डलु में नारायण के चरणों की धूलि से मिला हुआ सुशोभित है। हे जह्नु मुनि की पुत्रिका ! आप धन्य हैं। आपने राजा सगर के (साठ हज़ार) पुत्रों को पवित्र कर दिया, पर्वत और नौका को चीरने वाली आपके बहुतेरे नाम हैं ॥२॥

जच्छ गन्धर्ब मुनि किन्नरोरग दनुज, मनुज मज्जहिं सुकृत-पुञ्ज जुत कामिनी । स्वर्ग सोपान बिज्ञान ज्ञान प्रदे, मोह-मद-मदन-पाथोज हिम-जामिनी ॥३॥

यक्ष, गन्धर्व, मुनि, किन्नर, नाग, दैत्य और मनुष्य स्त्री सहित स्नान कर पुण्य के राशि होते हैं। आप स्वर्ग की सीढ़ी हैं, विज्ञान तथा ज्ञान को देनेवाली और अज्ञान-मद-कामदेव रूपी कमल के लिये पाला की रात्रि हैं ॥ ३ ॥

उपमान-सोपान का गुण गङ्गाजी में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। मोह, मद और मदन में कमल का आरोप करके गङ्गाजी में जाड़े की रात का आरोपण इसलिए किया कि हिम कमल को भस्म कर देता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

हरित गम्भीर बानीर दुहुँ तीर बर, मध्य धारा बिसद बिस्व-अभिरामिनी । नील परजङ्क कृत सयन सर्पेस जनु, सहस सीसावली स्रोत सुर-स्वामिनी ॥४॥

दोनों किनारों पर हरे हरे बेंत के सघन वृक्ष हैं और बीच में जगत को आनन्द देनेवाली आप की श्वेत उज्वल धारा बहती है। ऐसा मालूम होता है मानों नीले रङ्ग के पलँग पर शेषनाग शयन किये हों, हे सुर स्वामिनी! आप के सहस्रों सोते उनकी फनावली हैं ॥४॥

गङ्गाजी की धारा में बेंत वृक्ष की परछाहीं दिखाई पड़ना उत्प्रेक्षा का विषय है। बेंत की परछाहीं और नीलपर्यङ्क, तरङ्ग और शेषनाग, सोता और फनावली परस्पर उपमेय उपमान हैं। नीले पलँग पर शेषनाग का शयन करना कविजी की कल्पना मात्र है, क्योंकि शेषनाग पुराणों के कथनानुसार कच्छप के पीठ पर विराम करते हैं सेज पर नहीं 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

अमित महिमा अमित-रूप भूपावली, मुकुटमनि बन्दिते लोक त्रय गामिनी । देहि रघुबीर-पद-प्रीति निर्भर मातु, दासतुलसी त्रास हरनि भव-भामिनी ॥५॥

अनन्त महिमा और अपार रूपवाली, राजाओं के मुकुट-मणि से वन्दनीय और तीनों लोकों में गमन करनेवाली हैं। हे माता! शिवजी की प्रियतमा त्रास के हरनेवाली तुलसीदास को रघुनाथजी के चरणों में पूर्ण प्रेम दीजिये ॥५॥

यहाँ 'त्रास हरनि' संज्ञा साभिप्राय है। गोस्वामीजी अपने को भव भय से त्रस्त मान कर और गंगाजी को उससे रक्षा करने में समर्थ जान कर प्रार्थना करते हैं। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। अमित शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है।

(१९)

हरति पाप त्रिबिध ताप, सुमिरत सुरसरित । बिलसत महिं कल्पबेलि मुद-मनोरथ-फरित ॥१॥

गङ्गाजी स्मरण करते ही पाप और तीनों तापों को हर लेती हैं। आनन्द और वाञ्छित फल से फली हुई धरती पर कल्पलता के समान लहराती हैं ॥१॥

केवल स्मरण मात्र से पाप और त्रिताप का हरना 'द्वितीय विशेष अलंकार' है। गङ्गाजी उपमेय, कल्पलता-उपमान, बिलसना साधारण धर्म है; किन्तु वाचकपद न होने से 'वाचक-लुप्तोपमा अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

सोहत ससि-धवल-धार, सुधा-सलिल भरित। बिमल तर तरङ्ग लसत, रघुबर से चरित ॥२॥

अमृत रूप जल से भरी चन्द्रमा के समान आप की उज्वल धारा शोभित है। रघुनाथजी के यश के समान अत्यन्त निर्मल लहरें विराजती हैं ॥२॥

गङ्गाजल में अमृत का आरोप 'निरङ्ग रूपक' है। धारा-उपमेय, चन्द्रमा-उपमान, उज्वल शोभित होना साधारण-धर्म है; किन्तु वाचक पद न रहने से 'वाचक लुप्तोपमा' है। दूसरे चरण में पूर्णोपमा अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

तो बिनु जगदम्ब गङ्ग, कलिजुग का करित। घोर भव अपार सिन्धु, तुलसी किमि तरित ॥३॥

हे जगन्माता गङ्गाजी! आप के बिना कलियुग न जाने क्या करता! संसार रूपी अपार भीषण समुद्र से तुलसी किस तरह पार होता? ॥३॥

धरती पर आप के रहते कलियुग की कलावाजी लग नहीं सकती, वह डर से दबा रहता है। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है। अन्य मुद्रित प्रतियों में इस पद में पाठान्तर है और वह पाठ सखटक बिगड़ा हुआ प्रतीत होता है।

(२०)

ईस सीस बससि त्रिपथ लससि नभ पताल धरनि। मुनि सुर नर नाग सिद्ध, सुजन मङ्गल-करनि ॥१॥

आप शिवजी के सिर पर निवास करती हैं और आकाश, पाताल, धरती तीनों मार्ग में सोहती हैं। मुनि, देवता, मनुष्य, नाग, सिद्ध और सज्जनों के कल्याण करनेवाली हैं ॥१॥

देखत दुख-दोष-दुरति, दाह-दारिद दरनि। सगर-सुवन सासति समन, जलनिधि जल-भरनि ॥२॥

दर्शन से दुःख, दोष, पाप, ताप, दरिद्रता नष्ट होती है, आप सगर के पुत्रों की दुर्दशा मिटानेवाली और जलराशि-समुद्र को जल से भरनेवाली हैं ॥२॥

दर्शन से अलभ्य लाभ वर्णन 'द्वितीय विशेष अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

महिमा की अवधि करसि, बहु बिधि-हरि-हरनि। तुलसी करु बानि बिमल, बिमल-बारि-बरनि ॥३॥

बहुत प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी की महिमा की हद बनाती हो। हे निर्मल जल और वर्णवाली! तुलसी की वाणी को विमल कीजिये ॥३॥

ब्रह्मा के कमण्डलु में स्थित होकर, विष्णुभगवान के चरणों से उत्पन्न होकर और शिवजी की जटा में विहार करती हुई तीनों देवों की महिमा बढ़ानेवाली हैं। इस पद में सीधे गङ्गाजी का नाम न लेकर उनकी क्रिया और गुणों से परिचय कराना 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है। 'विमल जल और स्वच्छ वर्ण' संज्ञाएँ साभिप्राय हैं; क्योंकि विमल वर्णवाली ही दूसरों की वाणी निर्मल करने में समर्थ हो सकती है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। विमल शब्द दो बार आया है; किन्तु अर्थ पृथक् होने से 'यमक अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(२१)

राग बिलावल ।

जमुना ज्यौँ ज्यौँ लागी बाढ़न । त्यौँ त्यौँ सुकृत सुभट कलि-भूपहि, निदरि लगे बहि काढ़न ॥ १ ॥

ज्यों ज्यों यमुनाजी बढ़ने लगीं त्यों त्यों पुण्य रूपी वीरों ने कलियुग रूपी राजा का अनादर करके (संसार रूपी राजधानी से) उसको बाहर निकालने लगे ॥१॥

यमुना नदी के बढ़ने से सुकृत-भट का बली होना 'प्रथम उल्लास अलंकार' है। पुण्य में शूरवीर का आरोप और कलि में राजा का आरोपण 'परम्परित रूपक' है।

ज्यौँ ज्यौँ जल मलीन त्यौँ त्यौँ जम-गन मुख मलीन लहै आढ़ न । तुलसिदास जगदघ जवास ज्यौँ, अनघ-आगि लगे डाढ़न ॥ २ ॥

ज्यों ज्यों (बाढ़ के कारण) पानी गंदला होता है त्यों त्यों यमदूतों के मुख पर उदासी बढ़ती जाती है, वे अपने बचाव के लिये ओट नहीं पाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—जगत के पाप रूपी यवासे निष्पापता (पुण्य) रूपी आग से जलने लगे अर्थात् यमुनाजी की वृद्धि से अधर्म का नाश और धर्म की वृद्धि हुई है ॥२॥

पाप में यवासे का आरोप और अनघता में अग्नि का आरोपण इसलिये किया कि वर्षा के जल का स्पर्श होते ही जवास के वृक्ष जल जाते हैं। यहाँ उपमेय उपमान में पूर्ण रूप से एक रूपता दिखाना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

(२२)

राग भैरव ।

सेइय सहित सनेह देह-भरि, कामधेनु कलि कासी । समन सोक-सन्ताप-पाप-रुज, सकल सुमङ्गल रासी ॥ १ ॥

कलियुग में काशी रूपी कामधेनु की सेवा शरीर रहने तक प्रीति के साथ करनी चाहिये जो शोक, दुःख, पाप और रोगों का नाश करती है तथा सम्पूर्ण सुन्दर मङ्गलों की राशि है ॥१॥

इस पद में कविजी ने कामधेनु उपमान के समस्त अङ्गों का आरोप काशीपुरी उपमेय में किया है। यह 'साङ्गरूपक अलंकार' है। स और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

मरजादा चहुँ ओर चरन बर, सेवत सुर-पुरबासी । तीरथ सब सुभ अङ्ग रोम सिव,-लिङ्ग अमित अबिनासी ॥२॥

चारों दिशाओं की सीमा ही सुन्दर चरण है, पुरवासी रूपी देवता सेवा करते हैं अर्थात् जिस तरह देवलोक में कामधेनु की सेवा देवतावृन्द करते हैं वैसे ही काशी-कामधेनु की सेवा नगर-निवासी रूपी देवता करते हैं। कल्याण रूप सब तीर्थ अङ्ग हैं और अपरिमित अक्षय शिवलिङ्ग रोमावलियाँ हैं ॥ २ ॥

अन्तर-अयन अयन भल थन-फल, बच्छ-बेद-बिस्वासी । गलकम्बल बरना बिभाति जनु, लूम लसति सरितासी ॥३॥

अन्तर्गृही रहने का सुन्दर स्थान (गोशाला) है, चारों फल थन हैं और वेद में विश्वास रखनेवाले प्राणी बछड़े हैं। वरनानदी ऐसी शोभायमान मालूम होती है मानों ललरी हो और असी-नदी पूँछ के समान सोहती है ॥ ३ ॥

'अयन' शब्द दो बार आया है; किन्तु अर्थ दोनों के भिन्न होने से 'यमक अलंकार' है। गैया की ललरी सोहती ही है, उसकी उत्प्रेक्षा वरना नदी की करना 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। लूम-उपमेय, असीनदी-उपमान, लसना साधारण-धर्म है; किन्तु वाचकपद न रहने से 'वाचकलुप्तोपमा' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

दंडपानि भैरव बिषान मल,-रुचि खल-गन भयदा-सी । लोल-दिनेस त्रिलोचन लोचन, करनघंट घंटा सी ॥४॥

दण्डपाणि और भैरव सींग हैं वे पाप में प्रीति रखनेवाले खलों को भयदायक तलवार हैं। लोलार्क और त्रिलोचन-तीर्थ नेत्र हैं, कर्णघण्टा-तीर्थ गले के घण्टे के समान है ॥ ४ ॥

तलवार-उपमान का गुण सींग-उपमेय में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। घण्टा-उपमेय, कर्णघण्ट-उपमान, सी-वाचक है; किन्तु साधारण-धर्म न रहने से 'धर्मलुप्तोपमा अलंकार' है। लोचन शब्द में यमक है।

मनिकर्निका बदन ससि सुन्दर, सुरसरि-सुख सुखमा सी। स्वारथ परमारथ परिपूरन, पञ्चकोस महिमा सी ॥५॥

मणिकर्णिका-कुण्ड चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख है और गङ्गाजी का आनन्द परम शोभा के समान है। स्वार्थ और परमार्थ की परिपूर्णता से युक्त पञ्चकोसी परिक्रमा महिमा के बराबर है ॥ ५ ॥

मुख-उपमेय, मणिकर्णिका और चन्द्रमा-उपमान, सुन्दरता साधारण-धर्म है; किन्तु वाचक पद न रहने से 'वाचकलुप्तोपमा' है। दूसरे चरण में 'पूर्णोपमा अलंकार' है। स-और प अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

बिस्वनाथ पालक कृपाल चित, लालति नित गिरिजा सी। सिद्धि सची सारद पूजहिं मन,-जोगवत रहति रमा सी ॥६॥

दयालु चित्त जगत के स्वामी शिवजी पालनेवाले और पार्वतीजी के समान सती-शिरोमणि सदा प्यार करनेवाली हैं। आठो सिद्धियाँ इन्द्राणी-ब्रह्माणी शुश्रूषा करती हैं और लक्ष्मीजी के समान (त्रिलोक स्वामिनी) देखती रहती हैं ॥६॥

उपमा और उदात्त की संसृष्टि है और अनुप्रास भी है।

पञ्चाच्छरी-प्रान मुद-माधव, गव्य सु-पञ्च-नदा सी। ब्रह्म जीव सम राम-नाम दोउ,-आखर बिस्व-बिकासी ॥७॥

पञ्चाक्षरी मन्त्र (नमःशिवाय) इसके पाँचों प्राण हैं, माधव तीर्थ पसन्नता है, पाँचों नदियाँ (गङ्गा, वरना, असी, किरणा और धूतपापा। काशी का वह प्रसिद्ध स्थान जहाँ किरणा और धूतपापा नदियाँ गङ्गाजी में मिली थीं; किन्तु अब ये दोनों नदियाँ पट कर लुप्त हो गई हैं) पञ्चगव्य (दूध दही घृत, गोबर और मूत्र) के समान हैं। राम नाम के दोनों अक्षर ब्रह्म और जीव के समान संसार के प्रकाशक हैं अर्थात् जैसे ब्रह्म-जीव शरीर में विद्यमान रहकर जगत में प्रकाशित हैं, वैसे काशी-कामधेनु में दोनों अक्षर ब्रह्म और जीव के समान हैं ॥ ७ ॥

चारित चरति करम कुकरम करि, मरत जीव-गन घासी। लहत परम-पद पय पावन जेहि, चहत प्रपञ्च-उदासी ॥८॥

सुकर्म और कुकर्म करके मरनेवाले जीव-समूहों के चरित्र ही चरने की घास (चारा) है। उन जीवों की मोक्ष प्राप्त होना पवित्र दूध है जिसको संसार से विरक्त जन चाहते हैं ॥८॥

कहत पुरान रची केसव निज,-कर करतूति-कला सी ।
तुलसी बसि हरपुरी राम-जपु, जो भयो चहइ सुपासी ॥९॥

पुराण कहते हैं कि विष्णु भगवान ने (काशीपुरी को) अपने हाथ से बना कर अपनी कारीगरी का कौशल सा दिखाया है। रे तुलसी ! यदि तू सुखी होना चाहता है तो शिवपुरी (काशी) में रह कर राम नाम का जाप कर ॥९॥

(२३)

राग वसन्त ।

सब सोच बिमोचन चित्रकूट । कलि हरन करन कल्यान-बूट ॥१॥

सब प्रकार के सोच को चित्रकूट छुड़ानेवाला, पापहारी और कल्याण-कारी वृक्ष रूप है ॥१॥

चित्रकूटपर्वत और कल्याणकारी (कल्प) वृक्ष का साङ्गरूपक वर्णन है ।

सुचि अवनि सुहावनि आलवाल । कानन बिचित्र बारी बिसाल ॥ मन्दाकिनि मालिन सदा सींच । बर बारि बिषम नर नारि नीच ॥२॥

सुहावनी पवित्र भूमि थाला है, विलक्षण वन बड़ा बगीचा है जिसको मन्दाकिनी रूपी मालिन श्रेष्ठ जल से कठिन नीच स्त्री पुरुष रूपी पौधों को सींचती हैं ॥२॥

साखा सुसृङ्ग भूरुह सुपात । निर्भर मधु बर मृदु मलय बात ॥ सुक-पिक-मधुकर मुनिबर बिहारु । साधन-प्रसून फल-चारि-चारु ॥३॥

सुन्दर शिखर डाली है, वृक्ष शोभन पत्ते हैं, झरनों का उत्तम जल मकरन्द है और सुगन्धित पवन कोमलता है। मुनिवरों का विहार तोता कोकिल और भ्रमर पुञ्ज हैं, उनके साधन फूल तथा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चारों उत्तम फल हैं ॥३॥

भव घोर घाम हर सुखद छाँह । थपेउ थिर प्रभाउ जानकी-नाह ॥ साधक सुपथिक बड़ भाग पाइ । पावत अनेक अभिमत अघाइ ॥४॥

संसार रूपी भयङ्कर घाम को दूर कर छाँह सुख देनेवाली है, इस (वृक्ष) के प्रभाव को जानकीनाथ ने अटल स्थापन किया है । सुन्दर साधना करनेवाले यात्री हैं, बड़े भाग्य से इसको छाँह पाते हैं और अनेक प्रकार के मनोरथों को पा कर अघा जाते हैं ॥४॥

रसएक रहित गुन-कर्म-काल । सिय-राम-लखन पालक कृपाल ॥ तुलसी जो राम-पद चहिय प्रेम । सेइय गिरि करि निरुपाधि नेम ॥५॥

सदा एक समान गुण, कर्म और समय के दोषों से रहित है, कृपालु रामचन्द्रजी, सीताजी और लक्ष्मणजी इसके रक्षक हैं । तुलसी ! यदि तू रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम चाहता है तो कपट छोड़ कर नियम-पूर्वक पर्वत (कामतानाथ) की सेवा कर ॥५॥

(२४)

राग कान्हरा ।

अब चित चेति चित्रकूटहि चल । कोपित कलि लोपित मङ्गल-मग, बिलसत बढ़त मोह-माया-मल ॥१॥

अब मन सचेत होकर तू चित्रकूट को चल, क्योंकि कलियुग ने क्रुद्ध होकर मङ्गल का मार्ग छिपा दिया, दिनों दिन अविद्या, छल और पाप क्रीड़ा करते हुए बढ़ते हैं ॥१॥

भूमि बिलोकि राम-पद-अङ्कित, बन बिलोकि रघुबर बिहार- थल । सैल-सृङ्ग भव भङ्ग हेतु लखि, दलन कपट-पाखंड-दम्भ-दल ॥२॥

रामचन्द्रजी के चरण-चिन्हों से चिन्हित धरती को देख और रघुनाथजी के विहारस्थल वन को निहार तथा संसार सम्बन्धी दुःखों के नाश के कारण एवम् कपट, पाखण्ड, अहङ्कार-समूह के नसानेवाले पर्वत-शिखर के दर्शन कर ॥२॥

जहँ जनमे जग-जनक जगतपति, बिधि हरि हर परिहरि प्रपञ्च-छल । सकृत प्रवेस करत जेहि आस्रम, बिगत बिषाद भये पारथ नल ॥३॥

जहाँ जगत के पिता, लोकों के स्वामी ब्रह्मा, विष्णु और महेश (संसार के उत्पन्न, पालन तथा प्रलय के) विस्तार के बहाने को छोड़ कर जन्मे थे । जिस आश्रम में एक बार प्रवेश करते ही अर्जुन और राजा नल विषाद रहित हो गये ॥३॥

त्रिदेवों के चित्रकूट में जन्म लेने की कथा पुराणों में इस प्रकार वर्णन है । सपत्नीक अत्रि मुनि की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा, विष्णु और शिवजी ने आकर कहा-मुनि श्रेष्ठ ! वर माँगिये, तब मुनि ने वर माँगा कि आप लोग मेरे पुत्र हों । ब्रह्मा के अंश से चन्द्रमा, विष्णु के अंश से दत्तात्रेय और शङ्कर के अंश से दुर्वासा उत्पन्न हुए । छल से छिना हुआ पाण्डवों और राजा नल का राज्य यहाँ तप करने से पुनः प्राप्त हुआ । इनका विशेष वृत्तान्त विनयकोश में 'नल और पाण्डु' शब्द में देखो ।

न करु बिलम्ब बिचारु चारु-मति, बरिस पाछिले सम अगिलो-पल । मन्त्र सो जाइ जपहि जो जपत भये, अजर अमर हर अँचइ हलाहल ॥४॥

हे सुन्दर बुद्धि ! कुछ भी देरी न कर, आनेवाले पल को बीते हुए वर्ष के समान समझ । (चित्रकूट में) जा कर वह मन्त्र जपे जिसको जप कर शिवजी विष पान करके भी अजर अमर हुए हैं ॥४॥

सीधे यह न कह कर कि राम नाम जप, इस बात को घुमा फिरा कर कहना 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है । हलाहल पी कर बुढ़ाई और मृत्यु से रहित होना, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है, अनुप्रास की संसृष्टि है ।

राम-नाम जप-जाग करत नित, मज्जत पय पावन पीवत जल । करिहैं राम भावतो मन को, सुख-साधन अनयास महाफल ॥५॥

राम-नाम के जाप का यज्ञ करने से और नित्य पयस्विनी के पवित्र जल में स्नान तथा पान करने से रामचन्द्रजी मनोभिलाष पूरा करेंगे, इस सुख मय साधन से बिना परिश्रम ही महान् फल की प्राप्ति होगी ॥५॥

कामद-मनि कामता-कल्पतरु, सो जुग जुग जागत जगतीतल ।
तुलसी तोहि बिसेष बूझिये, एक प्रतीति-प्रीति एकइ बल ॥६॥

कामतानाथ जगतीतल (पृथ्वी) पर वाञ्छित फल देने के लिये युग युग से चिन्तामणि और कल्पवृक्ष रूप प्रसिद्ध हैं। तुलसी ! तुझ को विशेष रूप से उन (कामदगिरि) में विश्वास, प्रीति और एक उन्हीं का बल समझना चाहिये ॥६॥

यहाँ कामतानाथ-उपमेय और चिन्तामणि कल्पतरु-उपमान का पूर्णरूप से एकरूपता 'समअभेदरूपक अलङ्कार' है। कल्पवृक्ष का प्रभाव सब के लिये समान सुखदायक है; किन्तु तुलसीदासजी का अपने वास्ते विशेष प्रतीति, प्रीति और बल समझना 'विशेषक अलंकार' की ध्वनि है। 'जुग' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(२५)

रागधनाश्री ।

अञ्जनागर्भ-अम्भोधि-सम्भूत-विधु, विबुध-कुल-कैरवानन्दकारी ।
केसरी चारु लोचन चकोरक सुखद, लोक-गन सोक-सन्ताप हारी ॥१॥

आप अञ्जनी के गर्भ रूपी समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा रूप, देव-कुल रूपी कुमुद-वन के आनन्दित (विकसित) करनेवाले, केशरी वन्दर के सुन्दर नेत्र रूपी चकोर को सुखदायक और समस्त लोकों के शोक-सन्ताप को हरनेवाले हैं ॥१॥

अञ्जनीदेवि के उदर में समुद्र का आरोप, हनूमानजी में चन्द्रमा का, देवकुल में कुइँबेरे के वन का और केसरी के नेत्रों में चकोर का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति जय बाल-कपि-केलि कौतुक उदित,-चंडकर-मंडल ग्रासकर्त्ता। राहु रवि सक्र पवि गर्व खर्बीकरन, सरन भय हरन जय भुवन-भर्त्ता ॥२॥

बाल्यावस्था में वानरी खेल का कुतूहल करके उदय हुए सूर्य्य-मण्डल को मुँह का कौर बना लिया। राहु, सूर्य्य, इन्द्र और वज्र के गर्व को चूर चूर कर दिया, लोकों के स्वामी, शरणागतों के भय के हरनेवाले (पवनकुमार) की जय हो, जय हो, जय हो ॥२॥

'जयति जय' शब्द में आदर की विप्सा है। राहु, सूर्य्य, इन्द्र और वज्र का साथ ही गर्व भञ्जन करना, मनोरञ्जन कथन 'सहोक्ति अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है। हनू-

मानजी के जन्म आदि का हाल विनयकोश में 'हनूमान' शब्द देखो। सूर्य्य को अपने तेज का गर्व था कि मेरे समीप कोई आ नहीं सकता। राहु को घमण्ड था कि मेरे सिवा सूर्य्य जैसे तेजोमय देव को कोई ग्रास नहीं कर सकता। इन्द्र को अपने बल तथा वज्र का अभिमान था और वज्र को अपनी कठोरता का दर्प था कि मेरे आघात से कोई बच नहीं सकता। सब के गर्व साथ ही चूर हो गये।

जयति रनधीर रघुबीर-हित देवमनि, रुद्र अवतार संसार-पाता। बिप्र सुर सिद्ध मुनि आसिषाकर बपुष, बिमल-गुन बुद्धि-बारिधि-बिधाता ॥३॥

युद्ध में साहसी, रघुनाथजी के हितैषी, देवताओं के शिरोमणि, शिवजी के औतार और संसार के रक्षक हैं। ब्राह्मण, देवता, सिद्ध और मुनियों के आशीर्वाद-स्वरूप शरीरवाले, स्वच्छ गुणों के समुद्र तथा बुद्धि के (उत्पन्न करनेवाले आप) ब्रह्मा हैं ॥३॥

निर्मल गुण में समुद्र का आरोप, बुद्धि उत्पन्न करने में ब्रह्मा का आरोप 'रूपक अलंकार' है। पहले गुण और बुद्धि का नाम लेकर उसी क्रम से समुद्र और विधाता का आरोप 'यथा-संख्य अलंकार' है। सहोक्ति की ध्वनि और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति सुग्रीव सिच्छादि रच्छन निपुन, बालि बल-सालि बध मुख्य हेतू। जलधि लङ्घन सिंह सिंहिका-मद-मथन, रजनिचर-नगर उत्पात केतू ॥४॥

आप शिक्षा आदि से सुग्रीव की रक्षा करने में प्रवीण और बल से भरे बाली को मारने के मुख्य कारण हैं। आप की जय हो। समुद्र लाँघते हुए सिंह के समान निर्भय सिंहिका राक्षसी के घमण्ड को मथनेवाले और राक्षसों के नगर (लङ्का) के लिये उत्पातकारी केतु (पुच्छलतारा) रूपी हैं ॥४॥

उपमा और रूपक का सन्देहसङ्कर तथा हनूमानजी-उपमेय, केतु-उपमान में पूर्णरूप से एकरूपता कथन 'समअभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

जयति भू-नन्दिनी-सोच-मोचन बिपिन,-दलन घननाद-बस बिगत सङ्का। लूम-लीला अनल-ज्वालमालाकुलित, होलिका करन लङ्केस लङ्का ॥५॥

जनकनन्दिनी के सोच को छुड़ा कर रावण की अशोकवाटिका को विध्वंस कर निःशङ्क मेघनाद के वश हो गये। आप की जय हो। अग्नि की ज्वालमाला से युक्त पूँछ के खेल से लङ्कापति की राजधानी लङ्का को होली कर डाला ॥५॥

जयति सौमित्रि-रघुनन्दनानन्दकर, रिच्छ-कपि-कटक सङ्घट विधाई । बाँधि व.रिधि सेतु अमर मङ्गल हेतु, भानुकुल-केतु रन-बिजयदाई ॥६॥

लक्ष्मण और रघुनाथजी को आनन्दित करने के लिये आप भालु-बन्दरों की सेना के व्यवस्थापक हुए, आप की जय हो। देवताओं के कल्याणार्थ समुद्र में पुल बाँध कर सूर्य्यवंश के पताका (रामचन्द्रजी) को युद्ध में विजय दिया ॥६॥

जयति जय बज्रतनु दसन मुख नख बिकट, चंड भुजदंड तरु सैल पानी । समर तैलिकजन्त्र तिल-तमीचर-निकर, पेरि डारे सुभट घालि घानी ॥७॥

वज्र के समान कठोर शरीर, दाँत, मुख और नख विकराल है, अप्रमेय बलशाली भुजाएँ, हाथ में पर्वत तथा वृक्ष धारण किये, आप की जय हो । युद्ध रूपी कोल्हू में तिल रूपी समूह राक्षस भटों को घानी की तरह पेर कर नाश कर डाले ॥ ७ ॥

'वज्र तनु' में वाचक धर्म लुप्तोपमा है । 'जयति जय' शब्द में आदर की विप्सा है । युद्ध में कोल्हू का आरोप करके राक्षसों में तिल का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

जयति दसकंठ घटकरन वारिदनाद,-कदन-कारन कालनेमि-हन्ता । अघट घटना सुघट सुघट-विघटन बिकट, भूमि पाताल जल गगन गन्ता ॥८॥

रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के नाश के कारण और कालनेमि के वध करनेवाले, आप की जय हो । न होने योग्य कार्य को कर दिखानेवाले और अच्छे होनहार को बिगाड़ने में बड़े भीषण, पृथ्वी, पाताल, जल और आकाश में गमन करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

समुद्रोल्लङ्घन, लङ्कादहन और विभीषण को लङ्का का राजा बनाना दुर्गम घटना थी, उस को सुगम कर दिया । रावण और बाली का संहार कठिन था वह कराया । रावण-बाली का ऐश्वर्य बना हुआ धूल में मिला दिया । यमक और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

बिस्व बिख्यात बानइत बिरदावली, बिदुष बरनत बेद बिमल बानी । दासतुलसी त्रास समन सीता-रमन, सङ्ग सोभित राम-राजधानी ॥६॥

वीरता में आप की नामवरी जगत्प्रसिद्ध है, विद्वान और वेद निर्मल वाणी से वर्णन करते हैं । आप तुलसीदास के भय को नसानेवाले और सीतारमण के साथ उनकी राजधानी (अयोध्यापुरी) में शोभित होनेवाले हैं ॥ ६ ॥

'व' अक्षर की वार वार आवृत्ति में अनुप्रास है और नामवरी वर्णन में विद्वान और वेद की निर्मल वाणी का प्रमाण देना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है । विनयपत्रिका में पद संख्या १० ११-१२-२५-२६-२७-२६-३८-३६-४०-४३-४४-४६-और ४६ से ६१ तक के जो पद आये हैं उन्हें गोसाँईजी ने राग धनाश्री वा रामकली के नाम से प्रसिद्ध किया है । छन्दःशास्त्र के अनुसार ये सभी दण्डक 'झूलनाछन्द' हैं । अन्तर केवल यह है कि झूलना की रचना १०-१०-१०-७ मात्राओं के विराम से होती है, प्रत्येक चरण सैंतीस मात्रा के होते हैं ! अन्त में एक यगण आता है । इन दण्डकों में यगण सब चरणों के अन्त में आया है; किन्तु विराम प्रायः २०-१७ मात्राओं का है । बहुत सी मुद्रित प्रतियों में संशोधकों की कृपा से कितने ही अनावश्यक शब्द बढ़ाये गये हैं जिससे उन पदों के पढ़ने में खटक आ जाती है, उन्हें बचा कर पार करना पड़ता है ।

(२६)

मर्कटाधीस मृगराज बिक्रम महा,-देव मुद-मङ्गलालय कपाली । मोह मद कोह कामादि-खल-सङ्कुला, घोर-संसार-निसि किरनमाली ॥१॥

हे वानरों के स्वामी ! आप सिंह के समान पराक्रमी, देवताओं में श्रेष्ठ, आनन्द-मङ्गल के स्थान और शिवजी के रूप हैं । अज्ञान, घमण्ड, क्रोध और काम आदि दुष्टों से भरी हुई संसार रूपी भीषण रात्रि के नसानेवाले सूर्य्य हैं ॥ १ ॥

इस पद के पूर्वार्द्ध में वाचकलुप्तोपमा और उत्तरार्द्ध में परम्परितरूपक अलंकार है ।

जयति लसदञ्जनादितिज कपि केसरी,-कस्यपप्रभव जगदार्त्ति-हर्त्ता । लोक लोकप कोक-कोकनद सोक हर, हंस-हनुमान कल्यान-कर्त्ता ॥२॥

अञ्जनी रूपिणी अदिति और केशरी वानर रूपी कश्यप से उत्पन्न (देवता) जगत के दुःख को हरनेवाले, आप की जय हो । हे हनूमानजी ! आप लोक रूपी चक्रवाक और दिग्-पाल रूपी कमल के शोक को दूर करने में सूर्य्य के समान कल्याण करनेवाले हैं ॥ २ ॥

परम्परितरूपक और वाचकलुप्तोपमा की संसृष्टि है। अनुप्रास है और 'लोक तथा कोक' शब्द में यमक है। लोक लोकप और कोक कोकनद में यथासंख्य अलंकार है।

जयति सुबिसाल बिकराल-बिग्रह बज्र,-सार सर्वांङ्ग भुजदंड भारी। कुलिस नख दसन बर लसत बालधि बृहद, बीर सस्त्रास्त्र-धर कुधर-धारी ॥३॥

सर्वाङ्ग सुन्दर शरीर विशाल, भयानक और वज्र का सार रूप है तथा भुजाएँ लम्बी हैं, आपकी जय हो। नख और दाँत वज्र के समान श्रेष्ठ, लम्बी सुहावनी पूँछ, शूरवीर अस्त्र शस्त्र लिये (द्रोणाचल) पर्वत धारी हैं ॥ ३ ॥

जानकी सोच सन्ताप मोचन राम, लछमनानन्द बारिज बिकासी। कीस कौतुक केलि लूम लङ्का दहन, दलन कानन तरुन-तेज-रासी ॥४॥

जानकीजी के सोच और रामचन्द्रजी के दुःख को छुड़ानेवाले, लक्ष्मणजी के आनन्द रूपी कमल को विकसित करनेवाले, वानरी कुतूहल के खेल से पूँछ द्वारा लङ्का के जलाने वाले अशोक वन के नाशक और नवीन तेज के राशि हैं ॥ ४ ॥

उपमेय उपमान की पूर्णरूप से एक रूपता कथन में 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

जयति पाथोधि पाषान जलजान कर, जातुधान-प्रचुर हर्ष-हाता। दुष्ट रावन कुम्भकर्न पाकारिजित, मर्मभित्कर्म परिपाक-दाता ॥५॥

समुद्र में पत्थर को जहाज़ बनानेवाले और राक्षसवृन्द के आनन्द के नाशक, आप की जय हो। दुष्ट रावण, कुम्भकर्ण और मेघनाद के भेद को जान कर उन्हें कर्म का फल देनेवाले हैं ॥ ५ ॥

राक्षसों का जैसा कर्म था वैसा फल दिया, यथायोग्य का सङ्ग 'प्रथम सम अलंकार' है।

जयति भुवनैक-भूषन बिभीषन बरद, बिहित कृत राम-संग्राम-साका। पुष्पकारूढ़ सौमित्रि सीता सहित, भानुकुल-भानु कीरति-पताका ॥६॥

जगत के अद्वितीय भूषण रूप विभीषण को वर देनेवाले और संग्राम में रामचन्द्रजी के लिये बहादुरी का काम करके सुख्याति पानेवाले, आप की जय हो। लक्ष्मण और सीताजी के सहित पुष्पक-विमान पर विराजमान सूर्य्यवंश के सूर्य्य (रामचन्द्रजी) के सुयश के आप पताका रूपी हैं ॥ ६ ॥

उपमेय उपमान की पूर्ण रूप से एकरूपता करने में 'समअभेदरूपक अलंकार' है। भ, य और स आदि अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

जयति पर जन्त्र-मन्त्राभिचार ग्रसन, कार्मन-कूट कृत्यादि हन्ता। साकिनी डाकिनी पूतना प्रेत बेताल भूत प्रमथ जूथ जन्ता ॥७॥

विरोधियों के किये यन्त्र, मन्त्र, मारण-मोहन आदि प्रयोगों के ग्रसनेवाले, कपट और राक्षसी बाधा आदि कामों के नाश करने में प्रवाण, आप की जय हो। योगिनी, चुड़इल, बालकों की ग्रहबाधा, पिशाच, बेताल, भूत और प्रमथ वृन्द के आप जीतनेवाले हैं ॥ ७ ॥

जयति बेदान्त बिधि बिबिध बिद्या बिसद, बेद बेदाङ्ग-बिद ब्रह्मबादी। ज्ञान बैराग्य बिज्ञान भाजन बिभव, बिमल गुन गनत सुक नारदादी ॥ ८ ॥

शास्त्र-विधान, नाना प्रकार की निर्मल विद्या, वेद-वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष, निरुक्ति) के ज्ञाता और ब्रह्मज्ञानी, आपकी जय हो। ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के पात्र, ऐश्वर्यवान जिनके विशुद्ध गुण को शुकदेव और नारद आदि मुनि गाते हैं ॥ ८ ॥

'ब' अक्षर की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास अलंकार है।

काल गुन कर्म माया मथन निस्चल,-ज्ञान ब्रत सत्य-रत धर्म-चारी। सिद्ध सुरबृन्द जोगीन्द्र सेवित सदा, दासतुलसी प्रनत भय तमारी ॥ ९ ॥

काल, गुण, कर्म और माया के मथनेवाले, ज्ञानव्रत में अटल, सत्य में तत्पर और धर्मानुसार चलनेवाले, सिद्ध देवतावृन्द और योगेश्वरों से सदा सेवित, शरणागत तुलसीदास के भय रूपी अन्धकार के आप सूर्य्य हैं ॥ ९ ॥

भय पर तम का आरोप करके हनूमानजी पर सूर्य्य का आरोपण इसलिये किया कि सूर्य्य भगवान अपने प्रकाश से अँधेरे का नाश करते हैं। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

(२७)

मङ्गलागार संसार भारापहर, बानराकार-बिग्रह पुरारी। राम रोषानल ज्वालमालामिष,-ध्वान्तचर-सलभ संहार-कारी ॥१॥

मङ्गल के भवन, संसार-सम्बन्धी बोझ के हरनेवाले, वानर के आकृति की देह धारण किये हुए आप शिव हैं। रामचन्द्रजी के क्रोधाग्नि की समूह लपट के बहाने राक्षस रूपी पतङ्गों के आप संहार करनेवाले हैं ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी के क्रोध में अग्नि का आरोप और राक्षस वृन्द पर पाँखी का आरोपण इसलिये किया कि अग्नि में पड़ कर पतङ्ग भस्म होते हैं, परम्परित के ढङ्ग में 'समअभेद रूपक अलंकार' है। राक्षस रामचन्द्रजी की क्रोधाग्नि में भस्म हुए हैं, इस बात को बहाने (मिस) में डाल कर हनूमानजी का पुरुषार्थ वर्णन करना 'कैतवापह्नुति अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

जयति मरुदञ्जनामोद-मन्दिर नतग्रीव सुग्रीव दुःखैक बन्धो। जातुधानोद्धत क्रुद्ध कालाग्नि हर, सिद्ध-सुर-सज्जनानन्द सिन्धो॥२॥

पवनदेव और अञ्जनी के मनोविनोद के मन्दिर, दुःख से नीची गर्दन किये सुग्रीव के अद्वितीय सहायक-बन्धु, आप की जय हो। उग्र राक्षसों के क्रोध रूपी प्रलयाग्नि को नष्ट करनेवाले सिद्ध, देवता और सज्जनों के लिये आनन्द के समुद्र हैं॥ २॥

एक हनूमानजी को बहुत विधि से वर्णन करना 'द्वितीय उल्लेख अलंकार' है।

जयति रुद्राग्रनी बिस्व बिद्याग्रनी, बिस्व बिख्यात भट-चक्रवर्ती। सामगाताग्रनी काम-जेताग्रनी, राम हित राम-भक्तानुवर्ती॥ ३॥

ग्यारह रुद्रों में प्रधान, संसार की विद्याओं में अग्रगण्य, जगद्विख्यात सार्वभौम योद्धा, आप की जय हो। सामवेद के गाने में मुख्य गायनाचार्य्य, काम को जीतने में सर्व श्रेष्ठ रामचन्द्रजी के उपकारी और रामभक्तों के अनुयायी हैं॥ ३॥

इस पद में उत्तरोत्तर हनूमानजी का उत्कर्ष वर्णन में 'सार अलंकार' है।

जयति संग्राम जय राम सन्देह हर, कोसला कुसल कल्यान भाखी। राम बिरहार्क सन्तप्त भरतादि नर,-नारि सीतल-करन कल्पसाखी॥ ४॥

संग्राम में जीत करा कर रामचन्द्रजी के सन्देह को हरनेवाले और अयोध्यापुरी के कुशल-मङ्गल के कहनेवाले, आप की जय हो। रामचन्द्रजी के वियोग रूपी सूर्य्य से जलते हुए भरत आदि (अयोध्यावासी) स्त्री-पुरुषों को शीतल करनेवाले आप कल्पवृक्ष की डाली रूप हैं॥ ४॥

'जयति जय' शब्द के पृथक् अर्थ होने में 'यमक' है। हनूमानजी में कल्पवृक्ष की डाली का आरोपण इसलिये किया कि भरत आदि अयोध्यावासियों पर राम-विरह-सूर्य्य के ताप से सन्तप्त का आरोप कर चुके हैं। घाम का तपा हुआ व्याकुल मनुष्य वृक्ष की छाया पा कर सुखी होता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति सिंहासनासीन सीता-रमन, निरखि निर्भर हरष नृत्यकारी । राम-सम्म्राज सोभा सहित सर्वदा, तुलसि-मानस-रामपुर बिहारी ॥ ५ ॥

सीता-रमण को सिंहासन पर बैठे देख आनन्द से परिपूर्ण होकर नृत्य करनेवाले; आप की जय हो। रामचन्द्रजी के साम्राज्य की शोभा के सहित सदा तुलसी के मन रूपी रामनगर (अयोध्या) में आप विहार करनेवाले हैं ॥ ५ ॥

उपमेय और उपमान में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

(२८)

वात-सञ्जात विख्यात विक्रम बृहद्बाहु बल बिपुल बालधि बिसाला । जातरूपाचलाकार-विग्रह-लसत, लोम विद्युल्लता-ज्वाल-माला ॥ १ ॥

पवनकुमार प्रसिद्ध पराक्रमी, आजानबाहु, अत्यन्त बली और लम्बी पूँछवाले हैं। सोने के पहाड़ की आकृति का (पीतवर्ण) शरीर शोभायमान है और रोमावलियाँ बिजली की लता के समान प्रकाशमान हैं ॥ १ ॥

दूसरे चरण में दोनों उपमाएँ 'वाचकलुप्तोपमा अलंकार' हैं। व और ल अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति बालार्क वर बदन पिङ्गल-नयन,कपिस कर्कस जटा जूट-धारी । बिकट भृकुटी बज्र-दसन-नख बैरि मद, मत्त कुञ्जर पुञ्ज कुञ्जरारी ॥ २ ॥

उदयकाल के सूर्य्य के समान श्रेष्ठ मुख, पीले नेत्र और ललाई मिश्रित भूरे रङ्ग की जटाओं का कठोर जूड़ा सिर पर धारण करनेवाले, आप की जय हो। टेढ़ी भौंह, वज्र के समान दाँत और नख, शत्रु रूपी मदोन्मत्त हाथियों के झुण्ड के लिये आप सिंह रूप हैं ॥ २ ॥

वाचकलुप्तोपमा, परम्परितरूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति भीमार्जुन-व्यालसूदन-गर्व,-हर धनञ्जय-रथ त्रानकेतू। भीषम द्रोन करनादि पालित काल,-दृक सुजोधन चमू निधन हेतू ॥ ३ ॥

भीमसेन, अर्जुन और गरुड़ के गर्व को हरनेवाले, पारथ के रथ में पताका पर बैठ कर रक्षा करनेवाले आप की जय हो। भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य्य और कर्ण आदि वीरों से रक्षित काल की दृष्टिवाली दुर्योधन की सेना के आप ही नाश के कारण हैं ॥ ३ ॥

भीमसेन का गर्व प्रहार—महाभारत के वनपर्व में लिखा है कि जब पाण्डवों को वनवास हुआ था, तब मार्ग में जाते हुए भीम ने देखा रास्ते में एक बुड्ढा बन्दर सो रहा है। उन्हों ने बन्दर को मार्ग से हट जाने के लिये कहा, उस बूढ़े वानर ने उत्तर दिया कि मैं बुढ़ाई के कारण असमर्थ हूँ, पूँछ हटा कर चले जाइये। भीम ने अपना सारा पुरुषार्थ लगा दिया पर पूँछ टस से मस न हुई। भीम को बड़ा आश्चर्य्य हुआ, जब उन्हों ने स्तुति की, तब हनूमानजी ने पूँछ हटा ली।

अर्जुन का गर्व प्रहार—महाभारत में अर्जुन को गर्व हुआ कि मेरे बाणों से कर्ण का रथ कोसों पीछे हट जाता है और कर्ण के बाण से मेरा रथ नाम मात्र को पीछे जाता है, फिर भी श्रीकृष्णचन्द्रजी कर्ण ही की तारीफ़ करते हैं, मेरी नहीं? पारथ के मन की बात जान कर भगवान बोले—हे अर्जुन! तुम्हारा अभिमान व्यर्थ है, इतना कह कर पताका से हट जाने के लिए हनूमानजी को इशारा किया। कर्ण के बाण लगते ही अर्जुन का रथ योजनों पीछे चला गया उस समय अर्जुन को हनूमानजी की गुरुता का बोध हुआ और गर्व जाता रहा।

गरुड़ का गर्व प्रहार—एक बार विष्णु भगवान ने गरुड़जी से कहा कि तुम जा कर हनूमान को बुला लाओ। बहुत दिनों तक उड़कर गरुड़जी पवनकुमार के पास पहुँचे और भगवान का सन्देशा कह सुनाया। हनूमानजी ने कहा—आप चलिये मैं आप के पहुँचने तक वहाँ आ जाऊँगा। गरुड़ को गर्व हुआ कि मेरे समान कोई वेगवान नहीं है। बन्दर मुझ से पहले कैसे पहुँचेगा? जब गरुड़ बैकुण्ठ में आये तब देखा हनूमानजी बैठे केशव से बातचीत कर रहे हैं। उनके हृदय से अपने वेग का गर्व दूर हो गया।

जयति गत राज दातार हरतार संसार-सङ्कट दनुज-दर्प-हारी। ईति अति भीति ग्रह प्रेत चौरानल,-व्याधि बाधा समन घोरमारी ॥ ४ ॥

(सुग्रीव और विभीषण का) गया हुआ राज्य देनेवाले, संसारी दुःखों के नाशक और राक्षसों के गर्व को हरनेवाले, आप की जय हो। बहुत बड़ी ईतिभीति, ग्रह-पीड़ा, प्रेत, चोर, अग्नि, रोग और महामारी की बाधा के आप नसानेवाले हैं ॥४॥

जयति निगमागम-व्याकरन कर्नलिपि, काव्य कौतुक कला कोटि सिन्धो । सामगायक भक्त-काम-दायक वामदेव श्रीराम प्रिय प्रेम-वन्धो ॥ ५ ॥

वेद, शास्त्र, व्याकरण कान से सुन कर उस पर टीका टिप्पणी करनेवाले, काव्य कुतूहल की कला में असंख्यों समुद्र के समान, आप की जय हो । सामवेद के गानेवाले, हरिभक्तों को वाञ्छित फलदाता, शङ्कर, श्रीरामचन्द्रजी के प्यारे और प्रेमी जनों के आप सहायक हैं ॥५॥

क, न और प अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है और वाचकधर्म लुप्तोपमा की संसृष्टि है ।

जयति घर्मान्सु सन्दग्ध सम्पाति नव,-पच्छ लोचन दिव्य देह दाता । काल कलि पाप सन्ताप सङ्कुल सदा, प्रनत तुलसीदास तात माता ॥ ६ ॥

सूर्य से जले हुए सम्पाति को नवीन पक्ष, नेत्र और सुन्दर शरीर देनेवाले आप की जय हो । कलिकाल के पाप और दुःख से भरा हुआ दीन तुलसीदास की सदा रक्षा करने में आप पिता-माता हैं ॥६॥

माता और पिता के गुणों की समता एक हनूमानजी में इकट्ठी करनी 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

(२९)

निर्भरानन्द-सन्दोह कपि-केसरी, केसरी-सुवन भुवनैक भर्त्ता । दिव्य भूम्यञ्जना मञ्जुलाकर मने, भक्त-सन्ताप-चिन्तापहर्त्ता ॥१॥

हे केशरीनन्दन ! आप पूर्णानन्द के राशि, वानरों में सिंह और भुवनमात्र के एक ही स्वामी हैं । अञ्जनी रूपी दिव्य भूमि की सुन्दर खानि से उत्पन्न रत्न रूप आप भक्तों की चिन्ता और दुःख के हरनेवाले हैं ॥१॥

'केशरी शब्द दो वार आया है; किन्तु अर्थ दोनों का भिन्न होने से 'यमक अलंकार' है । 'कपि-केशरी' शब्द श्लेपार्थी है, क्योंकि दूसरा अर्थ 'केशरी वन्दर के लिये आप पूर्ण आनन्द के राशि हैं' भी निकलता है जो कवि इच्छित होने से 'श्लेप अलंकार' है । अञ्जनी में

सुन्दर भूमि का आरोप करके हनूमानजी में मणि का आरोपण करना 'परम्परितरूपक अलंकार' है। मणि दरिद्रता नष्ट करती है और पवनकुमार रामभक्तों के सन्ताप और चिन्ता को हरते हैं। अनुप्रास भी है। यहाँ अलंकारों की संसृष्टि है।

जयति धर्मार्थ कामापवर्गद विभो, ब्रह्मलोकादि वैभव विरागी। बचन मानस कर्म सत्य धर्मव्रती, जानकीनाथ चरनानुरागी ॥२॥

अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष देने में समर्थ, ब्रह्मलोक आदि के ऐश्वर्य्य से विरक्त, आप की जय हो। वचन, मन और कर्म से सत्य तथा धर्मव्रत के पालक और सीतानाथ के चरणों के आप अनुरागी हैं ॥२॥

जयति बिहँगेस बल बुद्धि बेगाति मद,-मथन मन्मथ मथन ऊर्धरेता। महानाटक निपुन कोटि कवि-कुल-तिलक, गान गुन गर्ब गन्धर्ब-जेता ॥ ३ ॥

गरुड़ के बल, बुद्धि और अत्यन्त वेग के घमण्ड को मथनेवाले, कामदेव के दर्प को छुड़ानेवाले बाल ब्रह्मचारी आप की जय हो। महानाटक-काव्य निर्माण करने में प्रवीण आप करोड़ों कवि-कुल के शिरोभूषण और गानविद्या के गुण में गर्वीले गन्धर्वों को जीतनेवाले हैं ॥३॥

ब, म, न, क और ग अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है।

जयति मन्दोदरी केस करषन विद्यमान दसकंठ-भट-मुकुट मानी। भूमिजा दुःख-सञ्जात रोषान्तकृज्जातना जन्तु कृत जातुधानी ॥ ४ ॥

रावण जैसे घमण्डी वीरशिरोमणि योद्धा की मौजूदगी में उसकी पटरानी मन्दोदरी के बाल पकड़ कर खींचनेवाले आप की जय हो। सीताजी के दुःख से उत्पन्न हुए क्रोध द्वारा राक्षसियों की वैसी ही दुर्दशा की जैसा कि यमराज पापी जीवों की सासति करते हैं ॥४॥

राक्षसियों की आपने सासति की, इस समान्य बात की समता बिना वाचक पद के विशेष से दिखाना कि जैसा यमराज पापियों को दण्ड देते हैं 'उदाहरण अलंकार' है।

जयति रामायन स्रवन सञ्जात रोमाञ्च लोचन सजल सिथिल बानी । राम-पद पद्म-मकरन्द मधुकर पाहि, दासतुलसी सरन सूल-पानी ॥ ५ ॥

कानों से रामायण सुनकर रोमाञ्चित होकर आँखें सजल और वाणी गद्गद हो जाती है। रामचन्द्रजी के चरण-कमलों के रस के भ्रमर हाथ में त्रिशूल लिए शरणागत तुलसीदास के आप रक्षक हैं ॥५॥

रामचन्द्रजी के चरणों में कमल का आरोप, प्रीति में मकरन्द का आरोप और हनूमानजी में मधुकर का आरोपण इसलिये किया कि वह पुष्प-रस का प्रेमी होता है। यह 'परम्परित-रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(३०)

राग-सारङ्ग

जाके गति है हनुमान की। ताकी पैज पूजिआई यह रेखा कुलिस पखान की ॥ १ ॥

जिसको हनूमानजी का सहारा है, उसका पराक्रम पूरा पड़ा; यह वज्र से खींची हुई पत्थर की लकीर है ॥१॥

अघटित-घटन सुघट-बिघटन अस, बिरदावली न आन की। सुमिरत सङ्कट सोच बिमोचन, मूरति मोद-निधान की ॥ २ ॥

अनहोनी के करनेवाले और होनेवाली बात के बिगाड़ने में दूसरे की ऐसी नामवरी नहीं है। स्मरण करते ही कष्ट और सोच के छुड़ानेवाले, आनन्द के मन्दिर की मूर्त्ति हैं ॥२॥

अनुप्रास और द्वितीय विशेष अलंकार की संसृष्टि है।

ता पर सानुकूल गिरिजा हर, लखन राम अरु जानकी। तुलसी कपि की कृपा-बिलोकनि, खानि सकल कल्यान की ॥३॥

उस पर पार्वती, शिव, लक्ष्मण, रामचन्द्र और जानकीजी प्रसन्न रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि हनूमानजी की कृपा-दृष्टि सम्पूर्ण कल्याणों की खानि है ॥३॥

समस्त मङ्गलों की खानि और देवताओं की अनुकूलता की समता एक हनूमानजी की कृपा दृष्टि में स्थापन करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(३१)

राग-गौरी ।

ताकिहै तमकि ताकी ओर को । जाको है सब भाँति भरोसो, कपि केसरी-किसोर को ॥१॥

उसकी ओर क्रोध करके कौन देख सकता है जिसको सब तरह वानर केशरी के पुत्र (हनुमानजी) का भरोसा है ॥१॥

त, भ और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है ।

जन-रञ्जन अरि-गन-गञ्जन मुख,-भञ्जन-खल बरजोर को ।
बेद पुरान प्रगट पुरुषारथ, सकल-सुभट-सिरमोर को ॥ २ ॥

भक्तजनों को प्रसन्न, शत्रु-वृन्द का नाशक और दुष्टों का मुख चूर चूर करनेवाला जोरावर कौन है ? (कोई नहीं) । सम्पूर्ण शूरवीरों के शिरोमणि (हनुमानजी) का पराक्रम वेद और पुराणों में प्रसिद्ध है ॥ २ ॥

वक्रोक्ति और अनुप्रास का संसृष्टि है ।

उथपे-थपन थप्यो-उथपन करि, बिबुधन्ह बन्दीछोर को ।
जलधि लङ्घि दहिलङ्क प्रबल दल, दलन निसाचर घोर को ॥ ३ ॥

उजड़े हुए (सुग्रीव-विभीषण) को बसा कर और बसे हुए (बाली-रावण) को स्थान भ्रष्ट करके देवताओं को कैद से छुड़ानेवाला कौन है ? समुद्र लाँघकर और लङ्का जलाकर अत्यन्त बली भीषण राक्षसों की सेना का संहार करनेवाला (आप के सिवा दूसरा) कौन है ? ॥३॥

काकु से यह अर्थ प्रकट होना कि कोई नहीं है 'वक्रोक्ति अलंकार' है । उत्तरोत्तर हनूमानजी का उत्कर्ष वर्णन में 'सार अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

जा को बाल-बिनोद समुझि जिय, डरत दिवाकर भोर को ।
जाकी चिबुक चोट चूरन किय, रद मद कुलिस कठोर को ॥४॥

जिनके लड़कपन का खेलवाड़ मन में समझ कर सबेरे के सूर्य्य डरते हैं । जिनकी ठोढ़ी की चोट ने कठोर वज्र के घमण्ड को चूर करके रद्द कर दिया ॥ ४ ॥

लोकपाल अनुकूल बिलोकन, चहत बिलोचन कोर को।
सदा अभय जय मुद-मङ्गलमय, जे सेवक रनरोर को ॥ ५ ॥

जिनके नेत्रों के कोन की कृपामयी चितवन को इन्द्रादि लोकपाल चाहते हैं। युद्ध में हल्ला (हाहाकर) मचानेवाले (पवनकुमार) के जो सेवक हैं वे सदा निर्भय, विजयी और आनन्द-मङ्गल से भरे रहते हैं ॥ ५ ॥

भगत कामतरु नाम राम, परिपूरन चन्द चकोर को।
तुलसी फल चारो करतल जस,-गावत गई-बहोर को ॥ ६ ॥

भक्तों के कल्पवृक्ष, राम-नाम रूपी पूर्ण चन्द्रमा के चकोर और खोई हुई वस्तु के लौटानेवाले (श्री हनूमानजी) का यश गान करने से तुलसीदासजी कहते हैं (अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष) चारों फल मुट्ठी में आ जाते हैं ॥ ६ ॥

भक्तों के कल्पवृक्ष हैं उपमान का गुण उपमेय में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। राम-नाम में चन्द्रमा का आरोप करके हनूमानजी में चकोर का आरोपण इसलिये किया कि चकोर चन्द्रमा में अपार प्रेम रखता है। यह 'परम्परित रूपक' है।

(३२)

राग-बिलावल।

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले। साहेब कहूँ न राम से तुम से न वसीले ॥ १ ॥

हे हठीले हनूमानजी! ऐसा आप को न समझना चाहिये (कि मेरे सङ्कट की सूचना स्वामी के समीप न पहुँचे)। रामचन्द्रजी के समान कहीं स्वामी नहीं और आप से बढ़ कर जरिया नहीं है अर्थात दयालु प्रभु की सेवा में मेरी ख़बर करनेवाले आप ही हैं ॥ १ ॥

तेरे देखत सिंह के सिसु, मेढक लीले। जानत हौं कलि तेरऊ मनु-गुन-गन कीले ॥ २ ॥

आप के देखते हुए सिंह के बच्चे को मेढक निगल रहा है! ऐसा मालूम होता है मानों कलियुग ने आप के गुण-समूह को भी रूँध दिया है ॥ २ ॥

कहना तो यह है कि आप के देखते हुए मुझे क्षुद्रप्राणी सता रहा है, पर इस बात को सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है। सिंह का छौना और तुलसीदास, मेढक

और सतानेवाला संसारी प्राणी परस्पर उपमान उपमेय हैं। सिंह के बच्चे को मेढक का लीलना असिद्ध आधार है और कलिकाल हनूमानजी का गुण कीलने में समर्थ नहीं है। इस अहेतु को हेतु ठहराना 'असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

हाँक सुनत दसकन्ध के भये, बन्धन ढीले। सो बल गयउ किधौं अब भये, गर्ब गहीले ॥ ३ ॥

आप की हाँक (ललकार) सुनते ही रावण के बन्धन ढीले हुए। क्या वह बल चला गया या कि अब गर्वीले हो गये हो? ॥३॥

गर्वीले हुए हो, इस वाक्य में यह व्यङ्ग है कि परोपकार करते करते क्या यह गर्व तो नहीं हुआ कि बहुतों की भलाई कर चुका हूँ, अब परोपकार करना अनावश्यक है? यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत है।

सेवक को परदा फटे तुम,-समरथ सी ले। अधिक आपु तेँ आपनो सुनि, मानस हीले ॥ ४ ॥

सेवक का परदा फटता है, आप समर्थ हैं उसको सी लीजिये। आप सेवक को अपने से अधिक मानते हैं, उनका दुःख सुन कर मन चञ्चल हो जाता है ॥४॥

यहाँ कहना तो यह है कि मेरी मर्यादा भङ्ग होना चाहती है, उसकी रक्षा कीजिये। परन्तु इस बात को सीधे न कह घुमा कर कहना कि मेरा वस्त्र फटता है, आप सीने में प्रवीण हैं उस को सी दीजिये 'ललित अलंकार' है। सेवकों का कष्ट सुन कर मानस हिल जाता था, अपने से उन्हें बढ़ कर समझते थे; किन्तु आज यह नया परिवर्तन कैसा? असुन्दर गुणाभूत व्यङ्ग है।

सासति तुलसीदास की लखि, सुजस तुहीं ले। तिहूँ काल तिनको भलो जो, राम रँगीले ॥ ५ ॥

तुलसीदास की दुर्दशा को देख कर आप ही सुयश लीजिये। जो रामचन्द्रजी के रङ्ग में रँगे हैं उनकी तीनों काल में भलाई होती है ॥५॥

यहाँ लक्षणामूलक अगूढ़ व्यङ्ग है कि जब राम रँगीले का तीनों काल में भला होता है, तब मेरा कल्याण भी अवश्यम्भावी है। केवल आप को यश लेना है उसको हाथ से न जाने दीजिये।

(३३)

समरथ सुवन-समीर के रघुबीर पियारे। मो पर कीबे तोहि जो करि लेहि भिया रे ॥ १ ॥

हे समर्थ पवनकुमार रघुनाथजी के प्यारे, भइया! जो आप को मुझ पर अनुग्रह करना हो वह कर लीजिये (अब इससे बढ़ कर सङ्कट का समय कौन आवेगा?) ॥१॥

तेरी महिमा तें चलइ चिंञ्चिनी चियाँ रे । अँधियारो मेरी वार क्यों त्रिभुवन उँजियारे ॥ २ ॥

आप की महिमा से इमली का बीज मूल्यवान सिक्के की भाँति चलता है। आप तीनों लोकों में उँजेला करनेवाले हैं; फिर मेरी ही वार अँधेरा क्यों कर रहे हैं ? ॥२॥

यहाँ कहना तो यह है कि सुग्रीव और विभीषण इमली के चियाँ की तरह मारे मारे फिरते थे वे मूल्यवान हुए अर्थात् राज-पद पाया। आप दीन की पुकार सुनते ही सहायता करनेवाले हैं, मेरी वार इतना विलम्ब काहे को करते हैं। पर इसे सीधे न कह घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है। व्यङ्गार्थ में द्वितीय विषम अलंकार की ध्वनि है कि जगत के प्रकाशक और मेरे लिये नहीं।

केहि करनी जन जानि के सनमान किया रे । केहि अघ अवगुन आपनो करि डाड़ि दिया रे ॥ ३ ॥

किस करनी से (मुझे अपना) सेवक समझ कर सन्मान किया और किस पाप के दोष से अपना करके त्याग दिया है ? ॥३॥

खाई खींची माँगि मैं तुव नाम लिया रे । तेरे बल बलि आज लौं जग जागिं जिया रे ॥ ४ ॥

मैं ने भीख माँग कर खाया और आप का नाम लिया है। बलि जाता हूँ। आप ही के बल पर आज तक जगत में जीता जागता हूँ ॥४॥

जौं तो सौं होतो फिरो मम हेतु हिया रे । तौ क्यों बदन दिखावतो कहि बचन इयारे ॥ ५ ॥

यदि मेरा हार्दिक प्रेम आप से फिर गया होता तो मित्र की तरह बातें कह कर कैसे मुँह दिखाता ? अर्थात् विमुखी होने पर सहायता के लिये विनती करने का साहस न होता ॥५॥

तो से ज्ञान-निधान को सर्वज्ञ बिया रे । समुझत साँई-द्रोह की गति छार छिया रे ॥ ६ ॥

आपके समान ज्ञाननिधान और सर्वज्ञ दूसरा कौन है ? स्वामिद्रोहियों की दशा मैं जानता हूँ, उनकी गति खाक और मैले की सी होती है ॥६॥

स्वामिद्रोही का गति जानने में 'आत्मतुष्टि प्रमाण अलंकार' है। आप मन की बात जानते हैं, मैं स्वामिद्रोही नहीं हूँ, उनकी गति तो विष्ठा के समान अपावन और भस्मीभूत होनेवाली भव है। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

तेरे स्वामी राम से स्वामिनी सिया रे । तहँ तुलसी कहँ कौन को काको तकिया रे ॥ ७ ॥

आप के स्वामी रामचन्द्रजी और स्वामिनी सीताजी के समान हैं, वहाँ तुलसी की ख़बर करनेवाला कौन है और इसको किस का सहारा है ? ॥७॥

काकु से यह अर्थ प्रकट होना कि तुलसी को आप के सिवा दूसरा कोई जरिया नहीं है 'वक्रोक्ति अलंकार' है । कहते हैं कि उपर्युक्त दोनों पदों की रचना कविजी ने दिल्ली के शाही जेलखाने में की थी । गुसाँईजी के जीवन चरित्र में लिखा है कि दिल्लीपति के कान तक यह ख़बर पहुँची कि तुलसीदास ने मुर्दे को जीवित कर दिया है । उसने इन्हें बुला भेजा और कहा कि कुछ करामात दिखलाइये । इन्हों ने कहा राम नाम के सिवा मैं दूसरी करामात नहीं जानता । इस पर बादशाह ने जेल में बन्द करवा दिया । गोस्वामीजी ने हनूमानजी से पुकार की, अञ्जनी-कुमार ने वानरी दल से दिल्ली में आतङ्क मचा दिया । बादशाह घबड़ाया और गोसाँईजी से क्षमा माँगी, उन्हों ने क्षमा कर दी । फिर नीचे के दोनों पद लिख कर हनूमानजी से क्षमा करने के लिये विनती की । कोई कहते हैं कि बादशाह शाहजहाँ ने इन्हें बुलवाया था, परन्तु शाहजहाँ सम्वत् १६८५ में गद्दी पर बैठा था और सम्वत् १६८० में गोस्वामीजी स्वर्गवासी हुए हैं, इससे जहाँगीर ने बुलवाया होगा सम्भव यही जान पड़ता है ।

(३४)

अति-आरत अति-स्वारथी, अति-दीन-दुखारी । इनको बिलग न मानिये, बोलहिं न बिचारी ॥ १ ॥

अत्यन्त दुखी, अत्यन्त ख़ुदगर्ज़, अत्यन्त दीन और सङ्कटापन्न विचार कर नहीं बोलते, इनकी भिन्नता न माननी चाहिये ॥१॥

'अति' शब्द रुचिरता के लिये कई बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है ।

लोक रीति देखी सुनी, व्याकुल नर नारी । अतिबरषे अनबरषेहूँ देहिँ दैवहि गारी ॥ २ ॥

संसार की रीति देखी सुनी है कि घबराये हुए स्त्री-पुरुष बहुत वर्षा होने पर और अना-वृष्टि से भी दैव को गाली देते हैं ॥२॥

इस पद में व्यञ्जनामूलक गूढ़ व्यङ्ग है कि पहले मैं ने उलटी सीधी कह कर सहायता के लिये प्रार्थना की, जब आप सङ्कट छुड़ाने को दौड़े तब विरोधी को बचाने के लिये विनती करता हूँ, मेरे इस अपराध को क्षमा कीजिये ।

नाकहि आये नाथ सौं, साँसति भइ भारी ।
कहि आयउ कीबी छमा, निज ओर निहारी ॥ ३ ॥

जब भारी दुर्दशा हुई और नाक में दम आ गया, तब स्वामी से कहना पड़ा, अब अपनी ओर देख कर क्षमा कीजिये ॥३॥

इन वाक्यों में लक्षणामूलक व्यङ्ग है कि मैं आप की दया के बल पर विपक्षी को क्षमा प्रदान कर चुका हूँ । आप भक्तों की प्रतिज्ञा पूरी करते हैं, मेरी बात रखिये ।

समय साँकरे सुमिरिये, समरथ हितकारी ।
सो सब बिधि उपकार कर, अपराध बिसारी ॥ ४ ॥

सङ्कट के समय लोग समर्थ हितकारी स्वामी का स्मरण करते हैं और वह (मालिक) अपराधों को भुला कर सब तरह सेवक की भलाई करता है ॥४॥

बिगरी सेवक की सदा, साहेबहि सुधारी ।
तुलसी पर तेरी कृपा, निरुपाधि निरारी ॥ ५ ॥

सेवक से बिगड़ी हुई बात का सुधार सदा स्वामी ही करते हैं, फिर तुलसी पर तो आप की स्वार्थरहित निराली कृपा रहती है ॥५॥

मैं ने जो चूक की, उसका सुधार आप ही के किये होगा, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है । क्योंकि ऐसी रीति है कि सेवक से बिगड़ी स्वामी बनाते हैं आप स्वामी हैं और तुलसी पर निराली कृपा रखते हैं, इसकी भूल को सुधारिये ।

(३५)

कटु कहिये गाढ़े परे, सुनि समुझि सुसाँई ।
करहिँ अनभले को भलो, आपनी भलाई ॥ १ ॥

सङ्कट पड़ने पर (अल्पज्ञजन श्रेष्ठ स्वामी को) कड़ी बात कहते हैं, उसको अच्छे स्वामी सुन समझ कर अपनी भलाई से बुरे (सेवक) का भी भला करते हैं ॥१॥

समरथ सुभ जे पावहीं, बीर पीर पराई ।
ताहि तके सब ज्यौं नदी, बारिधि न बुलाई ॥ २ ॥

जो भलाई करने में समर्थ दयावीर हैं और पराये की पीड़ा पर द्रवीभूत होते हैं, उनके समीप सब आर्त्त मनुष्य कैसे दौड़ते हैं जैसे बिना बुलाये नदियाँ समुद्र के पास जाती हैं ॥२॥

समर्थ उपकारी स्वामी के पास दुखीजन आप से आप दौड़कर जाते हैं, इस साधारण बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे समुद्र नदियों को बुलाता नहीं, पर वे स्वयम् उसमें जाकर गिरती हैं 'उदाहरण अलंकार' है ।

अपने अपने को भलो, चहइँ लोग लुगाई ।

भावइ जो जेहि तेहि भजइ, सुभ असुभ सगाई ॥ ३ ॥

क्या स्त्री और क्या पुरुष सब अपनी अपनी भलाई चाहते हैं । उसके लिये भले बुरे का सम्बन्ध जो जिसको अच्छा लगता है वह उसी की सेवा करता है ॥३॥

बाँह बोल देइ थापिये, जो निज बरिआई ।

बिनु सेवा सो पालिये, सेवक की नाँई ॥ ४ ॥

जिसको भुजाओं का बल देकर आपने अपनी जोरावरी से बसाया, बिना सेवा के भी उसका पालन सेवक ही की तरह कीजिये ॥४॥

यहाँ लक्षणामूलक व्यङ्ग है कि उदार स्वामी अपनी नामवरी का ख़्याल करके कृतघ्नी सेवक की भी रक्षा करते हैं । ऐसा विचार कर मुझ पर दया कीजिये ।

चूक चपलता मेरियै, तू बड़ो बड़ाई ।

होत आदरे ढीठ है, अति नीच निचाई ॥ ५ ॥

जल्दबाजी की चूक मेरी ही है, आप बड़े हैं और आप की बड़ी महिमा है । अत्यन्त नीच प्राणी आदर करने से निचाई में ढीठ होते हैं (जैसा कि मैंने किया है) ॥५॥

बन्दिछोर बिरदावली, निगमागम गाई ।

नीको तुलसीदास को, तेरियै निकाई ॥ ६ ॥

बँधुआ को बन्धन से छुड़ाने की नामवरी आप की वेद और शास्त्रों ने गाई है । तुलसीदास की भलाई आप ही के भलेपन से होगी ॥६॥

वेद-शास्त्रों के कथन का प्रमाण देना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है ।

राग-गौरी ।

(३६)

मङ्गल-मूरति मारुत-नन्दन । सकल अमङ्गल-मूल निकन्दन ॥१॥

पवनकुमार मङ्गल की मूर्त्ति और समस्त अमङ्गलों की जड़ के नाशक हैं ॥१॥

पवन-तनय सन्तन्ह हितकारी। हृदय बिराजत अवध-बिहारी ॥
मातु पिता गुरु गनपति सारद । सिवा समेत सम्भु सुक नारद ॥२॥

वायुनन्दन सन्तों के हितकारी हैं, उनके हृदय में श्रीरामचन्द्रजी बिराजते हैं। माता, पिता, गुरु, गणेश, सरस्वती, पार्वतीजी के सहित शङ्कर, शुकदेव और नारद मुनि ॥२॥

चरन बन्दि बिनवउँ सब काहू । देहु राम-पद नेहु निबाहू ॥
बन्दउँ राम लखन बैदेही । जे तुलसी के परम सनेही ॥ ३ ॥

सब के चरणों की वन्दना करके विनती करता हूँ कि रामचन्द्रजी के चरणों में स्नेह निवाहने की क्रिया का वर दीजिये। रामचन्द्रजी, लक्ष्मणजी और जानकीजी को प्रणाम करता हूँ, जो तुलसी के अतिशय प्यारे हैं ॥३॥

(३७)

लाड़िले लखनलाल हित हौ जन के। सुमिरे सङ्कट हारि सकल मङ्गलकारि, पालक कृपाल आपने के पन के॥ १ ॥

हे प्यारे लक्ष्मणलालजी! आप सेवकों के हितकारी हैं । स्मरण करने से दुःख के हरनेवाले, सम्पूर्ण मङ्गलों के करनेवाले, अपनी की हुई प्रतिज्ञा के पालनेवाले और दया के स्थान हैं ॥१॥

धरनी धरनहार भञ्जन भुवन भार, अवतार साहसी सहस-फन के। सत्यसन्ध सत्यव्रत परम-धरम-रत, निर्मल करम बचन अरु मन के ॥ २ ॥

धरती के धारण करनेवाले, पृथ्वी का बोझ नसानेवाले, पराक्रमी आप शेषनाग के औतार हैं। सत्यवादी, सत्यव्रती, अत्युत्तम धर्म में तत्पर, कर्म, वचन और मन से निर्मल हैं ॥२॥

ध, भ, न, र, स और म अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

रूप के निधान धनु-बान-पानि तून-कटि, महाबीर बिदित जितैया बड़े रन के। सेवक सुखदायक सबल सब लायक, गायक जानकीनाथ गुन-गन के ॥ ३ ॥

शोभा के स्थान, हाथ में धनुष-बाण लिये, कमर में तरकस बाँधे और प्रसिद्ध उत्तम महावीरों को रण में जीतनेवाले हैं। सेवकों को सुख देनेवाले, सामर्थ्यवान, सब योग्य और जानकीनाथ के गुणों के गानेवाले हैं ॥३॥

भावते भरत के सुमित्रा-सीता के दुलारे, चातक चतुर राम स्याम घन के। बल्लभ उर्मिला के सुलभ सनेह बस, धनी-धन तुलसी से निरधन के ॥ ४ ॥

भरतजी के प्यारे, सुमित्रा और सीताजी के दुलारे तथा रामचन्द्रजी रूपी श्याम मेघ के आप चतुर पपीहा हैं। उर्मिला के प्राणेश्वर, स्नेह के अधीन सहज में मिलनेवाले और तुलसी से निर्धनी के लिये आप धन-कुवेर हैं ॥४॥

रामचन्द्रजी में श्याम मेघ का आरोप करके लक्ष्मणजी में चतुर चातक का आरोपण इसलिये किया कि वह मेघ का अनन्य उपासक और प्रेमी है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। दूसरे चरण में 'समअभेदरूपक अलंकार' और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(३८)

राग-धनाश्री।

लक्ष्मनानन्त भगवन्त भूधर भुजगराज भुवनेस भू-भार हारी। प्रलय पावक महाज्वालमाला वमन, समन सन्ताप लीलावतारी ॥ १ ॥

हे लक्ष्मणजी! आप अनन्त ऐश्वर्य्य शाली, भूमि के धारण करनेवाले शेषनाग, लोकों के स्वामी और धरती के बोझ को हरनेवाले हैं। प्रलयाग्नि की प्रचण्ड ज्वालमाला के उगलनेवाले, दुःख के नाशक और खेल वश जन्म लेनेवाले हैं ॥१॥

दासरथि समर समरथ सुमित्रा-सुवन, सत्रुसूदन-भरत-राम बन्धो। चारु चम्पक बरन बसन भूषन धरन, दिव्यतर भव्य लावन्य-सिन्धो ॥ २ ॥

दशरथ महाराज के पुत्र, संग्राम में समर्थ, सुमित्रानन्दन, शत्रुहन, भरत और रामचन्द्रजी के भाई हैं। सुन्दर चम्पा के रङ्ग (पीत) वस्त्र और अत्यन्त दिव्य आभूषण धारण किये, कल्याण रूप तथा शोभा के समुद्र हैं ॥२॥

जयति गाधेय-गौतम-जनक सुख-जनक, बिस्व कंटक कुटिल कोटि हन्ता। बचन चय चातुरी परसुधर-गर्ब-हर, सर्बदा रामभद्रानुगन्ता ॥ ३ ॥

विश्वामित्र, गौतमऋषि, राजाजनक को सुख उत्पन्न करनेवाले और संसार के कण्टक रूप दुष्टों के समुदाय के नाशक, आप की जय हो। वचनों की अपार चतुराई से परशुरामजी के गर्व को हरनवाले और सदा कल्याण रूप रामचन्द्रजी के पीछे चलनेवाले हैं ॥३॥

'जनक' शब्द दो बार आया है; किन्तु अर्थ दोनों का भिन्न होने से 'यमक अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति सीतेस सेवा सरस विषय-रस,-निरस निरुपाधि धुर-धर्म-धारी। बिपुल बल-मूल सार्दूल बिक्रम जलदनाद मर्दन महाबीर भारी ॥ ४ ॥

सीतानाथ की सेवा में रसीले, विषयानन्द से रूखे, उपाधि रहित और धर्म के बोझ को धारण करनेवाले आप की जय हो। अत्यन्त बल के मूल, सिंह के समान पराक्रमी और बड़े भारी शूरवीर मेघनाद का आप संहार करनेवाले हैं ॥४॥

सार अलंकार, वाचकलुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति संग्राम-सागर-भयङ्कर तरन, राम हित करन बर बाहु सेतू। उर्मिला-रवन कल्यान-मङ्गल-भवन, दासतुलसी दोष दवन हेतू ॥ ५ ॥

भयङ्कर समर रूपी समुद्र से रामचन्द्रजी को पार करने के लिये अपनी भुजाओं के पुल बनानेवाले, आपकी जय हो। उर्मिलाकान्त, कल्याण-मङ्गल के स्थान और तुलसीदास के दोषों के नाश करने में आप आदिकारण हैं ॥५॥

संग्राम में समुद्र का आरोप करके लक्ष्मणजी के बाहुओं में समुद्र का आरोपण परम्परित के सहित 'समअभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(३९)

भूमिजा-रमन-पद-कञ्ज मकरन्द रस, रसिक-मधुकर भरत भूरि भागी । भुवन-भूषन भानुबंस-भूषन भूमिपाल-मनि रामचन्द्रानुरागी ॥ १ ॥

सीतानाथ (रामचन्द्रजी) के चरण-कमलों के स्नेह रूपी रस के रसिक भरतजी बड़े भाग्य-वान भ्रमर रूप हैं। संसार के भूषण, सूर्य्य कुल के तिलक और राजाओं के शिरोमणि श्रीराम-चन्द्रजी के प्रेमी हैं ॥१॥

रामचन्द्रजी के चरणों में कमल का आरोप, स्नेह में मकरन्द का और भरतजी में सौभाग्य शाली भ्रमर का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति बिबुधेस-धनदादि दुर्लभ महा,-राज सम्म्राज सुख-पद-बिरागी । खड्गधारा ब्रती प्रथम रेखा प्रगट, सुद्ध मति-जुबति पति-प्रेम-पागी ॥ २ ॥

इन्द्र, कुबेर आदि को दुष्प्राप्य महाराज (दशरथजी) के साम्राज्य-सुख के अधिकार से विरक्त होनेवाले, आप की जय हो। (सेवा-धर्म कठिन) खड्ग की धार है, उस व्रत के निवाहने में जिनका प्रथम चिह्न प्रसिद्ध है और जिनकी पवित्र बुद्धि रूपिणी स्त्री पति (रामचन्द्रजी) के प्रेम में सराबोर (आदर्श पतिव्रता रूपी) है ॥२॥

यहाँ भरतजी की मति और पतिव्रता स्त्री में पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन 'समअभेद-रूपक अलंकार' है। व्यङ्गार्थ से सम्बन्धातिशयोक्ति है।

जयति निरुपाधि भक्ति-भाव जन्त्रित हृदय, बन्धु हित चित्रकूटाद्रिचारी। पादुका नृप सचिव पुहुमि पालक परम,- धीर गम्भीर वर बीर भारी ॥ ३ ॥

निश्छल भक्तिभाव से हृदय जकड़ा हुआ और भाई (रामचन्द्रजी) के लिये चित्रकूट पहाड़ पर विचरण करनेवाले, आप की जय हो। खड़ाऊँ रूपी राजा के मन्त्री, पृथ्वी के पालक, अत्युत्तम साहसी, अच्छे सहनशील और बड़े शूरवीर हैं ॥३॥

समअभेदरूपक, उत्कर्ष वर्णन में सार अलंकार और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति सञ्जीवनी समय सङ्कट हनूमान धनु-बान महिमा बखानी। बाहुबल विपुल परमित पराक्रम अतुल गूढ़ गति जानकी-जान जानी ॥ ४ ॥

सञ्जीवनी लाते समय सङ्कट में पड़ कर हनूमानजी ने जिनके धनुष-बाण की महिमा बखान की, आप की जय हो। जिनकी भुजाओं में बड़ा बल है, असीम पराक्रम के हद और जानकीनाथ के छिपे रहस्यों के जाननेवाले हैं ॥४॥

जयति रन-अजिर गन्धर्व-गन गर्व-हर, फेरि किय राम-गुन-गाथ गाता। मांडवी चित्त चातक नवाम्बुद बरन, सरन तुलसीदास अभय-दाता ॥ ५ ॥

रणाङ्गन में गन्धर्व गणों के गर्व का नाश कर फिर उन्हें रामचन्द्रजी के गुणों की कथा का गानेवाला बनाया, आप की जय हो। माण्डवीजी के चित्त रूपी चातक के नवीन मेघ के वर्ण-वाले और शरणागत तुलसीदास का निर्भय-पद देनेवाले हैं ॥५॥

माण्डवी के मन पर पपीहा का आरोप करके भरतजी में नवीन श्याम रंग स्वाती के मेघ का अरोपण इसलिये किया कि वह चातक को आनन्द दायक होता है यह परम्परित के ढङ्ग में 'समअभेदरूपक अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(४०)

जयति जय सत्रु-करि केसरी सत्रुहन, सत्रु-तम-तुहिन-हर किरनकेतू। देव महिदेव महि धेनु सेवक सुजन, सिद्ध मुनि सकल कल्यान-हेतू ॥ १ ॥

हे शत्रुहनजी! आप शत्रु रूपी हाथी के लिये सिंह, शत्रु रूपी अन्धकार और पाला के लिये सूर्य्य रूप हैं, आप की जय हो, जय हो। देवता, ब्राह्मण, पृथ्वी, गैया, हरिभक्त, सज्जन, सिद्ध और मुनि सब के कल्याण के कारण हैं ॥१॥

'जयति जय' शब्द में आदर की विप्सा है। 'शत्रु' और 'महि' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश और यमक का सन्देहसङ्कर है। शत्रु में हाथी और अन्धकार—पाला का आरोप कर शत्रुहनजी में सिंह और सूर्य्य का आरोपण 'परम्परितरूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है। यहाँ अलंकारों की संसृष्टि और सन्देहसङ्कर है।

जयति सर्वाङ्ग सुन्दर सुमित्रा-सुवन, भुवन विख्यात भरतानुगामी। वर्म चर्मासि धनु बान तूनीर धर, सत्रु-सङ्कट समन यत्प्रनामी ॥ २ ॥

सर्वाङ्ग सुन्दर, सुमित्रानन्दन, लोकों में प्रसिद्ध और भरतजी के अनुयायी, आप की जय हो। कवच, ढाल, तलवार, धनुष, बाण और तरकस धारण किये, प्रणाम करनेवालों के शत्रु-सङ्कट को नाश करनेवाले हैं ॥२॥

प्रणाम मात्र से वैरी जनित कष्ट के नाशक, थोड़े ही आरम्भ से अलभ्य लाभ वर्णन में 'द्वितीय विशेष अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति लवनाम्बुनिधि कुम्भ-सम्भव महा,-दनुज दुर्जन दवन दुरित-हारी। लछमनानुज भरत राम-सीता-चरन,-रेनु भूषित भाल तिलक-धारी ॥ ३ ॥

लवण दैत्य रूपी समुद्र के लिये अगस्त्य मुनि रूप, बड़े बड़े दुष्ट दानवों के नाशक और पाप के हरनेवाले, आप की जय हो। लक्ष्मणजी के छोटे भाई भरतजी रामचन्द्रजी और सीताजी के चरणों की धूलि माथे पर तिलक धारण किये हुए शोभायमान हैं ॥३॥

लवणासुर में समुद्र का आरोप करके शत्रुहनजी में कुम्भज का आरोपण इसलिये किया कि उन्हों ने समुद्र को सुखा दिया था। यह 'परम्परितरूपक' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति स्रुतिकीर्ति-वल्लभ सुदुर्लभ, सुलभ, नमत नर्मद भक्त भक्ति दाता। दासतुलसी चरन-सरन सीदत बिभो, पाहि दीनार्त्त-सन्ताप-हाता ॥ ४ ॥

श्रुतिकीर्त्ति के प्रियतम, श्रेष्ठ, दुर्लभ, सहज में मिलनेवाले, प्रणाम करनेवालों को कल्याण दायक, भक्तों को भक्ति देनेवाले, आप की जय हो। प्रभो! आप दीन दुखियाओं के दुःख को नाश करनेवाले हैं, आपके चरणों की शरण में तुलसीदास खिन्न हो रहा है, रक्षा कीजिये ॥४॥

जो दुर्जनों को दुर्लभ और सज्जनों को सुलभ हैं, दुर्लभ भी और सुलभ भी, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। द्वितीय विशेष और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(४१)

राग-केदारा ।

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ। मेरियो सुधि द्याइबी कछु,-करुन कथा चलाइ ॥ १ ॥

हे माता जानकीजी! कभी समय पा कर कुछ दया भरी चर्चा चला कर मेरी भी सुधि दिलाइयेगा ॥१॥

दीन सब अँग-हीन छीन, मलीन अघी अघाइ। नाम लेइ भरे उदर एक प्रभु,-दासी दास कहाइ ॥ २ ॥

मैं दीन और साधन के सभी अङ्गों से हीन, खिन्न, मलिन और पापों से भरा हूँ। प्रभु रामचन्द्रजी का दास कहा कर एक पेट भरने के लिये नाम लेता हूँ; किन्तु सेवक माया का हो रहा हूँ ॥२॥

बूझिहैं सो कौन कहिबी, नाम दसा जनाइ। सुनत राम कृपाल के मम, बिगरियो बनि जाइ ॥ ३ ॥

जब स्वामी पूछेंगे कि वह कौन है? तब आप मेरा नाम लेकर दशा सूचित कर दें। कृपालु रामचन्द्रजी के सुनते ही मेरी बिगड़ी भी बन जायगी ॥ ३ ॥

जानकी जग-जननि जन की, किये बचन सहाइ। तरइ तुलसीदास भव तव, नाथ गुन-गन गाइ ॥ ४ ॥

हे जगन्माता जानकीजी! यदि आप इस दास की वचनों से सहाय करेंगी तो तुलसीदास आप के स्वामी (रामचन्द्रजी) का गुण गान करके संसार से पार हो जायगा ॥ ४ ॥

(४२)

कबहुँ समय सुधि द्याइबी, मेरि मातु जानकी। जन कहाइ नाम लेत हौँ किये पन, चातक ज्योँ प्यास प्रेम पान की ॥ १ ॥

हे माता जानकीजी! कभी मौके से मेरा याद स्वामी को दिलाइयेगा। मैं उनका सेवक कहला कर नाम लेता हूँ और पपीहा की तरह प्रतिज्ञा किये हुए प्रेम रूपी जल पीने के लिये प्यासा हूँ ॥ १ ॥

मैं रामचन्द्रजी के प्रेम का प्यासा हूँ, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे चातक पण कर के स्वाती ही का जल पान करता है वैसे मैं एकमात्र रघुनाथजी के प्रेम रूपी जल का प्यासा हूँ, उनके सिवा अन्य में प्रेम न करूँगा 'उदाहरण अलंकार' है।

सरल प्रकृति आपु जानिये, करुनानिधान की। निज-गुन अरि-कृत-अनहितउ दास-दोष, सुरति चित रहति न दिये दान की ॥२॥

आप जानती हैं कि दयानिधान (रामचन्द्रजी) का सीधा स्वभाव है। अपना गुण, शत्रु द्वारा किया हुआ अपकार, दासों के अवगुण और दिये हुए दान की याद उनके मन में नहीं रहती अर्थात् उपर्युक्त चारों बातें भुला देते हैं ॥ २ ॥

यहाँ अनेक उपमेयों का एक धर्म सुरति न रहना कथन 'प्रथम तुल्ययोगिता अलंकार' है। द और त अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

बानि बिसारन-सील है, मानद अमान की। तुलसिदास न बिसरिये मन क्रम बचन, जा के सपनेहुँ गति न आन की ॥३॥

भूलनेवाली बानि के हद हैं, आप मान रहित और दूसरों को मान देनेवाले हैं। तुलसी-दास को मन, कर्म और वचन से सपने में भी दूसरे का सहारा नहीं है, कहीं इसको भूल न जाँय ॥ ३ ॥

स्वयम् मान रहित हैं और दूसरों को मान देते हैं, मान पास में है नहीं, पर दूसरों को मान देना, बिना कारण के कार्य्य का सिद्ध होना 'प्रथम विभावना अलंकार' है। भुलन ही आदतवाले का भूलना 'द्वितीय सम अलंकार' है।

(४३)

राग-धनाश्री

(३)

जयति जय सच्चिदानन्द व्यापक ब्रह्म, बिग्रह व्यक्त लीलावतारी। बिकल ब्रह्मादि सुर सिद्ध सङ्कोच-बस, बिमल गुन गेह नर देह धारी ॥ १ ॥

सत् चित् आनन्द के रूप परमात्मा, सर्वव्यापी, आदिपुरुष, खेल से जन्म लेकर सशरीर प्रकट होनेवाले आप की जय हो। ब्रह्मा आदि देवता और सिद्धों को व्याकुल देख कर उनके सङ्कोच के अधीन हो निर्मल गुणों का निकेतन मनुष्य-देह धारण करनेवाले हैं ॥ १ ॥

कोसलाधीस कल्यान-कोसलसुता, कुसल कैवल्य फल चारु चारी । वेद-बोधित कर्म-धर्म-धरनी-धेनु,-बिप्र-सेवक-साधु मोदकारी ॥ २ ॥

अयोध्या के राजा, कल्याण रूपिणी पुण्यशीला कौशल्याजी के सुन्दर चारों फल हैं । वेद के बताये हुए कर्म, धर्म, धरती, गौ, ब्राह्मण, सेवक और साधुजनों को आनन्दित करनेवाले हैं ॥ २ ॥

क, च, व, स और ध अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है ।

जयति रिषि-मख-पाल समन सज्जन साल, साप बस मुनिबधू पाप-हारी । भञ्जि भव-चाप दलि दाप भूपावली, सहित भृगुनाथ नतमाथ-भारी ॥ ३ ॥

विश्वामित्र मुनि के यज्ञ-रक्षक, सज्जनों के दुःख नाशक और शाप के अधीन ऋषिपत्नी (अहिल्या) के पाप दूर करनेवाले आप की जय हो । शिवजी के धनुष को तोड़ कर राजाओं के झुण्ड सहित परशुरामजी को बहुत मस्तक नवा कर गर्व प्रहार करनेवाले हैं ॥ ३ ॥

भूपावली का दर्प शिव-धनुष तोड़ कर और परशुराम का गर्व बहुत मस्तक नवा कर दूर किया । कार्य एक गर्व प्रहार; किन्तु क्रिया भिन्न विपरीत 'द्वितीय व्याघात अलंकार' है । बहुत मस्तक नवा कर गर्व भञ्जन करने में विचित्र अलंकार की ध्वनि है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

धार्मिक धीर धुर बीर रघुबीर गुरु,-मातु-पितु-बन्धु बचनानुसारी । चित्रकूटाद्रि बिन्ध्याद्रि दंडक-विपिन, धन्यकृत पुन्य-कानन-बिहारी ॥ ४ ॥

रघुनाथजी धर्मात्मा, धुरन्धर साहसी, बलवान, गुरु, पिता, माता और भाइयों के कथनानुसार चलनेवाले हैं । चित्रकूटपर्वत, विन्ध्याचल और दण्डकवन को धन्य किया, पुण्य रूपी वन में विहार करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

जयति पाकारि-सुत काक करतूति फल,-दानि खनि गर्त गोपित बिराधा । दिब्य देबी बेष देखि लखि निसिचरी, जनु बिडम्बित करी बिस्व-बाधा ॥ ५ ॥

इन्द्र के पुत्र जयन्त को कौए की करनी का फल देनेवाले और गड़हा खोद कर विराध राक्षस को उसमें छिपाया, आप की जय हो । स्वर्गीय देवाङ्गनाओं के वस्त्रालंकार से

सुसज्जित शूर्पणखा राक्षसी को देख उसे पहचान कर ऐसा मालूम होता है मानों संसार की व्यथा को अपमानित किया ॥ ५ ॥

राक्षसी शूर्पणखा को तिरस्कृत करना उत्प्रेक्षा का विषय है। रामचन्द्रजी के लिये विश्व-बाधा को अनादृत करना सिद्ध विषय है; किन्तु राक्षसी में विश्वबाधा की कल्पना, इस अहेतु को हेतु ठहराना 'सिद्धविषया 'हेतूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

जयति खर त्रिसिर दूषन चतुर्दस सहस,-सुभट मारीच संहार कर्त्ता। गिद्ध सबरी भक्ति-बिबस करुनासिन्धु, चरित निरुपाधि त्रिबिधार्त्ति हर्त्ता ॥ ६ ॥

खर, दूषण, त्रिशिरा आदि चौदह हज़ार योद्धा और मारीच राक्षस के संहार करनेवाले आप की जय हो। गिद्ध और शबरी की भक्ति के अधीन, दया के समुद्र और आप का निरुपद्रव चरित्र तीनों तापों का हरनेवाला है ॥ ६ ॥

जयति मद अन्ध कुकबन्ध-बधि बालि बल,-सालि बध करन सुग्रीव राजा। सुभट मर्कट भालु कटक सङ्घट सजत, नमत पद रावनानुज निवाजा ॥ ७ ॥

मदान्ध नीच कवन्ध के नाशक, बलवान वाली के वध करनेवाले और सुग्रीव को राजा बनानेवाले आप की जय हो। वानर भालू शूरवीरों की सेना का समागम जुटानेवाले और चरणों में प्रणाम करते ही रावण के छोटे भाई (विभीषण) पर दया करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

जयति पाथोधि कृत सेतु कौतुक हेतु, काल मन अगम लइ ललकि लङ्का। सकुल सानुज सदल दलित दसकंठ रन, लोक लोकप किये रहित सङ्का ॥ ८ ॥

खेल के लिये समुद्र में पुल बनवाया और काल के मन में दुर्गम लङ्का को उत्साह के साथ जीत लिया, आप की जय हो। सपरिवार, छोटे भाई (कुम्भकर्ण) और सेना के सहित संग्राम में रावण का संहार करके लोक तथा लोकपालों को निर्भय किया ॥ ८ ॥

त, क, ल और स अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। त्रिलोकी का नाश करने में काल अद्वितीय है, उसके मन में लङ्का नगरी का अन्त करना दुर्गम कह कर इस सम्बन्ध से रघुनाथजी के उत्साह और पराक्रम की अतिशय बड़ाई करने में 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार' है

जयति सौमित्रि सीता सचिव सहित चलि, पुष्पकारूढ़ निज राजधानी । दासतुलसी मुदित अवधवासी सकल, राम भे भूप बैदेहि रानी ॥ ९ ॥

लक्ष्मण, सीताजी और मन्त्रियों के सहित पुष्पक विमान पर सवार होकर अपनी राजधानी (अयोध्या) की ओर चले, आप की जय हो । तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी राजा हुए और सीताजी रानी हुईं, सम्पूर्ण अयोध्या-निवासी प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥

'स' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है । ऐतिहासिक शब्दों की व्याख्या 'विनयकोश' में देखो ।

(४४)

राज राजेन्द्र राजीव लोचन राम, नाम कलि कामतरु स्याम साली । अनय अम्भोधि कुम्भज निसाचर निकर, तिमिर-घनघोर खर किरनमाली ॥ १ ॥

हे राजाधिराज कमल-नयन श्रीरामचन्द्रजी ! कलियुग में आप का नाम श्यामता युक्त कल्पवृक्ष है । आप अन्याय रूपी समुद्र के अगस्त्य और राक्षस वृन्द रूपी भीषण अन्धकार के लिये तीव्र सूर्य्य हैं ॥ १ ॥

कल्पवृक्ष का गुण राम-नाम में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है । अन्याय में समुद्र का आरोप कर रामचन्द्रजी में अगस्त्यमुनि और राक्षसवृन्द पर घनघोर तम का आरोप करके रामचन्द्रजी में प्रखर सूर्य्य का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है, क्योंकि अगस्त्यजी ने समुद्र को सुखा दिया था और सूर्य्य भयङ्कर अन्धकार का नाश करते हैं । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

जयति मुनिदेव नरदेव दसरथ्थ के, देव मुनि बन्द्य किय अवधबासी । लोक नायक कोक सोक सङ्कट समन, भानुकुल-कमल-कानन बिकासी ॥ २ ॥

हे दशरथनन्दन ! आप मुनियों के देव और मनुष्यों के देवता हैं, अयोध्या वासियों को देवता तथा मुनियों से वन्दनीय किया, आपकी जय हो । लोकपाल रूपी चक्रवाकों के शोक और सङ्कट नसानेवाले तथा सूर्य्यकुल रूपी कमल-वन के प्रफुल्लित करनेवाले सूर्य्य हैं ॥ २ ॥

'देव' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश और यमक का सन्देहसङ्कर है । लोकपालों में चक्रवाक का आरोप, सूर्य्यकुल में कमल वन और रघुनाथजी में सूर्य्य का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है ।

जयति सिङ्गार रस तामरस-दाम-द्युति,-देह गुन गेह विस्वोपकारी। सकल सौभाग्य सौन्दर्य सुखमा रूप, मनोभव कोटि गर्वापहारी ॥३॥

शृङ्गार रस के मूर्त्ति, श्याम कमल के माला के समान शरीर की कान्ति, गुणों के स्थान और जगत के उपकारी आप की जय हो। सम्पूर्ण सौभाग्य, सुन्दरता और अतिशय शोभा के रूप आप करोड़ों कामदेव के गर्व को हरनेवाले हैं ॥ ३ ॥

रूपक, वाचक लुप्तोपमा, पञ्चम प्रतीप और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सुभग सारङ्ग सुनिखङ्ग सायक सक्ति, चारु चर्मासि वर वर्म धारी। धर्म धुर धीर रघुबीर भुजबल अतुल, हेलया दलित भू भार भारी ॥ ४ ॥

सुन्दर शार्ङ्ग धनुष, उत्तम तरकस, बाण, बरछा, सुहावनी ढाल, तलवार, श्रेष्ठ कवच धारण करनेवाले रघुनाथजी धर्म-धुरन्धर, भुजायें अपरिमित बल से भरी, और खेल ही में पृथ्वी के बहुत बड़े बोझे को नष्ट करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

स, च, व, ध, भ आदि अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

जयति कलधौत मनि मुकुट कुंडल स्रवन, तिलक भल भाल बिधु-बदन सोभा। दिव्य भूषन बसन पीत उपबीत किय, ध्यान कल्यान भाजन न को भा ॥ ५ ॥

सुवर्ण और मणियों के मुकुट, कानों में कुण्डल, माथे पर सुन्दर तिलक और चन्द्रमा के समान मुखमण्डल शोभायमान हैं, आप की जय हो। स्वर्गीय आभूषण, पीताम्बर और जनेऊ धारण किये हुए रूप का ध्यान करने से कौन नहीं कल्याण का पात्र हुआ है? ॥ ५ ॥

मुख-उपमेय, चन्द्रमा-उपमान, शोभन-धर्म है; किन्तु वाचक पद न रहने से 'वाचक लुप्तोपमा' है। अन्त में काकु से यह अर्थ प्रकट होना कि इस रूप के ध्यान करनेवाले सब कल्याण के पात्र हुए हैं 'वक्रोक्ति अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

भरत सौमित्रि सत्रुघ्न सेबित सुमुख, सचिव सेवक सुखद सर्ब दाता। अधम आरत दीन पतित पातक पीन, सकृत नतमात्र कहि पाहि पाता ॥ ६ ॥

भरत, लक्ष्मण और शत्रुहन से सेवनीय, प्रसन्न मुख, मन्त्री और सेवकों को सुखदायक, सर्वस्व के देनेवाले हैं। दुखी, गरीब, अधम, महापापी, धर्मत्यागी प्राणी एक बार प्रणाम मात्र करके कहा कि मेरी रक्षा कीजिये, आपने उन्हें शरण में ले लिया ॥ ६ ॥

जयति जय भुवन दस चारि जस जगमगत, पुन्यमय धन्य जय राम राजा। चरित सुरसरित कवि-मुख्य-गिरि-निःसरित, पिवत मज्जत मुदित सतसमाजा ॥ ७ ॥

हे राजा रामचन्द्रजी! आप का पुण्य रूप धन्य यश चौदहों लोकों में जगमगा रहा है, आप की जय हो, जय हो, जय हो। प्रधान कवि (वाल्मीकि) रूपी पर्वत से कीर्ति रूपिणी गङ्गानदी निकली हैं, जिसमें प्रसन्नता से सज्जन-मण्डली स्नान और पान करती है ॥ ७ ॥

रघुनाथजी के चरित्र में गङ्गाजी का आरोप, आदिकवि में हिमालय पहाड़ का आरोपण और सन्तसमाज पर स्नान जलपान करनेवालों का आरोपण परम्परित के साथ 'समअभेदरूपक अलंकार' है। 'जय' शब्द तीन बार आया है, उसमें आदर का विप्सा है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जयति बरनास्रमाचार पर नारि नर, सत्य सम दम दया-दान-सीला। बिगत दुख दोष सन्तोष सुख सर्बदा, सुनत गावत राम-राज-लीला ॥ ८ ॥

जय, चारों वर्ण और आश्रम के श्रेष्ठ स्त्री-पुरुष जो सत्यवादी, समता युक्त, जितेन्द्रिय, दयावान और दानशील हैं, वे राम-राज्य की लीला सदा सुख सन्तोष के साथ सुनते और गाते हैं जिस से दुःख और दोष उनके दूर हो जाते हैं ॥८॥

जयति बैराग्य बिज्ञान बारान्निधे, नमत नर्मद पाप-ताप हर्त्ता। दासतुलसी चरन सरन संसय हरन, देहि अवलम्ब बैदेहि-भर्त्ता ॥९॥

वैराग्य और विज्ञान के समुद्र, प्रणाम करनेवालों को कल्याण-दायक, पाप और दुःख के हरनेवाले आप की जय हो। हे जानकीनाथ! तुलसीदास चरणों के शरण में है, आप सन्देह के हरनेवाले हैं, मुझे आश्रय दीजिये ॥९॥

समअभेद रूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(४५)

राग-गौरी।

श्रीरामचन्द्र कृपालु भजु मन, हरन भव भय दारुनं। नव कञ्ज लोचन कञ्ज-मुख कर,-कञ्ज पद-कञ्जारुनं ॥ १ ॥

हे मन! कृपालु श्रीरामचन्द्रजी को भजो वे भयङ्कर संसार के डर को नसानेवाले हैं। उनके नेत्र नवीन कमल के समान, मुख कमल के तुल्य; हाथ कमल के सदृश और चरणतल लाल कमल के बराबर हैं ॥१॥

एक लालकमल उपमान को नेत्र, मुख, हाथ और पाँव उपमेय के लिये विना वाचक पद के कथन करना 'समुच्चयोपमा अलंकार' है। 'कञ्ज' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है और अनुप्रास की मनोहरता प्रशंसनीय है।

कन्दर्प अगनित अमित छबि, नव नील नीरज सुन्दरं। पट पीत मानहुँ तड़ित रुचि सुचि, नौमि जनक-सुता-वरं ॥ २ ॥

नवीन श्यामकमल के समान सुन्दर शरीर असंख्यों कामदेव की अपार शोभा से परिपूर्ण है। पीताम्बर ऐसा मालूम होता है। मानों स्वच्छ बिजली का प्रकाश हो, जानकीनाथ (श्रीरामचन्द्रजी) को मैं नमस्कार करता हूँ ॥२॥

नीलकमल-उपमान, सुन्दरता साधारण-धर्म है; किन्तु वाचक और उपमेय लुप्त हैं। यह 'वाचकोपमेयलुप्तोपमा अलंकार' है। पीताम्बर की चमक उत्प्रेक्षा का विषय है। बिजली कान्तिमान दमकती ही है 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

भजु दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्य बंस निकन्दनं। रघुनन्द आनदकन्द कोसल,-चन्द दसरथ-नन्दनं ॥ ३ ॥

दुखीजनों के सहायक सूर्य्य, दानव और दैत्यकुल के नाशक, रघुकुल को प्रसन्न करनेवाले, आनन्द के मूल, अयोध्यानगरी के चन्द्रमा दशरथनन्दन (रामचन्द्रजी) को भजो ॥३॥

दानव और दैत्य शब्द में पुनरुक्ति का आभास है; किन्तु पुनरुक्ति नहीं है। एक राक्षस का ज्ञापक और दूसरा दैत्य का बोधक होने से 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है। उपमान चन्द्रमा का गुण रामचन्द्रजी में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है और अनुप्रास की सुहावनी संसृष्टि है।

सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु, उदार अङ्ग विभूषनं। आजानु-भुज सर चाप धर, संग्रामजित खर दूषनं ॥ ४ ॥

सिर पर मुकुट, कानों में कुण्डल, मस्तक पर सुन्दर तिलक और अङ्गों में श्रेष्ठ आभूषण शोभायमान है। लम्बी भुजाएँ, धनुष-बाण धारण किये युद्ध में खर और दूषण को जीतनेवाले हैं ॥४॥

इति वदत तुलसीदास सङ्कर, सेष मुनि मन रञ्जनं। मम हृदय कञ्ज निवास करि, कामादि खल दल गञ्जनं ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी ऐसा कहते हैं कि शिवजी, शेष और मुनियों के मन को प्रसन्न करनेवाले हैं। मेरे हृदय रूपी कमल में निवास करके काम आदि दुष्ट-समूह के नाश करनेवाले हैं ॥५॥

इस पद के प्रत्येक चरण अट्ठाईस मात्रा के हैं और १६-१२ मात्राओं पर विराम तथा अन्त में लघु गुरु वर्ण आये हैं। हरिगीतिकाछन्द के भी यही लक्षण है। अन्तर केवल इस बात का है कि हरिगीतिका में चार चरणों का एक छन्द माना जाता है, किन्तु इसमें उस नियम का पालन नहीं है।

(४६)

राग-रामकली।

राम जपु राम जपु राम जपु राम जपु, राम जपु मूढ़ मन बार बारं। सकल सौभाग्य सुख-खानि जिय जानि सठ, मानि बिस्वास वद वेद-सारं॥ १॥

अरे मूर्ख मन! बार बार राम जप, राम जप, राम जप, राम जप, राम जप। रे मूर्ख! जिसको वेद तत्व रूप कहते हैं, विश्वास मान कर मन में सम्पूर्ण सुखों की खानि समझ कर (राम नाम स्मरण कर) ॥१॥

यहाँ बारम्बार रामजपु, रामजपु कहने में आदर और आग्रह की विप्सा है। कहते तो अपने मन को हैं; परन्तु इसका उद्देश्य संसार के मनुष्यों के प्रति है कि लोग नाम के महत्व को जान कर अपने कल्याण के लिये इसका जप करें 'गूढ़ोक्ति अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

कोसला इन्द्र नव नील कञ्जाभ तनु, मदनरिपु कञ्ज-हृदि चञ्चरीकं। जानकी-रवन सुख-भवन भुवनैक-प्रभु, नम भज स्मर परम कारुनीकं॥ २॥

अयोध्या के राजा, नवीन श्यामकमल के समान शरीर की कान्ति है और कामदेव के वैरी (शिवजी) के हृदय रूपी कमल के भ्रमर हैं। जानकीजी को रमानेवाले, सुख के मन्दिर, भुवन मात्र के एक ही स्वामी परम दयालु (रामचन्द्रजी) को नमस्कार कर, उनका भजन कर और उन्हीं का स्मरण कर ॥२॥

शरीर-उपमेय, श्यामकमल-उपमान, कान्ति-साधारण धर्म है; किन्तु वाचक पद लुप्त रहने से 'वाचक लुप्तोपमा' है। शिवजी के हृदय में कमल का आरोप करके रामचन्द्रजी में भ्रमर का आरोपण इसलिये किया कि वह कमल में प्रसन्नता से विहार करता है और उसके प्रेम-बन्धन में बँधा रहता है। यह परम्परित रूपक के ढङ्ग में 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

दनुज-बन-धूमध्वज पीन आजानुभुज,-दंड कोदंड बर चंड बानं। अरुन कर चरन मुख नयन-राजीव गुन,-अयन बहु मयन सोभा-निधानं ॥ ३ ॥

राक्षस रूपी वन के दावानल, पुष्ट लम्बे भुजदण्ड, उत्तम धनुष और तीक्ष्ण बाण धारण किये, लाल कमल के समान, हाथ, पाँव, मुख और नेत्र, गुणों के मन्दिर बहुत से कामदेव की शोभा के स्थान हैं ॥ ३ ॥

समअभेदरूपक, वाचकलुप्तोपमा और व्यतिरेक अलंकार की संसृष्टि है।

बासनाबृन्द-कैरव-दिवाकर काम,-क्रोध-मद-कञ्ज-कानन तुषारं। लोभ अति मत्त नागेन्द्र पञ्चाननं, बिप्र हित हरन संसार भारं ॥४॥

समूह कामना रूपी कुमुद वन के सूर्य्य, काम, क्रोध और घमण्ड रूपी कमल वन के लिये पाला रूप हैं। लोभ रूपी अत्यन्त मतवाले गजेन्द्र के लिये सिंह रूप, ब्राह्मणों के हितकारी और संसार के बोझ (पाप) के हरनेवाले हैं ॥ ४ ॥

इस पद में रूपक की माला है। सूर्य्य कुमुद को संकुचित करते हैं। पाला कमल के वन को जला डालता है और सिंह मतवाले हाथी के दर्प को चूर चूर कर देता है। ऊपर के रूपकों में यही समता दिखाई गई है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

केसवं क्लेसहं केस वन्दित पद-द्वन्द मन्दाकिनी मूल-भूतं। सर्बदानन्द सन्दोह मोहापहं, घोर संसार-पाथोधि पोतं ॥ ५ ॥

विष्णु, क्लेश को नसानेवाले, जिनके युगल चरण की वन्दना शिवजी करते हैं और जो मन्दाकिनी के उत्पन्न करने की जड़ हैं। सदा आनन्द के राशि, अज्ञान को छुड़ानेवाले और संसार रूपी भीषण समुद्र के जहाज रूप हैं ॥ ५ ॥

उपमेय उपमान में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

सोक-सन्देह पाथोद-पटलानिलं, पाप पर्बत कठिन कुलिस रूपं। सन्तजन कामधुकधेनु बिस्राम-प्रद, नाम कलि कलुष भञ्जन अनूपं ॥ ६ ॥

शोक और सन्देह रूपी बादलों की पंक्ति छिन्न भिन्न करने में पवन रूप, पाप रूपी पर्वत को भेदनेवाले कठोर वज्र रूप हैं। सन्त जनों को आनन्द देने में कामधेनु रूप और जिनका नाम कलि के पापों को चूर चूर करने में अद्वितीय (प्रभावशाली) है ॥ ६ ॥

यहाँ भी परम्परित के ढङ्ग में 'समअभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

धर्म-कल्पद्रुमं नाम हरिधाम पथ,-सम्बलं मूलमिदमेवमेकं । भक्ति बैराग्य बिज्ञान सम दान दम, नाम आधीन साधन अनेकं ॥७॥

जिनका नाम धर्म रूपी कल्पवृक्ष है और वैकुण्ठ के मार्ग का एक यही मुख्य राहखर्च है। भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, समता, दान, इन्द्रिय-दमन आदि असंख्यों शुभ-साधन नाम ही के अधीन हैं अर्थात् राम-नाम का जाप करने से सब आप ही आप आ जाते हैं ॥ ७ ॥

पूर्वार्द्ध में रूपक है और उत्तरार्द्ध में भक्ति आदि समस्त शुभ-साधनों को एक नाम स्मरण के अधीन कहना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है।

तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं, तेन सर्वं कृतं कर्म-जालं । येन श्रीरामनामामृतं पानकृत,-मनिसमनवद्यमवलोक्य कालं ॥८॥

उसने शरीर को अग्नि से तपाया, सर्वस्व दान दिया और उसी ने सब कर्म-समूह यज्ञादिकों को किया, जिसने समय को देख कर निरन्तर निर्दोष श्रीराम नाम रूपी अमृत का पान किया ॥ ८ ॥

बहुत से उत्कृष्ट गुणों की समता राम-नाम में लाना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है। सत सत की समता का भाव सूचक 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है। अनुप्रास की मनोहर संसृष्टि है।

स्वपच खल भिल्ल जमनादि हरिलोक गत, नाम बल बिपुल मति मलिन परसी । त्यागि सब आस संत्रास भव-पास-असि,-निसित हरिनाम जपु दासतुलसी ॥९॥

दुष्ट चाण्डाल, भील, यमन आदि असंख्यों मलिन बुद्धि की छुआछूतवाले नाम के बल से भगवान के लोक (वैकुण्ठ) को गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि तू सब आशाओं को त्याग कर हरि नाम जप, जो संसार के बन्धन और कठिन भय को काटने के लिये तीक्ष्ण तलवार रूप है ॥ ९ ॥

नाम के प्रसाद से श्वपचादिकों का परमधाम जाना 'प्रथम उल्लास अलंकार' है। संसार बन्धन और भय में रस्सी का आरोप करके राम-नाम में चोखी तलवार का आरोपण इसलिये किया गया कि वह बन्धन (रस्सी) को काटने में समर्थ है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की सुन्दर संसृष्टि है।

(४७)

ऐसी आरती राम की करहि मन । हरन दुख द्वन्द गोबिन्द आनन्द घन ॥१॥

हे मन ! तू इस तरह रामचन्द्रजी की आरती कर, वे दुःख और कलह के नसानेवाले, आनन्द के राशि परमेश्वर हैं ॥ १ ॥

अचर चर रूप हरि सर्बगत सर्बदा, बसत इति बासना धूप दीजै । दीप निज बोध गत-क्रोध-मद-मोह-तम,-प्रौढ़ अभिमान चितवृत्ति छीजै ॥२॥

चराचर जीव मात्र भगवान के रूप हैं, वे सदा सब में स्थित हैं; हृदय में बसी हुई ऐसी इच्छा का धूप दीजिये । आत्मज्ञान रूपी दीपक के प्रकाश से क्रोध, घमण्ड और अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाता है तथा बढ़ा हुआ अभिमान और चित्त की चञ्चलता नष्ट हो जाती है ॥ २ ॥

यहाँ आरती और शरीर सम्बन्धी गुण-दुर्गुण, में साङ्ग रूपक बाँधा गया है । एक हरि भगवान को युक्ति से चराचर रूप वर्णन करना 'तृतीय विशेष अलंकार' है ।

भाव अतिसय बिसद प्रबर नैबेद्य सुभ, श्रीरमन परम सन्तोषकारी । प्रेम ताम्बूल गत सूल संसय सकल, बिपुल भव-बासना-बीज हारी ॥३॥

अत्यन्त स्वच्छ प्रीति श्रेष्ठ मङ्गल नैवेद्य रूप है, जो लक्ष्मीकान्त भगवान को बहुत अच्छी तरह सन्तुष्ट करनेवाला है । अनुराग रूपी पान का बीड़ा सम्पूर्ण शूल और सन्देहों को दूर कर देता है एवम् बहुत बड़ी संसार-सम्बन्धी कामना के बीज (अङ्कुर) को हरनेवाला है ॥ ३ ॥

असुभ-सुभ कर्म घृत-पूर्न दसबार्तिका, त्याग-पावक सतोगुन-प्रकासं । भक्ति बैराग्य बिज्ञान दीपावली, अर्पि नीराजनं जगनिवासं ॥ ४ ॥

शुभाशुभ कर्म रूपी घृत से भरी हुई दसों इन्द्रिय रूपी बत्तियाँ हैं, उन्हें उत्सर्ग रूपी अग्नि से प्रज्वलित करे और सतोगुण का उँजेला हो, तब भक्ति वैराग्य तथा विज्ञान रूपी दीपमालिका की आरती परमात्मा को अर्पण करे ॥ ४ ॥

विमल हृदि भवन कृत सान्ति परजङ्क सुभ, सयन बिस्राम श्रीराम राया । छमा करुना प्रमुख तत्र परिचारिका, यत्र हरि तत्र नहिँ भेद-माया ॥ ५ ॥

निर्मल हृदय रूपी मन्दिर में सुन्दर शान्ति रूपी पलँग पर राजा श्रीरामचन्द्रजी को विश्राम के हेतु शयन करावे। वहाँ क्षमा और दया प्रधान सेवकिन हैं, जहाँ भगवान सोते हैं वहाँ भेद उत्पन्न करनेवाली माया नहीं रहने पाती (शोरगुल के भय से दासियाँ उसे दूर हटा देती हैं) ॥ ५ ॥

आरती निरत सनकादि स्रुति सेष सिव, देवरिषि अखिल मुनि तत्व-दरसी । जो करइ सो तरइ परिहरइ काम सब, बदत इति अमल मति दासतुलसी ॥ ६ ॥

इस आरती में समस्त ब्रह्मदर्शी, सनकादिक मुनीश्वर, वेद, शेष और शिवजी लगे रहते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब निर्मल बुद्धिवाले ऐसा कहते हैं जो कामनाओं को त्याग कर करेगा वही संसार से पार होगा ॥ ६ ॥

(४८)

हरति आरति सकल आरती राम की । दहनि दुख दोष निर्मूलनी काम की ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी की आरती सारी विकलताओं को हरती है, दुःख और दोषों को जलानेवाली तथा काम को निर्मूल करनेवाली है ॥ १ ॥

आरति नष्ट करने का अभिप्राय 'आरती' शब्द में विद्यमान 'परिकराङ्कुर अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सुभग सौरभ धूप दीप बर मालिका । उड़त अघबिहँग सुनि ताल करतालिका ॥ २ ॥

सुन्दर सुगन्धित धूप और उत्तम दीपमालिका हाथ की ताली रूप है जिसको सुन कर पाप रूपी पक्षी उड़ जाते हैं ॥ २ ॥

एक रूपक की सिद्धि के लिये दूसरे रूपक की कल्पना करना 'परम्परित रूपक' है।

भगत हृदि भवन अज्ञान-तम हारिनी । बिमल बिज्ञानमय तेज बिस्तारिनी ॥ ३ ॥

भक्तों के हृदय रूपी मन्दिर का अज्ञान रूपी अन्धकार हरनेवाली और निर्मल विज्ञान रूपी प्रकाश फैलानेवाली है ॥ ३ ॥

भक्तों के हृदय में घर का और अज्ञान में अन्धकार का आरोप करके आरती में विज्ञान मय उँजेले का आरोपण इसलिये किया कि दीपक के प्रकाश से अँधेरा नष्ट हो जाता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है ।

मोह मद कोह कलि कञ्ज-हिम जामिनी । मुक्ति की दूतिका देह दुति दामिनी ॥ ४ ॥

मोह, मद, क्रोध और पाप रूपी कमल को पाले की रात्रि रूपी हैं। मोक्ष रूपी नायिका को मिलाने के लिये दूती है, उसके अङ्ग की कान्ति बिजली के समान है ॥ ४ ॥

परम्परित रूपक, द्वितीय निदर्शना, वाचकलुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

प्रनतजन कुमुद बन इन्दु-कर-जालिका । तुलसि अभिमान महिषेस बहु कालिका ॥ ५ ॥

शरणागत जन रूपी कुमुदवन के विकसित करनेवाली चन्द्रमा की समूह किरण रूप है। तुलसी के अभिमान रूपी महिषासुर का नाश करने के लिये बहुत सी कालिका रूपिणी है ॥ ५ ॥

यहाँ भी परम्परित के सहित 'सम और अधिक अभेद रूपक अलंकार' है। पहला सम और दूसरे में बहु-कालिका अधिकत्व है ।

(४९)

राग-धनाश्री ।

दनुज बन दहन गुन गहन गोबिन्द नन्दादि आनन्ददाता-बिनासी । सम्भु सिव रुद्र सङ्कर भयङ्कर भीम, घोर तेजायतन क्रोध-रासी ॥ १ ॥

गोविन्दभगवान—राक्षस रूपी वन के जलानेवाले, गुणों के अथाह, नन्द आदि (गोपालकों) को आनन्द देनेवाले और अक्षय हैं। शिवजी—कल्याण रूप, रुद्रमूर्त्ति, मङ्गल कर्त्ता, भीषण, डरावने, अत्यन्त तेज के स्थान और क्रोध के राशि हैं ॥ १ ॥

यहाँ रूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है। इस पद्य में गोस्वामीजी ने विष्णु भगवान और शिवजी की सम्मिलित स्तुति की है। दण्डक के अन्त तक इसी क्रम का पालन है, पहले चरण में हरि और दूसरे चरण में शङ्करजी का गुण गान किया गया है, इसी से इसका 'हरिशङ्करी' नाम रख दिया है।

नान्त भगवन्त जगदन्त अन्तक त्रास, समन श्री-रमन भुवनाभिरामं। भूधराधीस जगदीस ईसान बिज्ञान घन ज्ञान कल्यान-धामं ॥ २ ॥

गोविन्द भगवान—का अन्त नहीं, ऐश्वर्य्यवान, जगत का अन्त (आवागमन रहित) करनेवाले, यमराज की त्रास के नाशक, लक्ष्मीकान्त और लोकों के आनन्द देनेवाले हैं। शिवजी कैलास के स्वामी, जगत के ईश्वर, ईशान, विज्ञान के मेघ, ज्ञान और कल्याण के स्थान हैं ॥ २ ॥

बामनाव्यक्त पावन परावर बिभो, प्रगट परमातमा प्रकृति स्वामी। चन्द्रसेखर सूलपानि हर अनघ अज, अमित अवछिन्न वृषभेसगामी ॥ ३ ॥

गोविन्द भगवान—वामन रूप, अगोचर, पवित्र, चराचर के स्वामी, प्रत्यक्ष परमात्मा और मायाधीश हैं। शिवजी—चन्द्रमौलि, शूलपाणि, हर, निष्पाप, अजन्मे, असीम, सब से अलग और बैलों के स्वामी नन्दी पर सवार होकर चलनेवाले हैं ॥ ३ ॥

इन पदों में अनुप्रास की विलक्षण मनोहरता है।

नील जलदाभ तनु स्याम बहु काम छबि, राम राजीव-लोचन-कृपालं। कम्बुकर्पूर बपु धवल निर्मल मौलि,-जटा सुरतटिनि सित सुमन मालं ॥ ४ ॥

गोविन्द भगवान—नीले मेघ की कान्ति के समान श्याम शरीरवाले बहुत से कामदेव की शोभा से युक्त, राम, (जगत को रमानेवाले वा योगी जन के रमण) कमल नयन और दया के स्थान हैं। शिवजी—का शरीर निर्मल उज्वल शङ्ख और कपूर के समान, मस्तक पर जटा में सफेद फूलों की माला के सदृश देव नदी (गङ्गाजी) लहराती हैं ॥ ४ ॥

'नील जलदाभ तनु श्याम' वाचकलुप्तोपमा है। 'बहु काम छवि' में व्यतिरेक अलंकार है। 'राजीव लोचन' में वाचकधर्म लुप्तोपमा है। 'कम्बुकर्पूर वपु धवल निर्मल' में भिन्न धर्मा मालोपमा है और 'मौलिजटा सुरतटिनि सित सुमनमालं' में वाचकधर्म लुप्तोपमा अलंकार है। अनुप्रास भी है। यहाँ अलंकारों की संसृष्टि है।

बसन किञ्जल्क धर चक्र सारङ्ग दर, कञ्ज कौमोदकी अति बिसालं । मार करि मत्त मृगराज त्रय नयन हर, नौमि अपहरन संसार-ज्वालं ॥ ५ ॥

गोविन्द भगवान—कमल की केसर के रङ्ग का वस्त्र और सुदर्शनचक्र, शार्ङ्ग धनुष, शङ्ख, कमल कौमोदकी नाम की बहुत बड़ा गदा धारण किये हैं। शिवजी—कामदेव रूपी मतवाले हाथी के लिये सिंह रूप, तीन नेत्रवाले, हर संसार की जलन को छुड़ानेवाले हैं, उनको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ५ ॥

वाचकधर्म लुप्तोपमा और समअभेदरूपक की संसृष्टि है।

कृष्न करुना भवन दवन कालीय खल, बिपुल कंसादि निर्बंसकारी । त्रिपुर मद भङ्ग कर मत्तगज-चर्म-धर, अन्धकोरग ग्रसन पन्नगारी ॥ ६ ॥

गोविन्द भगवान—श्रीकृष्णचन्द्र दया के स्थान, दुष्ट कालियानाग के दमन कर्त्ता और कंस आदि खल-समूह के निर्वंश करनेवाले हैं। शिवजी—त्रिपुरदैत्य के गर्व को नसानेवाले, मतवाले हाथी का चर्म धारण किये, अन्धकदैत्य रूपी सर्प के ग्रसनेवाले गरुड़ रूप हैं ॥ ६ ॥

अन्धक में साँप का आरोप करके शिवजी में गरुड़ का आरोपण करना 'परम्परित सम अभेद रूपक' है। 'कालिय' 'कंस' 'त्रिपुर' और 'अन्धक' शब्द विनयकोश में देखो, इनका संक्षिप्त परिचय उस में दिया गया है।

ब्रह्म व्यापक अकल सकल पर परम हित, ज्ञान गोतीत गुन-वृत्ति हर्त्ता । सिन्धु सुत गर्ब गिरि बज्र गौरीस भव, दच्छ मख अखिल बिध्वन्स-कर्त्ता ॥ ७ ॥

गोविन्द भगवान—ब्रह्म, सब में व्याप्त, अखण्ड, सब से श्रेष्ठ, परम हितैषी, ज्ञान तथा इन्द्रियों से अप्राप्य और तीनों गुणों के व्यापार को हरनेवाले हैं। शिवजी—सिन्धु के पुत्र (जलन्धर) के गर्व रूपी पर्वत के लिये वज्र रूप, पार्वती के स्वामी, उत्पत्ति के कारण और सम्पूर्ण दक्ष के यज्ञ के नाश करनेवाले हैं ॥ ७ ॥

परम्परित रूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

भक्ति प्रिय भक्तजन कामधुकधेनु हरि, हरन दुर्घट बिकट बिपति हारी। सुखद नर्मद वरद बिरज अनवद्याखिल, बिपिन-आनन्द वीथिन्ह बिहारी ॥ ८ ॥

गोविन्द भगवान—को भक्ति प्यारी है, भक्तजनों के लिये कामधेनु रूप, नारायण, बहुत बड़ी भीषण और दुसाध्य आपदा के हरनेवाले हैं। शिवजी—सुख दाता, कल्याण-प्रद, वर देनेवाले, अज्ञान रहित, निर्दोष, सर्वाङ्ग पूर्ण और काशीपुरी की गलियों में विहार करनेवाले हैं ॥ ८ ॥

रुचिर हरिसङ्करी नाम मन्त्रावली, द्वन्द दुख हरनि आनन्द-खानी। बिष्नु-सिव लोक सोपान सम सर्वदा, वदत तुलसीदास बिसद बानी ॥ ९ ॥

यह विष्णु और शङ्करजी के नामों की सुन्दर मन्त्रावली कलह के दुःख को हरने-वाली आनन्द की खानि है। विष्णु और शिवलोक (वैकुंठ तथा कैलास) पहुँचाने की सनातन सीढ़ी के समान है, तुलसीदासजी कहते हैं कि स्वच्छ वाणीवाले ऐसा कहते हैं ॥ ९ ॥

मन्त्रावली—उपमेय, सोपान—उपमान, सम—वाचक है; किन्तु पहुँचाना धर्म लुप्त होने से 'धर्मलुप्तोपमा अलंकार' है। 'बानी' शब्द में श्लेष अलंकार है, क्योंकि विशदवाणी-वाले वेद-शास्त्रादि और सरस्वती दोनों अर्थ प्रकट हो रहा है।

(५०)

भानुकुल-कमल-रबि कोटि कन्दर्प छबि, कालकलि ब्यालमिव वैनतेयं। प्रबल भुजदंड परचंड कोदंड धर, तून वर बिसिख बलमप्रमेयं ॥ १ ॥

सूर्यकुल रूपी कमल वन के सूर्य, करोड़ों कामदेव की शोभा से युक्त और कलिकाल रूपी सर्प के लिये गरुड़ के समान हैं। अत्यन्त बलशाली भुजदण्ड, हाथ में विकराल धनुष-बाण, कमर में श्रेष्ठ तरकस धारण किये अपरिमित बलवाले हैं ॥ १ ॥

समअभेद रूपक, व्यतिरेक, उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

अरुन राजीव दल नयन सुखमा-अयन, स्यामतनु कान्ति बर बरिदाभं । तप्त काञ्चन वस्त्रसस्त्र-विद्या निपुन, सिद्ध सुर सेव्य पाथोजनाभं ॥ २ ॥

लाल कमल-दल के समान नेत्र, शोभा के स्थान और श्याम शरीर की कान्ति उत्तम जल-भरे मेघ के बराबर है। तपाये हुए सुवर्ण के रङ्ग का वस्त्र, शस्त्र-विद्या में प्रवीण, कमलनाभ, सिद्ध और देवताओं से उपासनीय हैं ॥ २ ॥

वाचकलुप्तोपमा, वाचकधर्म लुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

अखिल लावन्य-गृह बिस्व-बिग्रह परम, प्रौढ़ गुन गूढ़ महिमा-उदारं । दुर्द्धर्ष दुस्तरं स्वर्ग-अपवर्ग-पति, भग्न संसार-पादप-कुठारं ॥ ३ ॥

सारी शोभा के स्थान, विश्वात्मा और जिनके अत्यन्त बढ़े हुए गम्भीर गुणों की महिमा श्रेष्ठ है। दुर्दमनीय, अगम्य, स्वर्ग और मोक्ष के मालिक, संसार रूपी वृक्ष को काटने के लिये कुल्हाड़ा रूपी हैं ॥ ३ ॥

संसार में वृक्ष का और रामचान्द्रजी में कुल्हाड़े का आरोप करके पूर्णरूप से एक रूपता की गई 'समअभेदरूपक अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सापबस मुनिवधू मुक्तकृत बिप्र हित, जज्ञ-रच्छन-दच्छ पच्छ-कर्त्ता । जनक नृप सदसि सिव-चाप भञ्जन उग्र, भार्गव-गर्व-गरिमापहर्त्ता ॥ ४ ॥

शाप के अधीन मुनिपत्नी (अहिल्या) का उद्धार किया, ब्राह्मण (विश्वामित्र) के हेतु यज्ञ रक्षा में कुशल और उनका पक्ष (सहायता) करनेवाले हैं। जनकराजा की सभा में शिवजी के धनुष को तोड़ कर परशुराम के उत्कट घमण्ड के भारीपन को हरनेवाले हैं ॥ ४ ॥

रामचन्द्रजी का उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन में 'सार अलंकार' है और अनुप्रास की सुन्दर संसृष्टि है।

गुरु गिरा गौरवं अमर दुस्त्यज राज्य, त्यक्त करि सहित सौमित्रि भ्राता । सङ्ग जनकात्मजा मनुजमनुसृत्य अज, दुष्ट बध निरत त्रैलोक्य त्राता ॥ ५ ॥

माननीय (पिता-माता के) वचन के सम्मान हेतु जो राज्याधिकार देवताओं को त्यागने में कठिन है, उसको तज कर भाई लक्ष्मण के सहित और साथ में जनकनंदिनी को

लेकर मनुष्य के अनुसार अजन्मे परमात्मा (रामचन्द्रजी) तीनों लोकों के रक्षक दुराचारियों के संहार करने में तत्पर हुए ॥ ५ ॥

दंडकारन्य कृत पुन्य पावन चरन, हरन मारीच माया कुरङ्गं । वालि वल मत्त गजराज इव केसरी, सुहृद सुग्रीव दुख रासि भङ्गं ॥ ६ ॥

अपने पवित्र चरणों से दण्डकवन को रमणीय किया और कपट से मृग रूपधारी मारीच के प्राण हरनेवाले हैं। बलवान वाली रूपी मतवाले हाथी के लिये सिंहके समान और मित्र सुग्रीव के दुःखों की राशि के नसानेवाले हैं ॥ ६ ॥

बलीवाली में मतवाले गजेन्द्र का आरोप रूपक है। रामचन्द्रजी-उपमेय, सिंह-उपमान, इव-वाचक है; किन्तु दमन करना साधारण धर्म लुप्त रहने से 'धर्मलुप्तोपमा अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है। दण्डकवन का इतिहास विनयकोश में दण्डक और 'दण्डकवन' दोनों शब्दों को देखो।

रिच्छ मर्कट विकट सुभट उद्भट समर, सैल सङ्कास रिपु त्रासकारी। बद्ध पाथोधि सुर निकर मोचन सकुल,-दलन दससीस भुज वीस भारी ॥ ७ ॥

भालू-बन्दर भयानक शूरवीर युद्ध में प्रचण्ड, पर्वत के समान भारी शरीरवाले, शत्रुओं को भय उपजानेवाले हैं। उनके द्वारा समुद्र में पुल बाँध कर देवताओं को छुड़ाने के लिये भारी सुभट बीस भुजावाले रावण का कुल समेत संहार किया ॥७॥

वानर भालू भट-उपमेय, शैल-उपमान, सङ्काश-वाचक और त्रासकारी साधारण धर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

दुष्ट विबुधारि सङ्घात अपहरन महि,-भार अवतार कारन अनूपं। अमल अनवद्य अद्वैत निर्गुन सगुन, ब्रह्म सुमिरामि नर-भूप रूपं ॥ ८ ॥

देवताओं के शत्रु-समूह दुष्टों का नाश करके धरती के बोझ को हरने के लिये जिनके जन्म लेने का अनुपम कारण है। निर्मल, निर्दोष, अद्वितीय, निर्गुण और सगुण ब्रह्म मनुष्य रूपी राजा (रामचन्द्रजी) का मैं स्मरण करता हूँ ॥८॥

सेष स्तुति सारदा सम्भु नारद सनक, गनत गुन अन्त नहिं तव चरित्रं । राम कामारि-प्रिय अवधपति सर्बदा, दासतुलसी त्रास-निधि बहित्रं ॥ ९ ॥

शेषजी, वेद, सरस्वती, शिव, नारद और सनकादिक आप के गुण और चरित्र गान करते हैं; किन्तु अन्त नहीं पाते । काम के वैरी (शिवजी) के प्यारे, अयोध्या के राजा और तुलसीदास को सदा त्रास रूपी समुद्र से पार करने के लिये जहाज रूप हैं ॥९॥

रूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

(५१)

जानकीनाथ रघुनाथ रागादि तम, तरनि तारुन्य तनु तेज धामं । सच्चिदानन्द आनन्दकन्दाकरं, बिस्व बिस्राम रामाभिरामं ॥ १ ॥

जानकीनाथ रघुकुल के स्वामी (रामचन्द्रजी) राग द्वेष रूपी अन्धकार के लिये जिनका शरीर मध्याह्नकाल के सूर्य्य के समान तेज का स्थान है । परमात्मा, आनन्दकन्द के खानि, संसार के प्रिय और आराम देनेवाले हैं ॥१॥

रागादिकों में तम का आरोप और रघुनाथजी को सूर्य्य के समान कहना रूपक और उपमा की संसृष्टि है । अनुप्रास भी है ।

नील नव बारिधर सुभग सुभ कान्तिकर, पीत कौसेय बर बसन धारी । रत्न हाटक जटित मुकुट मंडित मौलि, भानु सतकोटि उद्योतकारी ॥ २ ॥

नवीन श्याम मेघ के समान सुन्दर माङ्गलिक शोभा उत्पन्न करनेवाले और पीले रङ्ग का उत्तम रेशमी वस्त्र धारण किये हैं, रत्नों से जड़ा हुआ सुवर्ण का मुकुट मस्तक पर असंख्यों सूर्य्य के समान प्रकाश करनेवाला है ॥२॥

मुकुट-उपमेय, शतकोटिभानु-उपमान; उद्योतक धर्म है; किन्तु वाचकपद न रहने से 'वाचक लुप्तोपमा अलंकार' है । शतकोटि भानु कहने में व्यतिरेक की ध्वनि है ।

स्रवन कुंडलं भाल तिलक भ्रू रुचिर अति, अरुन अम्भोज लोचन बिसालं । वक्त्र अवलोकि त्रैलोक्य सोकापहं, मार अरि हृदयमानस मरालं ॥ ३ ॥

कानों में कुण्डल, माथे पर तिलक, अत्यन्त सुहावनी भौंह और लाल कमल के समान विशाल नेत्र हैं। मुख देख कर तीनों लोकों का शोक दूर होता है, कामदेव के शत्रु (शङ्करजी) के हृदय रूपी मानसरोवर के हंस हैं ॥३॥

लोचन-उपमेय, लालकमल-उपमान, विशालता धर्म है; किन्तु वाचकपद न रहने से 'वाचकलुप्तोपमा अलंकार' है। मुख अवलोकन कर तीनों लोक का शोक रहित होना 'प्रथम उल्लास अलंकार' है। शिवजी के हृदय में मानसरोवर का आरोप करके रामचन्द्रजी में हंस का आरोपण इसलिये किया कि राजहंस निरन्तर मानस में विहार करता है। यह 'परम्परित सम अभेद रूपक' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

नासिका चारु सुकपोल द्विज वज्र दुति, अधर बिम्बोपमा मधुर हासं । कंठ दर चिबुक बर बचन गम्भीर तर, सत्यसङ्कल्प सुर त्रास नासं ॥ ४ ॥

मनोहर नासिका, सुन्दर गाल, हीरे की चमकवाले दाँत, ओंठ कुन्दुरू के समान लाल और सुहावनी प्यारी हँसनि है। कण्ठ शङ्ख के सदृश, उत्तम ठोढ़ी, बोली अत्यन्त गम्भीर, दृढ़ प्रतिज्ञ और देवताओं के भय के नसानेवाले हैं ॥४॥

लुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सुमन सुविचित्र नव तुलसिकादल जुतं, मृदुल बनमाल उर भ्राजमानं । भ्रमत आमोद बस मत्तमधुकर निकर, मधुर तर मुखर कुर्बन्ति गानं ॥ ५ ॥

सुन्दर विलक्षण पुष्प और नवीन कोमल तुलसीदल से युक्त वनमाला हृदय में शोभायमान है, जिसके चारों ओर प्रसन्नता से झुण्ड के झुण्ड भ्रमर अत्यन्त रसीली आवाज से गान करते हैं ॥५॥

सुभग श्रीवत्स केयूर कङ्कन हार, किङ्किनी रटनि कटि तट रसालं। बाम दिसि जनकजासीन सिंहासनं, कनक मृदु बल्लिमिव तरु तमालं ॥ ६ ॥

भगवान के सुन्दर भुजाओं में विजायठ और ढरकौआ, हृदय में हार और कमर में करधनी का सुहावना शब्द हो रहा है। बाँईं ओर सिंहासन पर विराजमान जानकीजी ऐसी शोभित हैं जैसे तमालवृक्ष के समीप सुवर्ण की मुलायम लता के समान हों ॥६॥

उपमा और गम्योत्प्रेक्षा अलंकार के सहित अनुप्रास की संसृष्टि है। 'श्रीवत्स' भगवान का नाम है। कोई कोई यहाँ भृगुलता का अर्थ करते हैं; पर जब 'श्रीवत्सलाञ्छन' पद होता तब भृगुपद चिह्नों का अर्थ किया जा सकता है।

बृहद भुजदंड कोदंड मंडित बाम,-बाहु दच्छिन पानि बानमेकं। अखिल मुनि निकर सुर सिद्ध गन्धर्व बर, नमत नर नाग अवनिप अनेकं ॥ ७ ॥

लम्बे बाँयें भुजदण्ड में धनुष और दाहिने हाथ में एक बाण शोभित है। समस्त मुनिवृन्द, देवता, सिद्ध, श्रेष्ठ मनुष्य, नाग और अनेक राजा नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥

अनघ अवछिन्न सर्वज्ञ सर्वेस खलु, सर्वतोभद्र दातासमाकं। प्रनतजन खेद विच्छेद विद्या निपुन, नौमि श्रीराम सौमित्रि साकं ॥ ८ ॥

निष्पाप, सब से पृथक्, सब जाननेवाले, सब के स्वामी और निश्चय ही हमारे लिये यज्ञ में प्रधान देवता का आसन देनेवाले हैं। दीनजनों के दुःख दूर करने की विद्या में प्रवीण, पुरुषार्थ रूप लक्ष्मणजी के सहित श्रीरामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥

जुगल-पद-पद्म सुख-सद्म पद्मालयं, चिह्न कुलिसादि सोभाति भारी। बिमल हनुमन्त हृदि परम मन्दिर सदा, दासतुलसी सरन सोकहारी ॥ ९ ॥

दोनों चरण-कमल सुख के स्थान हैं, लक्ष्मीजी के निकेतन, वज्र आदि (ध्वजा, अङ्कुश, कमल) के चिन्हों से युक्त और बहुत बड़ी शोभावाले हैं। हनुमानजी के निर्मल हृदय रूपी सुन्दर मन्दिर में सदा विहरनेवाले और शरणागत तुलसीदास के शोक को हरनेवाले हैं ॥९॥

हनूमानजी के निर्मल हृदय में गृह का आरोप करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है अनुप्रास की रमणीयता प्रशंसनीय है।

(५२)

कोसलाधीस जगदीस जगदेक-हित, अमित गुन बिपुल बिस्तार लीला। गायन्ति तव चरित सुपवित्र स्रुति सेष, सम्भु सुक सनकादि मुनि मननसीला ॥ १ ॥

अयोध्या के राजा जगदीश्वर (रामचन्द्रजी) जगत के अद्वितीय हितकारी हैं, उनके अनन्त गुण और लीला का बहुत बड़ा विस्तार है। आप के सुन्दर पवित्र चरित को वेद, शेष, शिवजी, शुकदेव, और सनकादिक मुनि चिन्तन तथा गान करते हैं ॥ १ ॥

यहाँ हरियश गान में वेदादि के कथन और चिन्तन का प्रमाण 'शब्दप्रमाण अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

बारिचर बपुष धर भक्त निस्तार पर, धरनि कृत नाव महिमाति गुर्वी। सकल जज्ञांस-मय उग्र बिग्रह क्रोड़, मर्दि दनुजेस उद्धरन उर्वी ॥ २ ॥

भक्तों के बचाव के लिये मछली का शरीर धारण कर पृथ्वी को दूसरी नौका बनाया, आप की अतिशय श्रेष्ठतर महिमा है। सम्पूर्ण यज्ञों के अंश से परिपूर्ण, शूकर के उत्कट शरीर से दैत्येन्द्र (हिरण्याक्ष का वध करके) धरती का उद्धार करनेवाले हैं ॥ २ ॥

कमठ अति बिकट तनु कठिन पृष्ठोपरी, भ्रमत मन्दर कंडु सुख मुरारी। प्रगट कृत अमृत गो इन्दिरा इन्दु वृन्दारकावृन्द आनन्दकारी ॥ ३॥

मुर दैत्य के बैरी (विष्णुभगवान) अत्यन्त भीषण कछुए के शरीर से अपनी कठोर पीठ पर घूमते हुए मन्दराचल को धारण कर ऐसे प्रसन्न हुए जैसे खाज के खुजाने से खाजवाले को प्रसन्नता होती है। देवतावृन्द को आनन्दित करने के लिये समुद्र मथवा कर अमृत, कामधेनु, लक्ष्मी और चन्द्रमा को प्रकट किया ॥३॥

मनुज मुनि सिद्ध सुर नाग त्रासक दुष्ट,-दनुज द्विजधर्म-मरजादहर्त्ता। अतुल मृगराज वपु धरित विद्दरित अरि, भक्त प्रह्लाद अह्लाद-कर्त्ता॥ ४॥

मनुष्य, मुनि, सिद्ध देवता और नागों को भय उत्पन्न करनेवाला दुष्ट दैत्य (हिरण्यकशिपु) ब्राह्मण-धर्म की प्रतिष्ठा का हरनेवाला था। अद्वितीय सिंह का रूप धारण कर शत्रु को विदीर्ण करके प्रह्लाद भक्त को हर्षित करनेवाले हैं॥४॥

छलन बलि कपट बपु रूप वामन ब्रह्म, भुवन परजन्त पद तीनि करनं। चरन नख नीर त्रैलोक्य पावन परम, विबुध-जननी दुसह सोक हरनं॥ ५॥

बलि को छलने के लिये कपट से वामन रूप ब्राह्मण होकर भुवन पर्यन्त तीन परग करनेवाले हैं चरण के नखों का जल तीनों लोकों को परम पवित्र करनेवाला (गङ्गाजल) है और जो देवताओं की माता (अदिति) के असहनीय दुःख हरनेवाले हैं॥५॥

छत्रियाधीस करि निकर बर केसरी, परसुधर विप्र ससि जलद रूपं। बीस भुजदंड दससीस खंडन चंड,-बेग सायक नौमि राम भूपं॥ ६॥

क्षत्रिय राजा रूपी हाथी के झुण्ड के लिये श्रेष्ठ सिंह रूपी परशुराम हुए जो ब्राह्मण रूपी खेती को हरीभरी करनेवाले मेघ रूप हैं। रावण के बीसों भुजदण्ड छेदन करने की उद्धत शक्ति जिनके बाणों में परिपूर्ण ऐसे राजा रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ॥६॥

क्षत्रिय राजाओं में हाथी के झुण्ड का और ब्राह्मणों में कृषि का आरोप करके परशुरामजी में सिंह और मेघ का आरोपण करना 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

भूमि भर भार हर प्रगट परमातमा, ब्रह्म नर रूप धर भक्त हेतू। वृष्निकुल कुमुद राकेस राधारमन कंस बंसाटवी धूमकेतू॥ ७॥

भूमि के पालन करने और बोझ हरनेवाले परब्रह्म परमात्मा भक्तों के हित मनुष्य रूप धारण कर प्रकट हुए। यदुकुल रूपी कुमुदवन के पूर्ण चन्द्रमा, राधिका रमण (श्रीकृष्णचन्द्र) कंसकुल रूपी वा कंस रूपी बाँस के वन के अग्नि रूप हुए हैं॥७॥

परब्रह्म परमात्मा को भक्तों की भलाई और धरती का बोझ दूर करने के लिये नर रूप धारण करनेवाला कहना प्रथम पर्याय की ध्वनि है। यदुकुल में कुमुदवन का और कंस में बाँस के जङ्गल का आरोप करके श्रीकृष्णचन्द्र में पूर्णिमा के चन्द्रमा और दावानल का आरोपण करना 'परम्परित रूपक अलंकार' है। 'कंस बंसाटवी' में 'वंश' शब्द श्लेषार्थी है जिस से कंस का वंश और बाँस का वन दोनों अर्थ निकलता है। यह 'श्लेष अलंकार' है। अनुप्रास भी है, यहाँ अलंकारों की संसृष्टि है।

प्रबल पाखंड महिमंडलाकुल देखि निन्द्यकृत अखिल मख कर्म-जालं। शुद्ध बोधैक घन ज्ञान गुन धाम अज, बुद्ध अवतार बन्दे कृपालं ॥ ८ ॥

पाखण्ड की अत्यन्त प्रबलता से पृथ्वीमण्डल को उद्विग्न देख कर (कारण वश) सम्पूर्ण यज्ञ और कर्म-समूह की निन्दा की। विशुद्ध आत्मज्ञान के अद्वितीय मेघ, ज्ञान और गुणों के स्थान, जन्म रहित, दया निधान बुद्ध अवतार को मैं प्रणाम करता हूँ ॥८॥

कालकलि जनित मल मलिन मन सर्ब्ब नर, मोह निसि निबिड़ जमनान्धकारं। विष्नुजस पुत्र कल्की दिवाकर उदित, दासतुलसी हरन विपति भारं ॥ ९ ॥

कलिकाल से उत्पन्न पापों द्वारा सब मनुष्यों के मन मैले हो गये हैं तिस पर अज्ञान रूपी रात्रि के यमन घने अन्धकार रूप हैं। विष्णुयश ब्राह्मण के पुत्र होकर कल्कि रूपी उदय होनेवाले सूर्य्य तुलसीदास के विपत्ति के बोझ को हरनेवाले हैं ॥९॥

अज्ञान में रात्रि का और यमनों में निबिड़ अन्धकार का आरोपण और कल्कि भगवान में सूर्य्योदय का आरोप करना 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है। इस पद में—मत्स्य, वाराह, कच्छप, नृसिंह, वामन, परशुराम, रामचन्द्र, श्रीकृष्णचन्द्र, बुद्ध और कल्कि भगवान के दसों अवतारों का वर्णन है।

(५३)

सर्ब्ब सौभाग्य-प्रद सर्बतोभद्रनिधि, सर्व सर्बेस सर्बाभिरामं। सर्ब्ब हृदि कञ्ज मकरन्द मधुकर रुचिर,-रूप भूपालमनि नौमि रामं ॥ १ ॥

समस्त सौभाग्य (खुशकिस्मती) के दाता, यज्ञपुरुष, सब में, सब के स्वामी और सब के आनन्द देनेवाले, शिवजी के हृदय रूपी कमल-रस के भ्रमर रूप, सुन्दर रूपवाले और राजाओं के मुकुटमणि रामचन्द्रजी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१॥

'सर्व' शब्द में यमक और पुनरुक्तिप्रकाश का सन्देहसङ्कर है । शिवजी के हृदय में कमल का, प्रीति में मकरन्द का और रामचन्द्रजी में मधुकर का आरोप 'परम्परित रूपक अलंकार' है । स और म अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सर्व सुखधाम गुनग्रामं बिस्राम-प्रद, नाम सर्वास्पदमति पुनीतं । निर्मलं सान्त सुबिसुद्ध बोधायतन, क्रोध मद हरन करुना निकेतं ॥ २ ॥

सब सुखों के स्थान, जिनके गुणों की कथा आनन्ददायिनी और नाम अत्यन्त पवित्र सारी प्रतिष्ठा का देनेवाला है । निर्मल, स्थिर, सुन्दर विशुद्ध विज्ञान के स्थान, दया के मन्दिर, क्रोध और मद के हरनेवाले हैं ॥२॥

अजित निरुपाधि गोतीतमब्यक्त बिभु,-मेकमनवद्यमजम-द्वितीयं । प्राकृतं प्रगट परमातमा परम हित, प्रेरकानन्त बन्दे तुरीयं ॥ ३ ॥

अजेय, निरुपद्रव, अगोचर, अप्रत्यक्ष, समर्थ, अद्वितीय, अनिन्द्य, अजन्मे अनुपम, माया से प्रकट हुए परमात्मा, परम हितैषी, आज्ञा करनेवाले ब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूँ ॥३॥

भूधरं सुन्दरं श्रीबरं मदन-मद-मथन सौन्दर्य सीमातिरम्यं । दुःप्राप्य दुःप्रेक्ष्य दुस्तर्क्य दुःपार, संसार हर सुलभ भाव गम्यं ॥४॥

पृथ्वी को धारण करनेवाले सुन्दर लक्ष्मीकान्त शोभा में अतिशय रमणीयता के हद कामदेव के घमण्ड को मथनेवाले हैं । दुर्लभ, दुर्दर्शन, (कठिनता से दिखाई देनेवाले) अटकल से बाहर, दुस्तर, संसार-बन्धन के मिटाने में अतीव समर्थ और प्रेम से प्राप्त होनेवाले हैं ॥४॥

उपमेय रामचन्द्रजी अपनी शोभा के सामने कामदेव के गर्व को चूर करते हैं अर्थात् उसकी छवि तुच्छ है 'पञ्चम प्रतीप अलंकार' है । र, म, स और द अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सत्यकृत सत्यरत सत्यब्रत सर्बदा पुष्ट, सन्तुष्ट सङ्कष्टहारी । धर्म वर्मनि ब्रह्मकर्मबोधैकद्विज,-पूज्य ब्रह्मन्य जन प्रिय मुरारी ॥५॥

सच्ची करनी, सचाई में तत्पर, सत्यव्रती, सदा, दृढ़, तृप्त और सङ्कटहारी हैं । धर्म के कवच, ब्राह्मण-कर्म के अद्वितीय ज्ञाता, ब्राह्मणों के पूजनीय, ब्राह्मण को पूज्य माननेवाले, भक्तों को प्यार करनेवाले और मुर दैत्य के वैरी हैं ॥५॥

'सत्य' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है। भगवान को धर्म का बखतर कहना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

नित्य निर्मम नित्यमुक्त निर्मान हरि, ज्ञानघन सच्चिदानन्द मूलं। सर्व रच्छक सर्व भच्छकाध्यक्ष कूटस्थ गूढ़ार्चि भक्तानुकूलं ॥ ६ ॥

त्रिकाल व्यापी, ममता रहित, सदा बन्धन से छुटकारा पाये हुए, निरभिमान, नारायण, ज्ञान के राशि और आदि कारण परब्रह्म हैं। सब की रक्षा करनेवाले, सर्वभक्षक-काल के भी स्वामी, सर्वोपरि स्थित (आला दर्जे का) और बहुत बड़ी उपासना से भक्तों पर प्रसन्न होने-वाले हैं ॥६॥

'नित्य और सर्व' शब्दों में पुनरुक्तिप्रकाश है और अनुप्रास की अच्छी रमणीयता है।

सिद्ध साधक साध्य वाच्य वाचक रूप, मन्त्र जापक जाप्य सृष्टि स्रष्टा। परम कारन कञ्जनाभ जलदाभ तनु, सगुन निर्गुन सकल दृस्य द्रष्टा ॥ ७ ॥

सिद्ध पुरुष, साधन करनेवाले, सिद्ध होने योग्य, शब्द और उनके अर्थ रूप, मन्त्र जपने वाले और जाप के लायक तथा सब संसार के रचनेवाले आप ब्रह्मा हैं। प्रधान कारण कमल-नाभ, (नारायण) मेघ के समान शरीर की कान्तिवाले, सगुण और निर्गुण ब्रह्म तथा समस्त देखने योग्य को देखनेवाले हैं ॥७॥

तनु-उपमेय, कञ्जलद-उपमान, आभा-धर्म है। किन्तु वाचकपद रहित 'वाचकलुप्तोपमा' है। सगुण भी और निर्गुण भी, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। द्वितीय सम अलंकार की ध्वनि है। अनुप्रास की मनोहर संसृष्टि है।

ब्योम ब्यापक बिरज ब्रह्म बरदेस बैकुंठ बामन बिमल ब्रह्मचारी। सिद्ध बृन्दारकाबृन्द बन्दित सदा, खंडि पाखंड निर्मूलकारी ॥ ८ ॥

आकाश के समान फैले हुए, अज्ञान रहित, आदिपुरुष, वरदायकों के स्वामी, विष्णु, वामन रूप शुद्ध ब्रह्मचारी हैं। सिद्ध तथा देवतावृन्द से सदा वन्दनीय और पाखण्ड का नाश करके उसको निर्मूल करनेवाले हैं ॥८॥

'व्योम व्यापक' वाचकोपमेय लुप्तोपमा अलंकार है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

पूरनानन्द सन्दोह अपहरन सम्मोह अज्ञान गुन सन्निपातं । बचन मन कर्म गत सरन तुलसीदास, त्रास-पाथोधि इव कुम्भजातं ॥ ६ ॥

आत्मानन्द के राशि, सम्यक मोह और अविवेक के हरनेवाले तथा तीनों गुणों से हुए त्रिदोष के छुड़ानेवाले हैं। मन, वचन और कर्म से शरणागत तुलसीदास के भय रूपी समुद्र को सुखाने में अगस्त मुनि के समान हैं ॥६॥

समअभेदरूपक और धर्मलुप्तोपमा की संसृष्टि है, अनुप्रास भी है।

(५४)

बिस्व बिख्यात बिस्वेस बिस्वायतन, बिस्व-मरजाद ब्यालारिगामी । ब्रह्म बरदेस बागीस ब्यापक बिमल, बिपुल बलवान निर्बान-स्वामी ॥ १ ॥

जगद्विख्यात भूमण्डल के स्वामी, विश्वरूप, जगत की मर्यादा के रक्षक और गरुड़ पर चढ़ कर चलनेवाले हैं। परब्रह्म, वरदायकों के स्वामी, वाणीपति, सर्व व्यापी, निर्मल बड़े ही बलवान और मोक्ष के मालिक (देनेवाले) हैं ॥१॥

'ब' अक्षर की घनी आवृत्ति में अनुप्रास है।

प्रकृति महतत्व सब्दादि गुन देवता, ब्योम मरुदग्नि अमलाम्बु उर्बी । बुद्धि मन इन्द्रिय प्रान चित्तातमा, काल परमानु चिच्छक्ति गुर्बी ॥ २ ॥

माया, परब्रह्म, शब्द आदि (रूप, रस, गन्ध, स्पर्श) इन्द्रियों के विषय, तीनों गुण, देवता, आकाश, पवन, अग्नि, स्वच्छजल, पृथ्वी, बुद्धि, मन, इन्द्रियाँ, पाँचों प्राण, चित्त, आत्मा, महाकाल, अल्पसमय और अत्युत्तम चित्त की शक्ति— ॥२॥

सर्बमेवात्र त्वद्रूप भूपालमनि ब्यक्त अब्यक्त गतभेद बिष्नो । भुवन भवदङ्ग कामारि बंदित पद,-द्वन्द मन्दाकिनी-जनक जिष्नो ॥ ३ ॥

हे राजशिरोमणि ! ये सब आप के रूप हैं, आप प्रकट और गुप्त भेद रहित विष्णु हैं। जगत आप का अङ्ग है, दोनों चरण शिवजी से वन्दनीय, मन्दाकिनी के उत्पन्न कारक और विजयी हैं ॥३॥

'द्वन्द' शब्द श्लेषार्थी है, दो की संख्या और कलह। पहले द्वन्द और मन्दाकिनी का नाम लेकर फिर विपरीत क्रम से जनक-जिष्णो कहना 'यथासंख्य अलंकार' है। यदि जिष्णो प्रथम और जनक पीछे कहा जाता तो विपरीतता न आती। व्यक्त भी और अव्यक्त भी, इस विरोधी कथन में 'विरोधाभास अलंकार' है।

आदि मध्यान्त भगवन्त त्वं सर्बगत,-मीस पस्यन्ति जे ब्रह्मबादी। जथा पटतन्तु घट-मृत्तिका सर्प-स्रग, दारु-करि कनक कटकाङ्गदादी ॥ ४ ॥

हे भगवन्त! आप आदि, मध्य, अन्त सब में वर्तमान ईश्वर हैं, जो वेदान्ती हैं वे ऐसा ही देखते हैं जैसे वस्त्र और सूत, घड़ा और मिट्टी, साँप और माला, हाथी और लकड़ी, कङ्कण बिजायठ आदि गहना और सुवर्ण ॥४॥

आप सब में विद्यमान हैं, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे कपड़ा का असली कारण सूत है, घड़े का मृत्तिका, कृत्रिम सर्प और हाथी में रस्सी और काठ आभूषणों में सुवर्ण कारण रूप है, इसी प्रकार दृश्यमान पदार्थों में आप ही को कारण रूप देखते हैं 'उदाहरण अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

गूढ़ गम्भीर गर्बघ्न गूढ़ार्थबित, गुप्त गोतीत गुरु ज्ञान ज्ञाता। ज्ञेय ज्ञान प्रिय प्रचुर गरिमागार, घोर संसार पर पार दाता ॥ ५ ॥

गुप्त, जटिल, गर्व नाशक, छिपे अर्थ के जाननेवाले, गूढ़, अगोचर और श्रेष्ठ ज्ञान के ज्ञाता हैं। जानने योग्य, ज्ञान को प्रिय माननेवाले, बहुत बड़ी महिमा के स्थान, भयानक संसार से परे और जीवों को पार करनेवाले हैं ॥५॥

ग, त और र अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है। उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन में 'सार अलंकार' है।

सत्यसङ्कल्प अतिकल्प कल्पान्त कृत, कल्पनातीत अहितल्प बासी। बनज लोचन बनजनाभ बनदाभ बपु बनचरध्वज-कोटि रूपरासी ॥ ६ ॥

तथ्य प्रतिज्ञावाले, महाकल्प और कल्प के अन्त करनेवाले, अनुमान से बाहर और शेष की सेज पर शयन करनेवाले हैं। कमल नयन, कमलनाभ, मेघ की कान्ति के समान शरीर करोड़ों कामदेव की शोभा के राशि हैं ॥६॥

उपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है। व्यङ्गार्थ में व्यतिरेक की ध्वनि है।

सुकर दुःकर दुराराध्य दुर्व्यसन हर, दुर्ग दुर्द्धर्ष दुर्गार्ति-हर्त्ता । बेदगर्भार्भकादभ्र गुन गर्व अर्वाग पर गर्व निर्बापकर्त्ता ॥ ७ ॥

सुन्दर कर्त्ता, दुःसाध्य, कठिनाई से आराधन करने योग्य, बुरी लत के छुड़ानेवाले, दुर्गम, दुर्दमनीय, कठिन दुःख के हरनेवाले हैं। बेदगर्भ (ब्रह्मा) के अर्भक (पुत्र) अदभ्र (समूह) अर्थात् ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमारादि को हुए अधिक गुण के गर्व (समीपी तथा श्रेष्ठ होने के ममत्व) को दूर करनेवाले हैं ॥७॥

द, र और ग अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। 'गर्व' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है।

भक्त अनुकूल भव सूल निर्मूल कर, तूल अघ नाम पावक समानं। तरल तृष्ना तमी तरनि धरनी धरन, सरन भय हरन करुनानिधानं ॥ ८ ॥

भक्तों के सहायक, संसार की पीड़ा के निर्मूल करनेवाले और नाम पापरूपी रूई के लिये अग्नि के समान हैं। क्षणभङ्गुर तृष्णा रूपी रात्रि के लिये सूर्य्य रूप, धरती को धारण करने-वाले, शरणागतों के भय को हरनेवाले दया के स्थान हैं ॥८॥

रूपक और उपमा अलंकार की संसृष्टि है। अनुप्रास भी है।

बहुल वन्दारु वृन्दारकावृन्द पद,-द्वन्द मन्दार मालोरधारी। पाहि मामीस सन्ताप-सङ्कुल-सदा, दासतुलसी प्रनत रावनारी ॥ ९ ॥

जिनके युगल चरणों के अधिकांश देवतावृन्द प्रणाम करनेवाले हैं और जो हृदय में पारिजात के फूलों की माला पहने हैं। हे रावण के वैरी परमात्मन्! शरणागत तुलसीदास सदा दुःख से भरा है, मेरी रक्षा कीजिये ॥९॥

अनुप्रास और महिमा के उदात्त की संसृष्टि है।

(५५)

सन्त सन्ताप हर बिस्व बिस्राम कर, राम कामारि अभिरामकारी। सुद्ध बोधायतन सच्चिदानन्द घन सज्जनानन्दबर्द्धन खरारी ॥१॥

रामचन्द्रजी सन्त के कष्ट को हरनेवाले, जगत को आराम देनेवाले और शिवजी को आनन्दित करनेवाले हैं। विशुद्ध ज्ञान के स्थान, सत् चित् आनन्द के राशि (परब्रह्म) सज्जनों के आनन्द की वृद्धि करनेवाले, खर राक्षस के शत्रु हैं ॥१॥

सील-समता-भवन बिषमतामति समन, राम-सीतारमन रावनारी। खड्ग कर चर्म बर बर्म धर रुचिर कटि,-तून सर सक्ति सारङ्गधारी ॥ २ ॥

रावण के शत्रु, सीतारमण रामचन्द्रजी शुद्धाचरण और सर्वज्ञता के स्थान तथा कुटिलता के अतिशय नाश करनेवाले हैं। हाथ में तलवार, ढाल, शरीर पर श्रेष्ठ कवच धारण किये, कमर में सुन्दर तरकस, बरछा और शार्ङ्गधनुष लिये हैं ॥२॥

सत्यसन्धान निर्बान-प्रद सर्ब हित,सर्ब गुन-ज्ञान-बिज्ञान-साली। सघन तम घोर संसार भर सर्बरी, नाम दिवसेस खर किरनमाली ॥ ३ ॥

सत्याचरण, मोक्षदायक, सब के उपकारी, समस्त गुण ज्ञान और विज्ञान से परिपूर्ण हैं। गहरे भीषण अन्धकार से भरे संसार रूपी रात्रि के लिये जिनका नाम तीक्ष्ण समूह किरणोंवाला सूर्य रूप है ॥३॥

भीषण संसार में अँधेरी रात का आरोप और राम नाम में तीक्ष्ण किरणवाले सूर्य्य का आरोपण 'परम्परित रूपक' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

तपन तीच्छन तरुन तीव्र तापघ्न तप,-रूप तनु भूप तम पर तपस्वी। मान मद मदन मत्सर मनोरथ मथन, मोह-अम्भोधि-मन्दर मनस्वी ॥ ४ ॥

ताप रूपी तीक्ष्ण तरुण सूर्य्य के ताप को नसानेवाले, तप के रूप, राजा का शरीर होकर तमोगुण से परे और तपस्वी हैं। अभिमान, मद, काम, मत्सरता, कामना और अज्ञान रूपी समुद्र को मथने के लिये मन्दराचल रूप तथा यथेच्छाचारी हैं ॥४॥

समअभेदरूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

वेद बिख्यात बरदेस बामन बिरज, बिमल बागीस बैकुंठ-स्वामी । काम क्रोधादि मर्दन बिबर्धन छमा, सान्त-बिग्रह बिहगराज-गामी ॥ ५ ॥

वेद में प्रसिद्ध वर देनेवालों के स्वामी, वामन रूपधारी, निर्मल, वाणीपति और वैकुण्ठ-नाथ हैं। काम क्रोधादि के संहारक, क्षमा को बढ़ानेवाले, शान्त स्वरूप और पक्षिराज पर सवार होकर गमन करनेवाले हैं ॥५॥

परम पावन पाप पुञ्ज मुञ्जाटवी, अनल इव निमिष निर्मूल कर्त्ता । भुवन भूषन दूषनारि भुवनेस भू-नाथ स्रुतिमाथ जय भुवन-भर्त्ता ॥ ६ ॥

अत्यन्त पवित्र, पाप की राशि रूपी सरपत के वन को पल भर में अग्नि के समान भस्म करनेवाले हैं। भूमण्डल के आभूषण, दूषण के शत्रु, लोकों के स्वामी, धरणीपति परमात्मा और पृथ्वी के पालन करनेवाले आप की जय हो ॥६॥

समूह पाप में मूँज के वन का और रामचन्द्रजी में अग्नि का आरोपण कर पूर्णरूप से एकरूपता 'समअभेदरूपक अलंकार' है। इव वाचक से उपमा की संसृष्टि है और अनुप्रास भी है। भुवन शब्द में 'यमक और पुनरुक्तिप्रकाश' का सन्देहसङ्कर है। 'दूषण' शब्द श्लेषार्थी है, राक्षस विशेष और दोष दोनों अर्थ निकलने से 'श्लेष अलंकार' है।

अमल अबिचल अकल सकल सन्तप्त कलि-बिकलता भञ्जनानन्द रासी । उरगनायक-सयन तरुन पङ्कज-नयन, छीरसागर-अयन सर्ब बासी ॥ ७ ॥

निर्मल, अचल, अङ्ग हीन, समस्त कलियुग की तपानेवाली बेचैनी के नाशक और आनन्द के राशि हैं। शेषनाग पर शयन करनेवाले, नवीन फूले हुए कमल के समान लाल नेत्र, क्षीर सिन्धु स्थान और सब में टिके हुए हैं ॥७॥

नयन-उपमेय, तरुणकमल-उपमान है; किन्तु समान-वाचक और तदणता धर्म लुप्त रहने से 'वाचकधर्म लुप्तोपमा अलंकार' है। सर्वबासी कहने में 'तृतीय विशेष अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सिद्ध कवि कोबिदानन्ददायक पद,-द्वन्द मन्दात्म मनुजैर्दुरापं। जत्र सम्भूत अतिपूत जल सुरसरी, दरसनादेव अपहरति पापं ॥ ८ ॥

सिद्ध, कवि और विद्वानों को आनन्द देनेवाले, दोनों चरण नीचात्मा मनुष्य रूपी बुरे जल को पुनीत करनेवाले हैं। जहाँ अत्यन्त पवित्र जलवाली गङ्गाजी उत्पन्न हुई हैं जो दर्शन के योग्य और पापों को हर लेती हैं ॥८॥

रूपक, उदात्त और अनुप्रास की संसृष्टि है।

नित्य निर्मुक्त संजुक्त-गुन निर्गुनानन्त भगवन्त न्यामक नियन्ता। बिस्व पोषन भरन बिस्व कारन करन, सरन तुलसीदास त्रास-हन्ता ॥ ९॥

सदा स्वतन्त्र, गुणों से युक्त, गुण रहित, अनन्त, परमात्मा, नियामक (संसार से पार उतारनेवाले नाविक) और परधाम पहुँचनेवाले रथ के सारथी हैं। संसार के पालन पोषण करनेवाले, जगत के आदि कारण और उपजानेवाले तथा शरणागत तुलसीदास के भय को नसानेवाले हैं ॥९॥

गुणों से युक्त भी और गुण रहित भी, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। न्यामक नियन्ता कहने में 'द्वितीय निदर्शना' है। 'विश्व' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है। विश्व के कर्त्ताधर्त्ता ही त्रास हरने में समर्थ हो सकते हैं। यह 'परिकराङ्कुर' की ध्वनि है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(५६)

दनुज-सूदन दयासिन्धु दम्भापहन, दहन दुर्दोष दर्पापहर्त्ता। दुष्टता दमन दम-भवन दुःखौघ हर, दुर्ग दुर्बासना नास-कर्त्ता ॥ १ ॥

राक्षसों के संहारक, दया के समुद्र, दम्भ के छुड़ानेवाले, कठिन दोषों के जलानेवाले और उद्दण्डता के हरनेवाले हैं। दुष्टता के दबानेवाले, इन्द्रियदमन के स्थान, दुःख समूह के हर्त्ता और दुर्गम खोटी कामना के नाश करनेवाले हैं ॥१॥

'द' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है। द्वितीय निदर्शना और उल्लेख की ध्वनि है।

भूमि भूषन भानुमन्त भगवन्त भव,-भञ्जनाभयद भुवनेस भारी । भावनातीत भव-बन्द्य भव-भक्त-हित, भूमि-उद्धरन भूधरन-धारी ॥ २ ॥

धरती के भूषण, सूर्य्य के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान, संसार के भय का नाश करके अभयदान देनेवाले और बड़े भुवनेश्वर हैं । निस्पृह, शिवजी से वन्दनीय, शङ्करजी के भक्तों के हितकारी, पृथ्वी को ऊपर उठानेवाले और पर्वतों को धारण करनेवाले हैं ॥२॥

'भ' अक्षर की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है ।

वरद बनदाभ बागीस बिस्वातमा, बिरज बैकुंठ-मन्दिर बिहारी । ब्यापक ब्योम बन्द्याङ्घ्रि पावन बिभो, ब्रह्मविदब्रह्म चिन्तापहारी ॥ ३ ॥

वरदायक, मेघ की कान्ति युक्त, वाणी के स्वामी, जगत के आत्मा, निर्मल और वैकुण्ठ भवन में विहार करनेवाले हैं । आकाश के समान सर्वत्र फैले हुए, वन्दनीय चरण, पवित्र, समर्थ, ब्रह्मज्ञानी परब्रह्म और चिन्ता के हरनेवाले हैं ॥३॥

वाचकलुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सहज सुन्दर सुमुख सुमन सुभ सर्वदा, सुद्ध सर्बज्ञ स्वच्छन्दचारी । सर्बकृत सर्बभृत सर्बजित सर्बहित, सत्यसङ्कल्प कल्पान्तकारी ॥ ४ ॥

स्वाभाविक सुन्दर, हँसमुख, अच्छे मनवाले, कल्याण रूप, सदा स्वच्छ, सब जाननेवाले और स्वेच्छाचारी हैं । सब के कर्त्ता, सब के पोषण करनेवाले, सब के जीतनेवाले, सब के हितैषी, दृढ़प्रतिज्ञ और प्रलय करनेवाले हैं ॥४॥

'स' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास और 'सर्ब' शब्द रुचिरता के लिये कई बार आया पुनरुक्तिप्रकाश' है । महिमा का उदात्त तीनों की संसृष्टि है ।

नित्य निर्मोह निर्गुन निरञ्जन निजानन्द निर्मान निर्बान-दाता । निर्भरानन्द निःकम्प निःसीम निर्मुक्त निरुपाधि निर्मम-विधाता ॥ ५ ॥

निरन्तर मोह रहित, गुणों से परे, निर्लेप, आत्मानन्द स्वरूप, निरभिमान और मोक्ष के देनेवाले हैं। आनन्द से पूर्ण, अचल, निरवधि, स्वतन्त्र, निरुपद्रव, और मोह रहित करने के विधाता हैं ॥५॥

'न' अक्षर की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है।

महामङ्गल-मूल मोद-महिमायतन, मुग्ध-मधु-मथन मानद अमानी। मदन मर्दन-मदातीत माया रहित, मञ्जु मा-नाथ पाथोज पानी ॥ ६ ॥

महा मङ्गलों के मूल, आनन्द और महिमा के स्थान, मूर्ख मधु दैत्य के मथनेवाले, दूसरों को प्रतिष्ठा देनेवाले और आप मान रहित हैं। कामदेव के नाशक, निरभिमान, माया से रहित, सुन्दर लक्ष्मीपति और हाथ में कमल धारण किये हैं ॥६॥

कमल-लोचन कला-कोस कोदंड-धर, कोसलाधीस कल्यान-रासी। जातुधान प्रचुर मत्तकरि केसरी, भक्त मन पुन्य-आरन्य वासी ॥ ७ ॥

कमल नेत्र, कौतुक निधान, धनुर्धर, अयोध्या के राजा और कल्याण के राशि हैं। राक्षस समूह रूपी मतवाले हाथी के लिये सिंह रूप और भक्तों के मन रूपी पवित्र वन में निवास करनेवाले हैं ॥७॥

'कमल-लोचन' में वाचकधर्म लुप्तोपमा है। राक्षस समुदाय में मतवाले हाथियों का आरोप, रामचन्द्रजी में सिंह का और भक्तों के मन पर जङ्गल का आरोपण इसलिये किया गया कि सिंह वन में निर्भय रह कर हाथियों के घमण्ड को चूर चूर करता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

अनघ अद्वैत अनवद्य अव्यक्त अज, अमित अविकार आनन्द सिन्धो। अचल अनिकेत अबिरल अनामय अनारम्भ अम्भोदनादघ्न-बन्धो ॥ ८ ॥

निष्पाप, अद्वितीय, निर्दोष, अप्रकट, अजन्मे, असीम, विकार रहित और आनन्द के समुद्र हैं। निश्चल, स्थान रहित, सघन, आरोग्य, अनुष्ठान विहीन और मेघनाद के नाशक लक्ष्मणजी के भाई हैं ॥८॥

'अ' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास की रमणीयता है। अम्भोदनादघ्न लक्ष्मणजी का क्रिया-वाचक नाम है।

दासतुलसी खेद-खिन्न आपन्न इह,-सोक सम्पन्न अतिसय सभीतं । प्रनत पालक राम परम करुना धाम, पाहि मामुर्विपति दुर्विनीतं ॥ ६ ॥

यह उद्धत तुलसीदास ग्लानि से दुर्बल, शोक से भरा, अत्यन्त भयभीत, आपद ग्रस्त, आप की शरण आया है। हे शरणागतों के रक्षक, अत्युत्तम दया के स्थान, धरती के स्वामी रामचन्द्रजी ! मेरी रक्षा कीजिये ॥६॥

(५७)

देहि सतसङ्ग निजअङ्ग श्रीरङ्ग भव-भङ्ग-कारन सरन-सोक-हारी । जेतुभवदङ्घ्रि-पल्लव-समाश्रित सदा, भक्तिरत बिगत-संसय मुरारी ॥ १ ॥

हे मुरारि लक्ष्मीकान्त ! सत्सङ्ग आप का अङ्ग है, वह संसार के निर्मूल करने का कारण और शरणागतों के शोक का हरनेवाला मुझे दीजिये। जो आप के चरण रूपी पल्लवों का सब तरह भरोसा रख कर सदा भक्ति में तत्पर रहते हैं वे सन्देह से रहित हो जाते हैं ॥१॥

सत्सङ्ग की उत्तरोत्तर महिमा का उत्कर्ष कथन 'सार अलंकार' है। चरण-पल्लव में रूपक है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

असुर सुर नाग नर जच्छ गन्धर्ब खग, रजनिचर सिद्ध जे चापि अन्ने । सन्त संसर्ग त्रयबर्गपर-परमपद, प्राप्य निःप्राप्य गति त्वयि प्रसन्ने ॥ २ ॥

दैत्य, देवता, नाग, मनुष्य, यक्ष, गन्धर्व, पक्षी, राक्षस, सिद्ध और भी जो दूसरे हैं सन्तों की सङ्गति त्रिवर्ग (अर्थ, धर्म, काम) से परे मोक्षपद पाने के योग्य जो गति अप्राप्य है आप की कृपा से वह प्राप्त होती है ॥२॥

वृत्त बलि बान प्रहलाद मय ब्याध गज, गिद्ध द्विजबन्धु निजधर्म त्यागी । साधु-पद-सलिल निर्धूत कल्मष सकल, स्वपच जवनादि कैवल्य-भागी ॥ ३ ॥

वृत्रासुर, बलि, वाणासुर, प्रह्लाद, मयदैत्य, व्याधा, गजेन्द्र, गिद्ध और स्वधर्म त्यागी अधम ब्राह्मण, (अजामिल) चाण्डाल तथा यमन आदि के समस्त पाप साधु-चरणों के जल से धो गये और वे मोक्ष के भागी हुए ॥३॥

सान्त निरपेच्छ निर्मम निरामय अगुन, सब्द ब्रह्मैक पर ब्रह्मज्ञानी । दच्छ-समदृक स्वदृक बिगत अति स्व-पर-मति, परम रति बिरति तव चक्रपानी ॥ ४ ॥

हे चक्रपाणि ! जो आप में परम प्रेम रखते हैं वे शान्त, निस्पृह, ममता रहित, आरोग्य, गुणों से पृथक्, अद्वितीय, वेदज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, समता की दृष्टि में कुशल, अपनता की आँख से रहित, अपनी पराई बुद्धि से अतिशय हीन और वैराग्यवान होते हैं ॥४॥

बिस्व उपकार हित ब्यग्रचित सर्बदा, त्यक्त मद मन्यु कृत पुन्य-रासी । जत्र तिष्ठन्ति तत्रैव अज सर्ब हरि, सहित गच्छन्ति छीराब्धि-बासी ॥ ५ ॥

संसार की भलाई के लिये जिनका चित्त सदा उद्विग्न रहता है, गर्व और क्रोध को त्याग कर पुण्य की राशि सम्पादन करते हैं । वे जहाँ रहते हैं वहाँ ब्रह्मा, शिवजी के सहित क्षीरसागर-निवासी विष्णु भगवान स्वयम् जाते हैं ॥५॥

सन्तों की महिमा कथन महानों की उपलक्षणता का 'उदात्त अलंकार' है ।

बेद-पयसिन्धु सुबिचार-मन्दर महा, अखिल मुनिबृन्द निर्मथन कर्त्ता । सार सत्सङ्गमुद्धृत्य इति निस्चितं, बदत श्रीकृष्न बैदर्भि-भर्त्ता ॥६॥

वेद रूपी क्षीरसागर को सुन्दर विचार रूपी मन्दराचल से समस्त बड़े बड़े मुनिवृन्द रूपी देवता मन्थन करनेवाले हैं । सत्सङ्ग रूपी सार (अमृत) निकालते हैं यह सिद्धान्त है, ऐसा (गीता में) रुक्मिणीकान्त श्रीकृष्णचन्द्रजी कहते हैं ॥६॥

इस पद में सत्सङ्ग और अमृत-रत्न का साङ्गोपाङ्ग रूपक बाँधा है । यहाँ 'साङ्ग रूपक अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सोक सन्देह भय हर्ष तम तर्ष गन, साधु सद-जुक्ति बिच्छेद-कारी । जथा रघुनाथ सायक निसाचर चमू-निचय निर्दलन पटु बेग भारी ॥७॥

शोक, सन्देह, भय, हर्ष, अज्ञान और तृष्णा-समूह को साधुजन अपनी श्रेष्ठ युक्ति से वियोग करनेवाले हैं । जैसे रघुनाथजी के वाण राक्षसों की अपार सेना का नाश करने में भारी वेगवाले और तीक्ष्ण हैं ॥७॥

साधु अपनी श्रेष्ठ युक्ति से शोक-सन्देहादि दूर कर देते हैं, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे रघुनाथजी के बाण राक्षस-समूह की सेना नसाने में प्रवीण और अमोघ शक्ति वाले हैं 'उदाहरण अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

जत्र कुत्रापि मम जन्म निजकर्म-बस, भ्रमत जग जोनि सङ्कट अनेकं। तत्र त्वद्भक्ति सज्जन समागम सदा, भवतु मे राम विस्राममेकं ॥८॥

जहाँ कहीं भी मेरा जन्म अपने कर्मों के अधीन हो और संसार में विविध सङ्कट सहता हुआ योनियों में भ्रमण करूँ। वहाँ आप की भक्ति और सज्जनों का समागम मुझे सदा हो, हे रामचन्द्रजी ! मैं यही एक विश्राम चाहता हूँ ॥८॥

प्रबल भव जनित त्राय ब्याधि भेषज भक्ति, भक्त भैषज्यमद्वैत-दरसी। सन्त भगवन्त अन्तर निरन्तर नहीं,-किमपि मति-बिमल कह दासतुलसी ॥९॥

संसार से उत्पन्न जबर्दस्त तीनों रोग (काम, क्रोध, लोभ) के लिये भक्ति औषधि रूपी है और आत्मदर्शी भक्तजन वैद्य रूप हैं। सन्त और ईश्वर में निरन्तर कुछ भी अन्तर नहीं है, तुलसीदासजी कहते हैं कि निर्मल बुद्धिवाले (शिवजी, वेद, शेषनाग, शारदा आदि सब यही) कहते हैं ॥९॥

संसार जनित विकारों में रोग का आरोप, भक्ति में औषधि का और अद्वैतदर्शी भक्तों में वैद्य का आरोपण इसलिये किया कि भीषण रोग अच्छी दवा से सद्वैद्यों ही के उपचार से दूर होता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। सन्त और ईश्वर में कुछ भी भेद नहीं 'सामान्य अलंकार' है। निर्मल मतिवालों के कथन का प्रमाण वर्णन करना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है। अनुप्रास के सहित संसृष्टि है।

(५८)

देहि अवलम्ब कर-कमल कमलारमन, दमन-दुख समन सन्ताप भारी। ग्रसन अज्ञान निसिपति बिधुन्तुद गर्ब, काम-करि मत्त हरि दूषनारी ॥१॥

हे लक्ष्मीकान्त ! अपने कर-कमलों का मुझे सहारा दीजिये, जो दुःख के दमन करनेवाले और बहुत बड़े सन्ताप के नाशक हैं। हे दूषणारि ! आप अज्ञान रूपी चन्द्रमा के ग्रसने में राहु रूप हैं और कामदेव रूपी मतवाले हाथी का गर्व प्रहार करने में सिंह रूप हैं ॥१॥

कर-कमल में वाचकधर्म लुप्तोपमा है। अज्ञान में चन्द्रमा का और रामचन्द्रजी में राहु का आरोपण तथा कामदेव में मत्तगयन्द का और रघुनाथजी में सिंह का आरोप परम्परा के साथ

'समअभेदरूपक अलंकार' है। 'दूषणारि' संज्ञा साभिप्राय है; क्योंकि जो दूषण जैसे भीषण राक्षस के मारनेवाले हैं वे ही कामकरि-मत्त-के दमन करने में समर्थ हो सकते हैं। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। अनुप्रास भी है। इस प्रकार यहाँ बहुत से अलंकारों की सम प्रधानता है।

बपुष ब्रह्मांड सुप्रबृत्ति लङ्का दुर्ग, रचित मन दनुज मय रूप धारी। बिबिध कोसौघ अति रुचिर मन्दिर निकर, सत्वगुन प्रमुख त्रय कटक-कारी ॥२॥

शरीर रूपी भूमण्डल में अत्यन्त प्रवृत्ति (संसारिक विषयों का ग्रहण) रूपी लङ्का का गढ़ है, जिसको मन रूपी दानव ने मय दैत्य का रूप धारण कर बनाया है। अनेक बृहद् भाण्डार (शरीरस्थ धातु रक्तादि) अत्यन्त सुन्दर मन्दिरों की श्रेणी हैं और तीनों गुण (सत, रज, तम) प्रधान सेनापति रूप हैं ॥२॥

लङ्कापुरी के समस्त अङ्गों का आरोप शरीर में साङ्गोपाङ्ग इस पद के अन्त तक कविजी ने बाँधा है। यह 'साङ्ग रूपक अलंकार' है।

कुनप अभिमान सागर भयङ्कर घोर, बिपुल अवगाह दुस्तर अपारं। नक्र रागादि सङ्कुल मनोरथ सकल, सङ्ग सङ्कल्प बीची बिकारं ॥३॥

देहाभिमान रूपी अत्यन्त भयङ्कर समुद्र बहुत ही अथाह, दुर्गम और अपार है। राग द्वेषादि रूपी घड़ियाल से भरा है, सम्पूर्ण कामना और साथ होने की प्रतिज्ञाएँ तरङ्ग-मालाओं का परिणाम है ॥३॥

मोह दसमौलि तदभ्रात अहँकार पाकारिजित-काम बिस्राम-हारी। लोभ-अतिकाय मत्सर-महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट बिबुधान्तकारी ॥४॥

मोह रूपी रावण, अहङ्कार रूपी उसका भाई, (कुम्भकर्ण) कामदेव रूपी इन्द्रजीत आनन्द के हरनेवाले हैं। लोभ रूपी अतिकाय, डाह रूपी दुष्ट महोदर, क्रोध पापात्मा देवान्तक रूपी है ॥४॥

द्वेष-दुर्मुख दम्भ-खर अकम्पन-कपट, दर्प-मनुजाद मद-सूलपानी। अमित बल परमदुर्जय निसाचर निकर, सहित षड्वर्ग गो जातुधानी ॥५॥

द्रोह रूपी दुर्मुख, दम्भ रूपी खर, कपट रूपी अकम्पन, घमण्ड रूपी मनुजभक्षक और मद रूपी शूलपाणि असीम बली अत्यन्त अजेय राक्षसों का समुदाय है, ऊपर कहे षड्वर्ग इन्द्रियाँ रूपिणी राक्षसिनियों के सहित शरीर रूपी कोट में सब निवास करते हैं ॥५॥

षड्वर्ग-काम क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरता को कहते हैं ।

जीव भवदङ्घ्रि सेवक विभीषन बसत, मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिन्ता । नियम जम सकल सुरलोक लोकेस लङ्केस-बस नाथ अत्यन्त भीता ॥६॥

आप के चरणों का सेवक जीव रूपी विभीषण दुष्ट रूपी वन के बीच चिन्ता से जकड़ा हुआ निवास करता है । हे नाथ ! नियम रूपी देवलोक और संयम रूपी लोकपाल सब रावण के वश में होकर अत्यन्त भयभीत हो रहे हैं ॥ ६ ॥

नियम और यम कह कर उसी क्रम से सुरलोक तथा लोकेश कहना 'यथासंख्य अलंकार' है ।

ज्ञान अवधेस गृह-गेहिनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भू भार हर्त्ता । भक्त सङ्कष्ट अवलोक पितु वाक्य कृत, गमन किय गहन वैदेहि-भर्त्ता ॥ ७ ॥

ज्ञान रूपी राजा दशरथ और सुन्दर भक्ति रूपिणी गृहभार्य्या (कौशल्या) वहाँ जन्म लेकर आप धरती का बोझ हरनेवाले हैं । हे जानकी नाथ ! भक्तों को सङ्कटापन्न देख कर पिता के वचन से आपने वन-गमन किया ॥७॥

मोच्छ साधन अखिल भालु मर्कट विपुल, ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू । प्रबल वैराग्य दारुन प्रभञ्जन-तनय, विषय बन भवनमिव धूमकेतू ॥ ८ ॥

मोक्ष के सम्पूर्ण साधन समूह भालू-बन्दर रूप हैं, ज्ञान रूपी सुग्रीव ने समुद्र में पुल बना दिया । प्रबल वैराग्य रूपी पवन-कुमार विषय समूह रूपी मन्दिर के लिये भीषण अग्नि के समान हैं ॥८॥

परस्परितरूपक और धर्मलुप्तोपमा की संसृष्टि है ।

दुष्ट दनुजेस निर्बंस कृत दास हित, बिस्व दुख हरन बोधैकरासी । अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा, दासतुलसी हृदय-कमल-बासी ॥ ९ ॥

हे सम्यकज्ञान के अद्वितीय राशि, रामचन्द्रजी ! आपने भक्तों के उपकारार्थ दुष्ट रावण का निर्वंश कर संसार का दुःख दूर किया। अपने छोटे भाई (लक्ष्मणजी) और जानकीजी के सहित सदा तुलसीदास के हृदय रूपी कमल में निवास करनेवाले हैं ॥८॥

वाच्यार्थ और व्यङ्गार्थ बराबर होने से तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है कि आप सकुटुम्ब रावण के संहार करनेवाले हैं और इस दास के हृदय में निवास कर आरोपित रावणवंश का विनाश कर डालियेगा।

(५९)

दीन उद्धरन रघुबर्ज करुना-भवन, समन सन्ताप पापौघहारी । बिमल बिज्ञान बिग्रह अनुग्रह रूप, भूप बर बिबुध नर्मद खरारी ॥ १ ॥

हे रघुनाथजी ! आप दीनजनों के उद्धार करनेवाले, दया के स्थान, दुःख नाशक और पाप-समूह के हरनेवाले हैं। निर्मल विज्ञान के शरीर, कृपा के रूप, राजाओं में श्रेष्ठ, देवताओं के कल्याणकारी और खर के वैरी हैं ॥१॥

संसार कान्तार घोर गम्भीर घन, गहन तरु-कर्म सङ्कुल मुरारी। बासना बल्लि खर कंटकाकुल बिपुल, निबिड़ बिटपाटवी कठिन भारी ॥ २ ॥

हे मुरारि भगवन ! संसार रूपी बहुत घना भयावना जङ्गल कर्म रूपी जटिल वृक्षों से परिपूर्ण है। कामना रूपी लताएँ कठिन काँटों से युक्त बहुत सी फैली हैं, यह सघन पेड़ों का वन बड़ा दुष्कर है ॥२॥

यहाँ उपमेय-संसार और उपमान-वन का कविजी ने साङ्गोपाङ्ग रूपक बाँधा है। यह 'साङ्गरूपक अलंकार' इस पद के अन्त तक वर्णन किया है।

बिबिध चितबृत्ति खग निकर सेनोलूक, काक बक गिद्ध आमिष अहारी । अखिल खल निपुन छल छिद्र निरखत सदा, जीव जन पथिक मन खेद-कारी ॥ ३ ॥

अनेक प्रकार चित्त की गति बाज, उलूक, कौआ, बकुला और गिद्ध मांसाहारी पक्षियों का झुण्ड है। ये सब दुष्ट धोखेबाजी में चतुर सदा अवसर देखा करते हैं, जीव रूपी पथिकजन के मन में खेद उत्पन्न करनेवाले हैं ॥३॥

क्रोध करि मत्त मृगराज-कन्दर्प मद,-दर्प वृक भालु अति उग्रकर्मा । महिष-मत्सर-क्रूर लोभ-सूकरसूर, फेरु-छल दम्भ-मार्जारधर्मा ॥ ४ ॥

क्रोध रूपी मत्तगयन्द, कामदेव रूपी सिंह, मतवालापन रूपी भेड़िया, उद्दण्डता रूपी भालू घोर कर्म करनेवाले हैं। डाह रूपी निर्दयी भैंसा, लोभ रूपी विक्रान्त सुअर, छल रूपी सियार और घमण्ड रूपी बिलाव धर्मी (बिल्ली के समान छिप कर घात करनेवाला) है ॥४॥

मद-दर्प और वृक भालु में 'यथासंख्य अलंकार' है।

कपट-मर्कट बिकट ब्याघ्र-पाखंडमुख, दुखद मृग ब्रात उत्पातकर्त्ता । हृदय अवलोकि यह सोक सरनागतं, पाहि मा पाहि भो बिस्व-भर्त्ता ॥ ५ ॥

कपट रूपी बन्दर, धूर्त्तता रूपी भयङ्कर व्याघ्र आदि दुःखदाई जानवरों का झुण्ड ऊधम करनेवाला है। वह शोक हृदय में देख कर मैं आप की शरण आया हूँ, हे जगदीश्वर ! आप विश्व के पालनकर्त्ता हैं, मेरी रक्षा कीजिये; रक्षा कीजिये ॥५॥

'पाहि' शब्द में भय की विप्सा है। 'विश्वभर्त्ता' संज्ञा साभिप्राय है; क्योंकि जो सारे जगत का पोषक है वही रक्षा करने में समर्थ हो सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है।

प्रबल अहँकार दुर्घट महीधर महा, मोह-गिरि-गुहा निबिड़ान्धकारं । चित्त-बेताल मनुजाद-मन प्रेतगन,-रोग भोगौघ-बृस्चिक बिकारं ॥ ६ ॥

उद्धत अहङ्कार रूपी दुर्गम पहाड़, महामोह रूपी घनी अँधेरी पर्वत की गुफा है। चित्त रूपी वेताल (वह मृतक शरीर जिसमें प्रेत का प्रवेश होने से जीवित देख पड़े) मन रूपी राक्षस, रोग रूपी प्रेतगण और विलास-समूह रूपी बिच्छू का दोष (ज़हर) है ॥६॥

बिषयसुख लालसा दंस-मसकादि खल, झिल्लि रूपादि सब सर्प स्वामी । तत्र आक्षिप्त तव बिषम-माया नाथ, अन्ध मैं मन्द ब्यालाद-गामी ॥ ७ ॥

विषयों के आनन्द की अत्यन्त अभिलाषा मच्छड़ आदि विषैली मक्खियों का काटना है, खलता रूपी भृङ्गारी और रूप, रस, गन्धादि सर्पराज (अजगर) हैं। हे गरुड़ पर चढ़ कर

चलनेवाले स्वामिन् ! आप की भीषण माया ने मुझे वहाँ (ऐसे भयङ्कर वन में) ढकेल रक्खा है और मैं मूर्ख अन्धा हूँ (यहाँ से निकल कर भागने में अशक्य हूँ) ॥७॥

घोर अवगाह भव-आपगा पाप-जल,-पूर दुष्प्रेक्ष्य दुस्तर अपारा । मकर षड़वर्ग गो-नक्र चक्राकुला, कूल सुभ-असुभ दुख-तीव्र-धारा ॥ ८ ॥

विकराल अथाह संसाररूपी नदी पाप रूपी जल से भरी दुर्दर्शन, दुर्गम और अपार है। षड्वर्ग (काम, क्रोधादि) रूपी मगर, इन्द्रिय रूपी घड़ियाल, विषय रूपी कछुओं से व्याप्त, शुभाशुभ कर्म रूपी किनारे और दुःख रूपी प्रचण्ड धारा है ॥८॥

सकल सङ्कट पोच सोच बस सर्बदा, दासतुलसी बिषम गहन ग्रस्तं । त्राहि रघुबंस-भूषन कृपाकर कठिन, काल बिकराल कलि त्रास त्रस्तं ॥ ९ ॥

समस्त नीच संयोग से तुलसीदास इस भीषण वन में जकड़ा हुआ सदा सोच के अधीन हो रहा है। हे कृपा की खानि रघुकुल-भूषण ! मैं भयङ्कर कलिकाल के भय से कठिन त्रस्त हूँ; मेरी रक्षा कीजिये ॥९॥

(६०)

नौमि नारायनं नरं करुनायनं, ध्यान पारायनं ज्ञान मूलं । अखिल संसार उपकार कारन सदय,-हृदय तप निरत प्रनतानुकूलं ॥ १ ॥

ज्ञान के मूल, ध्यान में तत्पर और दया के स्थान नर-नारायण (बदरीश भगवान) को मैं नमस्कार करता हूँ। समस्त संसार की भलाई के लिये दयामय हृदय भक्तों पर कृपा करनेवाले परमात्मा तपस्या में लगे हुए हैं ॥१॥

'न' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है।

स्याम नव तामरस-दाम-द्युति बपुष छबि, कोटि मदनार्क अगनित प्रकासं । तरुन रमनीय राजीव लोचन ललित, बदन राकेस कर निकर हासं ॥ २ ॥

नवीन श्यामकमल की माला के समान कान्ति युक्त शरीर की शोभा करोड़ों कामदेव के बराबर है और असंख्यों सूर्य्य के तुल्य प्रकाशमान हैं। तुरन्त के खिले हुए मनोहर लाल

कमल के समान सुन्दर नेत्र और मुख रूपी पूर्ण चन्द्रमा में हँसी रूपी समूह किरणें विराजमान हैं ॥ २ ॥

एक शरीर उपमेय के लिये अनेक उपमान पृथक् पृथक् धर्मों के लिये वर्णन करना 'भिन्न-धर्मा मालोपमा अलंकार' है। श्यामकमल की आभा, कामदेव की शोभा और सूर्य्य का प्रकाश धर्म के लिये कथन है। दूसरे चरण में वाचक लुप्तोपमा और परम्परित रूपक की संसृष्टि है।

सकल सौन्दर्य-निधि विपुल गुन धाम विधि,-वेद बुध सम्भु सेवित अमानं। अरुन पद-कञ्ज मकरन्द मन्दाकिनी, मधुप मुनिबृन्द कुर्वन्ति पानं ॥ ३ ॥

सारी सुन्दरता के भण्डार, विशाल गुणों के मन्दिर, ब्रह्मा, वेद, विद्वान और शिवजी से सेवनीय तथा निरभिमान हैं। लालकमल रूपी चरणों के प्रेम रूपी मकरन्द गङ्गाजल को मुनि-वृन्द रूपी मधुकर पान करते हैं ॥३॥

महानों की उपलक्षणता का उदात्त, परम्परितरूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सक्र प्रेरित घोर मार मद भङ्ग कृत, क्रोधगत बोधरत ब्रह्मचारी। मारकंडेय मुनिबर्ज हित कौतुकी, बिनहिं कल्पान्त प्रभु प्रलय-कारी ॥ ४ ॥

इन्द्र का भेजा हुआ कामदेव, उसके भयङ्कर गर्व को नाश करनेवाले, क्रोध रहित, ज्ञान में तत्पर और ब्रह्मचारी हैं। मार्कण्डेय मुनिवर्य्य के लिये प्रभु खेल ही में बिना कल्पान्त के प्रलय करनेवाले हैं ॥४॥

मार्कण्डेय मुनि का वृत्तान्त विनयकोश में 'मार्कण्डेय' शब्द देखो।

पुन्य बन सैल सरि बदरिकास्रम सदासीन पद्मासनं एकरूपं। सिद्ध जोगीन्द्र बृन्दारकानन्द-प्रद,-भद्र-दायक दरस अति अनूपं ॥५॥

पवित्र वन, पर्वत और नदियों से घिरे बदरिकाश्रम में एक रूप सदा पद्मासन से विराजमान सिद्ध, योगेश्वर और देवताओं को आनन्द देनेवाले जिनका दर्शन अत्यन्त अपूर्व कल्याण-दायक है ॥५॥

मान मन भङ्ग चित भङ्ग मद क्रोध लोभादि पर्वत दुर्ग भुवन-भर्त्ता। द्वेष मत्सर राग प्रबल प्रत्यूह प्रति, भूरि निर्दय क्रूर-कर्म कर्त्ता ॥ ६ ॥

लोकों के स्वामी का मार्ग दुर्गम है; मद, क्रोध और लोभ रूपी पर्वत पथिकों के मन का अभिमान चूर चूर करता है जिससे चित्त का हर्ष टूट जाता है। ईर्ष्या, डाह और मोह रूपी जवर्दस्त वाधा से (चोर-ठग) जो बड़े ही निर्दय भयङ्कर कर्म करनेवाले हैं (उनसे बच कर धाम में पहुँचना बड़ा कठिन है) ॥६॥

बदरिकाश्रम के मार्ग की भीषणता और हरिशरण जाने के बाधक विकारों का साङ्गोपाङ्ग आरोप 'साङ्गरूपक अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

विकट तर वक्र छुरधार प्रमदा तीव्र, दर्प कन्दर्प बर खड्ग धारा। धीर गम्भीर मन पीर कारक तत्र, को बराका वयं बिगत सारा ॥ ७ ॥

अत्यन्त भयङ्कर टेढ़ी छूरे की तीव्र धार रूपिणी स्त्री है, घमण्ड और कामदेव रूपी खड्ग अच्छी धारवाले हैं। वहाँ धीरवान सहनशीलों के मन में वे (चोर-ठग) पीड़ा पहुँचाते हैं तव हम सरीखे तत्व विहीन तुच्छ जीव कौन सी चीज हैं? ॥७॥

जब वहाँ धीर गम्भीर पुरुषों के मन में दुःख होता है तब मैं निर्बल ग़रीब कौन सी चीज़ हूँ 'काव्यार्थापत्ति अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

परम दुर्घट पन्थ खल असङ्गत साथ, नाथ नहिं हाथ बर बिरति यष्टी। दर्सनारत दास त्रसित माया पास, त्राहि हरि त्राहि हरि जानि कष्टी ॥ ८ ॥

हे नाथ! मार्ग अत्यन्त दुर्गम है, अयोग्य (बेमेल) दुष्टों का सङ्ग और हाथ में उत्तम वैराग्य रूपी लाठी नहीं है। यह दास दर्शन के लिये दुखी है, इसके माया-जाल में पड़ कर भयभीत कष्टित जान कर, हे भगवन्! मेरी रक्षा कीजिये; हे वैकुण्ठनाथ! मुझे बचाइये ॥८॥

'त्राहि और त्राहि' शब्द में भय की विप्सा और पुनरुक्तिप्रकाश का सन्देहसङ्कर है। वैराग्य और लाठी में पूर्ण रूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

दासतुलसी दीन धर्म सम्बल हीन, स्रमित अति खेद मति मोह ग्रासी। देहि अवलम्ब न बिलम्ब अम्भोज कर, चक्रधर तेज बल सर्म रासी ॥ ९ ॥

दीन तुलसीदास धर्म रूप राहखर्च से रहित, थका हुआ अत्यन्त खेद से बुद्धि अज्ञान में जकड़ी हुई है। हाथ में कमल और चक्र धारण किये, तेज, बल और कल्याण के राशि भगवान् मुझे बिना विलम्ब के तुरन्त सहारा दीजिये ॥९॥

(६१)

सकल सुखकन्द आनन्द बन पुन्य कृत, बिन्दुमाधव द्वन्द बिपति हारी । यस्याङ्घ्रि पाथोज अज सम्भु सनकादि, सेष मुनिबृन्द अलि निलयकारी ॥ १ ॥

बिन्दुमाधव भगवान सम्पूर्ण सुखों के मूल, आनन्द के राशि, पवित्र करनेवाले, कलह और विपत्ति के हरनेवाले हैं। जिनके चरण-कमलों में ब्रह्मा, शिव, सनकादि, शेष और मुनि-समूह रूपी भ्रमर स्थान बनानेवाले हैं ॥१॥

भगवान के चरणों में कमल का आरोप करके ब्रह्मा आदिकों में भ्रमर का आरोपण इसलिये किया कि वह सदा कमल में वास करता है 'समअभेदरूपक अलंकार' परम्परित के सहित है।

अमल मरकत स्याम काम सतकोटि छबि, पीतपट तड़ित इव जलद-नीलं । अरुन सतपत्र लोचन बिलोकनि चारु, प्रनतजन सुखद करुनाब्धि सीलं ॥ २ ॥

निर्मल नीलमणि के समान श्याम शरीर असंख्यों कामदेव की शोभा से युक्त और पीताम्बर श्याम मेघ में बिजली के समान शोभायमान है। लालकमल के सदृश नेत्र, सुन्दर चितवन, दीनजनों के सुखदाता, दया और शील के सागर हैं ॥२॥

उपमा, रूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

काल गजराज मृगराज दनुजेस बन, दहन पावक मोह-निसि दिनेसं । चारि भुज चक्र-कौमोदकी-जलज-दर, सरसिजोपरि जथा राजहंसं ॥ ३ ॥

काल रूपी गजेन्द्र के लिये सिंह रूप, राक्षसराज रूपी वन को जलाने में अग्नि रूप और अज्ञान रूपी रात्रि नसाने में सूर्य्य रूप हैं। चार भुजायें हैं, उनमें चक्र, कौमोदकी नाम की गदा, कमल और शङ्ख ऐसा शोभित है जैसे कमल के ऊपर राजहंस विराजमान हो ॥३॥

पूर्वार्द्ध में परम्परित रूपक अलंकार है और उत्तरार्द्ध में कर-कमलों में शङ्ख शोभित है, इस सामान्य बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे कमल पर राजहंस सोहता हो 'उदाहरण अलंकार' है।

मुकुट कुंडल तिलक अलक अलि-व्रात इव, भृकुटि द्विज अधर बर चारु नासा । रुचिर सुकपोल दर ग्रीव सुख सींव हरि, इन्दुकर कुन्दमिव मधुर हासा ॥ ४ ॥

सिर पर मुकुट, कान में कुण्डल और माथे पर तिलक शोभित है, केश भँवरों के झुण्ड के समान, भौंह, दाँत, ओंठ और नासिका श्रेष्ठ सुन्दर हैं। सुन्दर शोभन गाल, शङ्ख के समान गला, चन्द्रमा की किरण और कुन्द के फूल की तरह मधुर हँसी है, भगवान सुख के हद हैं ॥४॥

केश-उपमेय, अलिवृन्द-उपमान, इव-वाचक है; किन्तु श्यामता धर्म लुप्त रहने से 'लुप्तोपमा अलंकार' है। इन्दुकरकुन्द-उपमान, हास-उपमेय, इव-वाचक और मधुरता-साधारण धर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है।

उरसि वनमाल सुविसाल नव मञ्जरी, भ्राज श्रीवत्सलाञ्छनमुदारं। परम ब्रह्मन्य अतिधन्य गतमन्यु अज, अमित बल बिपुल महिमा अपारं ॥५॥

हृदय में सुन्दर नवीन मञ्जरियों की विशाल वनमाला और ब्राह्मण के चरण का श्रेष्ठ चिह्न शोभायमान है। अतिशय ब्राह्मण सेवी, अत्यन्त धन्य, क्रोध रहित, अजन्मे, अनन्त बली, बहुत बड़ी और अपार महिमावाले हैं ॥५॥

हार केयूर कर कनक कङ्कन रतन,-जटित मनि-मेखला कटि-प्रदेसं। जुगल पद नूपुरा मुखर कल हंसवत, सुभग सर्वाङ्ग सौन्दर्य वेसं ॥ ६ ॥

गले में मोतियों की माला, बाहुओं पर बिजायठ, हाथों में रतन-जड़ित सुवर्ण के कड़े और कमर में मणियों की करधनी है। दोनों चरणों में सुन्दर हंस के समान घुँघुरुओं के शब्द हो रहे हैं, मनोहर सर्वाङ्ग सुन्दरता मय वेश है ॥६॥

सकल सौभाग्य सञ्जुक्त त्रैलोक्य श्री, दच्छ दिसि रुचिर वारीस कन्या। बसत बिबुधापगा निकट तट सदन बर, नयन निरखन्ति नर तेति धन्या ॥७॥

सब मङ्गलों से युक्त, तीनों लोकों की शोभा समुद्रतनया लक्ष्मीजी सुन्दर दाहिनी ओर विराजमान हैं। गङ्गाजी के समीप किनारे पर उत्तम मन्दिर में आप निवास करते हैं, जो मनुष्य आँख से देखते (दर्शन करते) वे धन्य हैं ॥७॥

अखिल मङ्गल भवन निबिड़ संसय समन, दमन बृजिनाटवी कष्ट हर्त्ता। बिस्वधृत बिस्वहित अजित गोतीत सिव, बिस्व पालन-हरन बिस्व-कर्त्ता ॥८॥

सम्पूर्ण मङ्गलों के स्थान, अनेक सन्देहों के नाशक, पाप रूपी वन के उजाड़नेवाले और क्लेशहारी हैं। जगत के धारण करनेवाले, संसार के उपकारी, अजेय, इन्द्रियों से परे, कल्याण रूप, पृथ्वी के पालन, संहार तथा विश्व के उपजानेवाले हैं ॥८॥

'विश्व' शब्द भाव की रुचिरता के लिये कई बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

ज्ञान विज्ञान बैराग्य ऐस्वर्ज निधि, सिद्धि अनिमादि दे भूरि दानं। ग्रसत भव-व्याल अति त्रास तुलसीदास, त्राहि श्रीराम उरगारिजानं ॥९॥

आप ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य्य के भण्डार, अणिमा आदि बहुत सी सिद्धियों के दान देनेवाले हैं। हे गरुड़ पर सवार होनेवाले श्रीरामचन्द्रजी! तुलसीदास को संसार रूपी सर्प ग्रसता है, उसके भय से अत्यन्त विकल है, मेरी रक्षा कीजिये ॥९॥

'उरगारियान' संज्ञा साभिप्राय है; क्योंकि गरुड़ का स्वामी ही भव व्याल से रक्षा करने में समर्थ हो सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है।

(६२)

राग-आसावरी।

इहइ परम फल परम बड़ाई। नखसिख रुचिर बिन्दुमाधव छबि, निरखहिँ नयन अघाई ॥१॥

यही परम फल और अत्युत्तम बड़ाई है कि नख से शिखा पर्य्यन्त सुन्दर विन्दुमाधव भगवान की शोभा देख कर आँखें तृप्त हों ॥१॥

बिसद किसोर पीन सुन्दर बपु, स्याम सुरुचि अधिकाई। नीलकञ्ज बारिद तमाल मनि, इन्ह तनु तेँ दुति पाई ॥२॥

मनोहर किशोर अवस्था, सुन्दर पुष्ट शरीर की श्यामता की सुहावनी छबि बहुत ही बढ़ कर है। श्यामकमल, मेघ, तमालवृक्ष और मरकत-मणि इन्हीं की शरीर से कान्ति पाई है ॥२॥

श्यामकमल, श्याममेघ, तमाल और नीलमणि प्रसिद्ध उपमान को पलट कर उपमेय बनाना 'प्रथम प्रतीप अलंकार' है।

मृदुल चरन सुभ चिह्न पदज नख, अति अदभुत उपमाई। अरुन नील पाथोज प्रसव जनु, मनिजुत दल समुदाई ॥३॥

कोमल चरणों में सुन्दर चिह्न (वज्र, अङ्कुश, कमल, ध्वजा) और उँगलियों में नखों की अत्यन्त विलक्षण उपमा अनुभव हो रही है। ऐसा मालूम होता है मानों लाल और श्याम कमल ने मणियों से मिले (बने) हुए पत्तों के समूह उत्पन्न किये हों ॥३॥

भगवान के चरणों में नखों की छवि उत्प्रेक्षा का विषय है। लाल कमल और चरणतल, श्यामकमल और पद का पृष्ठभाग, नख और मणिदल परस्पर उपमान उपमेय हैं। कमल से मणि का उत्पन्न होना असिद्ध आधार है। इस अहेतु में हेतु ठहराना 'असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

जातरूप मनि जटित मनोहर, नूपुर जन सुखदाई। जनु हर उर हरि बिबिध रूप धरि, रहे बर भवन बनाई ॥४॥

सुवर्ण के घुघुरू सुन्दर मणियों से जड़े हुए सेवकों को सुख देनेवाले हैं। वे ऐसे जान पड़ते हैं मानों शिवजी के हृदय में उत्तम गृह बना कर भगवान विविध रूप धारण कर के निवास किये हों ॥४॥

मणियों से जड़े श्वेत रङ्ग के नूपुर और शिवतनु, नूपुरों के भीतर श्याम गोलक और हरि भगवान परस्पर उपमान उपमेय हैं। शिवजी के हृदय में भगवान का निवास सिद्ध आधार है; परन्तु नूपुरों और गोलकों को अनेक शिव-हरि की कल्पना, इस अहेतु को हेतु ठहराना 'सिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

कटितट रटति चारु किङ्किनि रव, अनुपम बरनि न जाई। हेम जलज कल कलिन मध्य जनु, मधुकर मुखर सुहाई ॥५॥

कमर में सुन्दर करधनी के बोलने का शब्द उपमा रहित है, वह वर्णन नहीं किया जा सकता। ऐसा मालूम होता है मानों सुवर्ण (पीले रङ्ग) के कमल की सुन्दर कलियों में भँवरों का सुहावना गुञ्जार हो ॥५॥

करधनी की रसीली आवाज़ उत्प्रेक्षा का विषय है। कमल की कलियों में भ्रमर प्रसन्नता से गूँजते ही हैं। यह 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। पहले कहा कि वह बोल अनुपम है, फिर उसका उपमान कथन करना 'निषेधाक्षेप अलंकार' है। दोनों की संसृष्टि है।

उर बिसाल भृगु चरन चारु अति, सूचत कोमलताई। कङ्कन चारु बिबिध भूषन बिधि, रचि निज कर मन लाई ॥६॥

विशाल हृदय में भृगुमुनि के चरण का चिह्न अत्यन्त सुन्दर कोमलता सूचित करता है। मनोहर कड़ा और तरह तरह के आभूषण ऐसे सुहावने मालूम होते हैं मानों ब्रह्मा ने मन लगाकर उन्हें अपने हाथ से बनाया हो ॥६॥

विविध आभूषणों की रमणीयता उत्प्रेक्षा का विषय है। बिना वाचक पद के उत्प्रेक्षा की गई है। आभूषण कारीगरों ने बनाया है, ब्रह्मा के हाथ से बनाने की कल्पना करना असिद्ध आधार है। इस अहेतु को हेतु ठहराना 'गम्य असिद्ध विषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

गजमनि माल बीच भ्राजत कहि,-जाति न पदिक निकाई। जनु उडुगन-मंडल बारिद पर, नवग्रह रची अथाई ॥७॥

गजमुक्ता की माला के बीच में चौकी शोभित है, उसकी सुन्दरता कही नहीं जाती है। ऐसा मालूम होता है मानों श्याममेघ के ऊपर नवग्रहों ने तारागणों का सभा-मण्डल बनाया हो ॥७॥

भगवान के वक्षस्थल पर चौकी युक्त गजमोती की माला उत्प्रेक्षा का विषय है। श्याम-तनु और मेघ, गजमुक्ता और तारागण, चौकी और नवग्रह परस्पर उपमेय उपमान हैं। उडु-गण आकाश में विचरते ही हैं; परन्तु बादलों पर उनकी मजलिस होना कवि की कल्पनामात्र है, क्योंकि वे बादलों से अधिक ऊँचाई पर स्थित हैं। यह 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

भुजगभोग भुजदंड कञ्ज दर, चक्र गदा बनिआई। सोभा सींव ग्रीव चिबुकाधर, बदन अमित छबि छाई ॥८॥

साँप के शरीर के समान भुजदण्ड हैं, हाथ में कमल, शङ्ख, चक्र और गदा बन आई है। गला, ठुड्डी और ओंठ शोभा के हद हैं, मुख-मण्डल में अपार छवि छाई हुई है ॥८॥

भुजदण्ड-उपमेय और सर्पतनु उपमान है; किन्तु समान-वाचक और उतार चढ़ाव-साधारण धर्म लुप्त रहने से 'वाचकधर्म लुप्तोपमा अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

कुलिस कुन्द-कुड़मल दामिनि दुति, दसनन्हि देखि लजाई। नासा नयन कपोल ललित स्रुति,-कुंडल भ्रू मोहि भाई ॥९॥

दाँतों को देख कर हीरा, कुन्द की कली और बिजली की कान्ति लज्जित हो जाती है। नासिका, नेत्र और गाल मनोहर हैं, कानों के कुण्डल तथा भौंहें मुझे सुहाती हैं ॥९॥

दाँतों की छवि के सामने हीरा, कुन्दकली, बिजली की कान्ति अपने को तुच्छ मान कर लज्जित होती हैं अर्थात् उसकी शोभा व्यर्थ हो जाना 'पञ्चम प्रतीप अलंकार' है। व्यङ्गार्थ में भिन्नधर्मा मालोपमा है; क्योंकि हीरा की उपमा दृढ़ता के लिये, कुन्दकली की उपमा आकार और उज्ज्वलता के अर्थ, बिजली की उपमा चमक के हेतु है।

कुञ्चित कच सिर मुकुट भाल पर, तिलक कहउँ समुझाई। अल्प तड़ित जुग रेख इन्दु महँ, रहि तजि चञ्चलताई ॥ १० ॥

सिर पर घुँघरवाले बाल और मुकुट शोभित हैं, माथे पर तिलक की छवि समझा कर कहता हूँ। वे ऐसे मालूम होते हैं मानों चन्द्रमा में बिजली की दो पतली रेखाएँ चञ्चलता छोड़ कर विराज रही हों ॥१०॥

मस्तक पर तिलक की छवि उत्प्रेक्षा का विषय है। चन्द्रमा में बिजली का स्थिर होना असिद्ध आधार है। इस अहेतु को हेतु ठहराना 'असिद्धविषया हेतूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

निर्मल पीत-दुकूल अनूपम, उपमा हिय न समाई। बहु मनि जुत गिरि नील सिखर पर, कनक बसन रुचिराई ॥११॥

निर्मल पीताम्बर अनुपमेय है, उसके लिये कोई उपमा हृदय में नहीं आती (जँचती) है। ऐसा मालूम होता है मानों नीलपर्वत के शृङ्ग पर बहुत सी मणि जड़ी हुई सुवर्ण के वस्त्र की सुन्दरता दिखाई देती हो ॥११॥

भगवान के श्याम शरीर पर मणि जड़ित पीताम्बर का शोभित होना उत्प्रेक्षा का विषय है। नीलगिरि के शिखर पर ऐसे वस्त्र की शोभा होती ही है। यह 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। निषेधाक्षेप की संसृष्टि है। यह गम्योत्प्रेक्षा है; क्योंकि इसमें वाचक पद नहीं है।

दच्छभाग अनुराग सहित इन्दिरा अधिक ललिताई। हेमलता जनु तरु तमाल ढिग, नील निचोल ओढ़ाई ॥१२॥

दाहिनी ओर प्रीति सहित लक्ष्मीजी विशेष सुन्दरता फैला रही हैं। वे ऐसी मालूम होती हैं मानों तमालवृक्ष के समीप में सुवर्ण की लता नीले वस्त्र से ढँकी हो ॥१२॥

लक्ष्मीजी के पीत अङ्गों पर नीलाम्बर की शोभा उत्प्रेक्षा का विषय है। पीली लता पर श्याम वस्त्र शोभायमान होता ही है। यह 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

सत सारदा सेष स्रुति मिलि के, सोभा कहि न सिराई। तुलसिदास मतिमन्द द्वन्द रत, कहइ कवनि बिधि गाई ॥१३॥

सैकड़ों सरस्वती, शेष और वेद मिल कर कहें तो भी शोभा कह कर समाप्त नहीं कर सकते, उसको नीचबुद्धि कलह में तत्पर तुलसीदास किस तरह गा कर कह सकता है? ॥१३॥

सरस्वती शेष आदि को कथन के अयोग्य ठहराकर इस सम्बन्ध से हरि शोभा की अतिशय प्रशंसा करना 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार' है। वक्रोक्ति और काव्यार्थापत्ति अलंकार की मिश्रित ध्वनि है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(६३)

राग-जयतिश्री ।

मन इतनोई है या तनु को परम फल। नखसिख सुभग बिन्दुमाधव छबि, तजि सुभाउ अवलोकु एक पल ॥१॥

हे मन! इस शरीर का परमोत्तम फल इतनाही है कि नख से शिखा पर्य्यन्त विन्दुमाधव भगवान की सुन्दर छवि एक क्षण अपना स्वभाव (चञ्चलता) त्याग कर निरीक्षण कर ॥१॥

तरुन अरुन अम्भोज चरन मृदु, नख दुति हृदय तिमिर-हारी। कुलिस केतु जव जलज रेख बर, अंकुस मन गज बस-कारी ॥२॥

नवीन लालकमल के समान कोमल चरण हैं, नखों की कान्ति हृदय के अन्धकार को हरनेवाली है। वज्र, पताका, यव और कमल के उत्तम चिह्न तथा अङ्कुश मन रूपी हाथी को वश करनेवाला है ॥२॥

वाचक लुप्तोपमा, समअभेदरूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

कनक जटित मनि नूपुर मेखल, कटितट रटति मधुर बानी। त्रिबली उदर गँभीर नाभिसर, जहँ उपजे बिरञ्चि ज्ञानी ॥३॥

सुवर्ण की करधनी उसमें मणियों के जड़े हुए नूपुर कमर में प्रिय शब्द बोल रहे हैं। उदर में तीन रेखाएँ हैं और नाभि रूपी गम्भीर सरोवर है जहाँ ज्ञानी ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे ॥३॥

उर बनमाल पदिक अति सोभित, बिप्र-चरन चित कहँ करषै। स्याम तामरस दाम बरन बपु, पीत बसन सोभा बरषै ॥४॥

हृदय में वनमाला और चौकी अत्यन्त शोभित है तथा ब्राह्मण के चरण का चिह्न (भृगुलात) चित्त को अपनी ओर खींचता है। श्यामकमल की माला के रङ्ग का शरीर है, उस पर पीताम्बर छवि की वर्षा कर रहा है ॥४॥

शोभा जल नहीं है जिसको पीताम्बर बरसाता है, मुख्य अर्थ शोभा फैलाना बाध होकर बरसना कहने में 'रूढ़ि लक्षणा' है; क्योंकि शोभा बगारने ही का अर्थ ग्रहण होगा।

कर कङ्कन केयूर मनोहर, देति मोद मुद्रिक न्यारी। गदा कञ्ज दर चारु चक्र धर, नाग-सुंड सम भुज चारी ॥५॥

हाथ में सुन्दर कड़ा, भुजदण्ड पर बिजायठ और उँगली में अँगूठी विलक्षण आनन्द दे रही है। गदा, कमल, शङ्ख और सुदर्शन चक्र धारण किये चारों भुजाएँ हाथी के सूँड़ के समान उतारवाली) हैं ॥५॥

भुजा-उपमेय, हाथी का सूँड़-उपमान, सम-वाचक है; किन्तु साधारण धर्म लुप्त रहने से 'धर्म- लुप्तोपमा अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

कम्बु ग्रीव छबि सींव चिबुक द्विज, अधर अरुन उन्नत नासा । नव राजीव नयन ससि-आनन, सेवक सुखद बिसद हासा ॥६॥

शङ्ख के समान (रेखा युक्त) कंठ शोभा का हद है, ठोढ़ी, दाँत, लाल ओंठ सुन्दर ऊँची नासिका है । नवीन कमल के तुल्य नेत्र, चन्द्रमा के सदृश मुख और सुहावनी हँसी सेवकों को सुख देनेवाली है ॥६॥

वाचकधर्म लुप्तोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

रुचिर कपोल स्रवन-कुंडल सिर,-मुकुट सुतिलक भाल भ्राजै । ललित भृकुटि सुन्दर चितवनि कच, निरखि मधुप-अवली लाजै ॥ ७ ॥

सुन्दर गाल,कानों में कुण्डल, सिर पर मुकुट, माथे में मनोहर तिलक शोभायमान है । सुहावनी भौंह, सुन्दर चितवन और बालों को देख कर भ्रमरावलियाँ लजा जाती हैं ॥७॥

बालों की छवि के सामने अपनी शोभा व्यर्थ अनुमान कर भ्रमरावली का लज्जित होना 'पञ्चम प्रतीप अलंकार' है ।

रूप सील गुन-खानि दच्छ दिसि, सिन्धु-सुता रत पद सेवा । जाकी कृपा कटाच्छ चहत सिव, बिधि मुनि मनुज दनुज देवा ॥ ८ ॥

दाहिनी ओर रूप, शील और गुणों की खानि सागर की कन्या (लक्ष्मीजी) चरणों की सेवा में तत्पर हैं । जिनकी कृपा-कटाक्ष को शिवजी, ब्रह्मा, मुनि, मनुष्य, दैत्य और देवता चाहते हैं ॥८॥

तुलसिदास भव त्रास मिटइ तब, जब मति एहि सरूप अटकै । नाहिंत दीन मलीन हीन-सुख, कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भटकै ॥९॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि संसार का भय तभी मिट सकता है जब बुद्धि इस रूप में लगी रहे, नहीं तो दुखी, उदास और सुख से खाली होकर करोड़ों जन्म तक (संसार की योनियों में) घूम घूम कर भटकता रहेगा ॥९॥

'भ्रमि' शब्द भाव की रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है। जब ऐसा हो तब ऐसा हो 'सम्भावना अलंकार' है।

(६४)

राग-वसन्त

बन्दउँ रघुपति करुनानिधान। जा तेँ छूटइ भव-भेद-ज्ञान ॥१॥

मैं करुणानिधान रघुनाथजी को प्रणाम करता हूँ जिससे संसार-सम्बन्धी भेदज्ञान (अपने को बड़ा और दूसरों को लघु समझना) छूट जाता है ॥१॥

रघुबंस-कुमुद सुखप्रद निसेस। सेबित पद-पङ्कज अज महेस॥
निजभक्त हृदय पाथोज भृङ्ग। लावन्य बपुष अगनित अनङ्ग॥२॥

रघुकुल रूपी कुमुदवन के चन्द्रमा, जिनके चरण-कमल ब्रह्मा और शिवजी से सेवित हैं। अपने भक्तों के हृदय रूपी कमल में बसनेवाले भ्रमर रूप हैं, असंख्यों कामदेव की छवि जिनके शरीर में है ॥२॥

परस्परित समअभेदरूपक और व्यतिरेक अलंकार की संसृष्टि है।

अति प्रबल मोह-तम मारतंड। अज्ञान गहन पावक प्रचंड॥
अभिमान-सिन्धु कुम्भज उदार। सुर-रञ्जन भञ्जन भूमि भार॥३॥

अत्यन्त प्रबल अज्ञान रूपी अन्धकार के लिये सूर्य्य रूप और मोह रूपी वन के हेतु भीषण दावानल रूप हैं। अभिमान रूपी समुद्र के अर्थ श्रेष्ठ अगस्त्य हैं, देवताओं के प्रसन्न करनेवाले और धरती का बोझ नसानेवाले हैं ॥३॥

यहाँ भी परस्परित समअभेदरूपक है।

रागादि-सर्पगन पन्नगारि। कन्दर्प-नाग मृगपति मुरारि॥
भव-जलधि पोत चरनारबिन्द। जानकीरमन आनन्द कन्द॥४॥

रागद्वेष आदि रूपी सर्प-समूहों के लिये गरुड़ रूप और मुरारि भगवान कामदेव रूपी हाथी के हेतु सिंह हैं। संसार रूपी समुद्र के अर्थ चरण-कमल जहाज रूप हैं, जानकीजी को रमानेवाले और आनन्द के मेघ हैं ॥४॥

परस्परितरूपक और समअभेद है।

हनुमन्त प्रेम बापी मराल। निष्काम कामधुकगो दयाल।
त्रैलोक्य-तिलक गुन-गहन राम। कह तुलसिदास बिस्राम धाम॥५॥

हनूमानजी के प्रेम रूपी बावली के राजहंस, कामना रहित जनों के लिये कामधेनु रूप दया के स्थान हैं। रामचन्द्रजी तीनों लोकों के शिरोभूषण और गुणों में अथाह हैं, तुलसीदासजी कहते हैं कि विश्राम के मन्दिर हैं ॥५॥

हनूमानजी के प्रेम में बावली का आरोप करके रामचन्द्रजी में हंस का आरोपण करना, कामधेनु में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है ।

(६५)

राग-भैरव

राम राम रमु राम राम रटु, राम राम जपु जीहा ।
राम नाम नव नेह मेह को, मन हठि होइ पपीहा ॥१॥

अरी जिह्वा ! तू राम राम रमे, राम राम रटे, राम राम जपे । राम नाम के नवीन स्नेह रूपी मेघ का, हे मन ! तू हठ करके चातक हो ॥१॥

'राम' शब्द में आदर की विप्सा है और अनुप्रास भी है।

सब साधन फल कूप सरित सर, सागर सलिल निरासा ।
राम नाम रति स्वाति सुधा सुभ, सीकर प्रेम पियासा ॥२॥

अन्य सब साधनों के फल कुआँ, नदी, तालाव और समुद्र के जल हैं, उनकी आशा त्याग कर राम-नाम की प्रीति स्वाती का श्रेष्ठ जल है, उसके लघु विन्दुओं का प्रेमी होकर प्यासा बने ॥२॥

सब साधनों पर तालाब, नदी आदि के जल का आरोप, रामनाम के प्रेम में स्वाती के जल का आरोप और मन पर पपीहा का आरोपण इसलिए किया कि चातक दूसरे जल को भूल कर भी ग्रहण नहीं करता, चाहे प्यास से उसको कितना हा कष्ट हो; किन्तु जब पान करेगा तो एक स्वाती के जल को 'परम्परितरूपक अलंकार' है ।

गरजि तरजि पाषान बरषि पबि, प्रीति परखि जिय जानै ।
अधिक अधिक अनुराग उमग उर, पन परमिति पहिचानै ॥३॥

गर्जन करके डाँट डपट कर और ओले वज्र की वर्षा करके मेघ चातक के प्रेम की परीक्षा करता है, जब जी में जान लेता है कि इसका प्रेम और उत्साह उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाता है, तब प्रेम-पण पहचान कर (प्रसन्न होता है और जल से तृप्त कर देता है) ॥३॥

राम नाम गति राम नाम मति, राम नाम अनुरागी ।
होइगे हैं होइहैं जे आगे, ते त्रिभुवन बड़ भागी ॥४॥

रामनाम का प्रयत्न, रामनाम में बुद्धि और रामनाम के प्रेमी जो हो गये हैं, वर्तमान में हैं और आगे होंगे वे तीनों लोकों में बड़े भाग्यवान समझे जाते हैं ॥४॥

एकअङ्ग-मग अगम गवन करि, बिलम न छिन छिन छाहैं।
तुलसी हित अपनो अपनी दिसि, निरुपधि नेम निबाहैं ॥५॥

एकाङ्गी प्रीति के दुर्गम मार्ग में चल कर देरी न कर और न क्षण क्षण छाँह (संसारी-सुख) की राह देख। तुलसीदासजी कहते हैं कि अपना कल्याण तो अपनी ओर से निःस्वार्थ-भाव से यही रीति निबाहने में है ॥५॥

व्यङ्गार्थ से उदाहरण की ध्वनि है कि जैसे धूप से घबराया पथिक विश्राम के लिये बार बार छाँह में आश्रय लेता है, वैसे तू तृष्णा के ताप से उतप्त होकर सम्पत्ति-सुख रूपी छाया का सहारा न लेवे। अपार कष्ट झेलते हुए भी राम नाम में अनुरक्त हो।

(६६)

राम जपु राम जपु राम जपु बावरे। घोर भव नीरनिधि नाम निज नाव रे ॥१॥

अरे दीवाने! तू राम जप, राम जप, राम जप। संसार रूपी भयङ्कर समुद्र से पार करनेवाला नाम ही सनातन नौका रूप है ॥१॥

बार बार राम जपु कहने में आग्रह की विप्सा है। संसार पर भीषण समुद्र का आरोप और रामनाम में सनातन नौका का आरोपण करने में पूर्णरूप से एक रूपता 'अधिकअभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

एकहि साधन सब रिधि सिधि साधि रे। ग्रसे कलि-रोग जोग-सञ्जम-समाधि रे ॥२॥

एक ही (राम नाम के) साधन से सब ऋद्धि सिद्धियों को साध ले, अन्यथा योग, संयम और समाधि (समस्त शुभ साधनों) को कलि रूपी रोग ने ग्रस लिया है ॥२॥

जग नभ-बाटिका रही है फलि फूलि रे। धुआँ कैसो धव-रहर देखि तू न भूलि रे ॥३॥

संसार रूपी आकाश की फुलवाड़ी फूल फल रही है। तू इस धुएँ की मीनार को देख कर भूल न जाना ॥३॥

नभ-वाटिका और धुएँ का धौरहर दोनों मिथ्या सार हीन हैं, उसी तरह संसारी सुख झूठा सुख है। यह वाच्यार्थ व्यङ्गार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

भलो जो है पोच जो है दाहिनो जो बाम रे। राम नामही सौं अन्त सबही को काम रे ॥४॥

जो भले हैं और जो बुरे हैं; जितने सीधे टेढ़े जीव हैं, अन्त में सभी का काम रामचन्द्रजी के नाम ही से है ॥४॥

'जो है' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश है।

राम नाम छाड़ि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगइ कूर कौर रे ॥५॥

राम नाम का भरोसा छोड़ कर जो दूसरे का भरोसा करता है, तुलसी के विचार में वह कुमार्गी परसा हुआ भोजन त्याग कर टुकड़ा माँगता है ॥५॥

दो असम वाक्यों में समता भाव सूचक 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है।

(६७)

राम नाम जपु जीव सदा सानुराग रे। कलि न बिराग जोग जाग तप त्याग रे ॥१॥

अरे जीव! तू सदा प्रीति-पूर्वक राम नाम जप। कलियुग में वैराग्य, योग, यज्ञ, तपस्या और त्याग नहीं है ॥१॥

विरागादि के धर्म का निषेध इसलिये किया कि उसका धर्म राम नाम में स्थापन करना अभीष्ट है। यह 'पर्यस्तापह्नुति अलंकार' है।

राम सुमिरन सब बिधिही को राज रे। राम को बिसारिबो निषेध सिरताज रे॥ राम नाम महामनि फनि-जग-जाल रे। मनि लिये फनि जिअइ ब्याकुल बिहाल रे ॥२॥

राम नाम के स्मरण से सभी तरह की शोभा है और रामचन्द्रजी को भूलना वर्जन का शिरोभूषण है। राम नाम महामणि रूप है और जगत का प्रपञ्च सर्प रूप है, मणि ले लेने पर साँप व्याकुल होकर बुरी दशा से जीता है ॥२॥

पूर्वार्द्ध में काव्यार्थापत्ति की ध्वनि है। राम नाम में सर्प-मणि का आरोप और जगजाल में मणिधर साँप का आरोपण इसलिये किया कि मणि निकाल लेने से साँप आप ही आप मृतक हो जाता है 'परम्परित सम अभेद रूपक अलंकार' है।

राम नाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान बेद पंडित पुरारि रे॥ राम नाम प्रेम परमारथ को सार रे। राम नाम तुलसी को जीवन अधार रे ॥३॥

राम-नाम रूपी कल्पवृक्ष चारों फल देता है, वेद, पुराण, विद्वान और शिवजी ऐसा कहते हैं। राम नाम प्रेम तथा परमार्थ का सार (तत्व) है और राम नाम तुलसी का जीवनाधार है ॥३॥

रामनाम उपमेय और कल्पतरु उपमान में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है। वेद, पुराण, पण्डित और पुरारि के कथन का प्रमाण कथन 'शब्दप्रमाण अलंकार' है दोनों की संसृष्टि है।

(६८)

राम राम राम जीव जौं लौं तू न जपिहै। तौलौं जहँ जइहै तहँ तिहूँ ताप तापि है ॥१॥

अरे जीव! तू जब तक राम, राम, राम, न जपेगा तब तक जहाँ जायगा वहाँ तीनों तापों से जलता रहेगा ॥१॥

यहाँ 'राम' शब्द में अनुरोध की विप्सा है।

सुरसरि तीर बिनु नीर दुख पाइहै। सुरतरु तरे तोहि दारिद सताइहै॥ जागत बागत सपने न सुख सोइहै। जनमि जनमि जुग जुग जग रोइहै ॥२॥

गङ्गाजी के किनारे बिना जल के दुःख पावेगा, और कल्पवृक्ष के नीचे दरिद्रता सतावेगी। जागते फिरते हुए सपने में सुख से न सोवेगा, संसार में बार बार जन्म लेकर युग युग रोवेगा ॥२॥

गङ्गाजी के तट पानी बिना दुःख पाना, कल्पतरु के नीचे दरिद्र से सताया जाना, विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है। 'जनमि जनमि और जुग जुग' दोनों शब्द भाव की रुचिरता के लिये दो दो बार आये हैं। यह 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

छूटबे के जतन बिसेषि बाँधो जायगो। होइहै विष भोजन जौं सुधा सानि खायगो॥ तुलसी तिलोक तिहूँ काल तो से दीन को। राम-नामही की गति जैसे जल मीन को ॥३॥

छूटने का यत्न करने पर अधिक बाँधा जायगा और यदि अमृत मिला कर भोजन करेगा तो वह विष हो जायगा। हे तुलसी! तीनों लोक और तीनों काल में तेरे समान दीन कौन है? तुझे रामचन्द्रजी के नाम ही का सहारा है, जैसे मछली को (जीवन धारण करने के लिये एक मात्र आधार) जल है ॥३॥

पूर्वार्द्ध में विरोधाभास है और उत्तरार्द्ध में कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ प्रकट होना कि तेरे बराबर कोई गरीब नहीं 'वक्रोक्ति अलंकार' है। तुझ को राम नाम की गति है, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे पानी मछली के लिये एक-मात्र अवलम्ब है। यह 'उदाहरण अलंकार' है। अनुप्रास भी है। यहाँ चारों अलंकारों की संसृष्टि है।

(६९)

सुमिरु सनेह सौं तू नाम राम-राय को। सम्बल निसम्बली को सखा असहाय को ॥१॥

तू राजा रामचन्द्रजी के नाम को स्नेह से स्मरण कर जो बिना राहखर्चवाले को मार्ग-व्यय रूप और असहायों का सहायक मित्र है ॥१॥

भाग है अभागेहू को गुन गुनहीन को। गाहक गरीब को दयाल दानि दीन को॥ कुल अकुलीन को सुनेउ है बेद साखि है। पाँगुर को हाथ पाँय आँधरे को आँखि है ॥२॥

भाग्यहीन का भाग्य है और निर्गुणी के लिये गुण रूप है, गरीबों को चाहनेवाला और दीनों के लिये दयालु दानी है। वेद शाखी है सुना है कि कुल हीनों के हेतु सुन्दर कुल है, पंगुल का हाथ पाँव है और अन्धे की आँख है ॥२॥

द्वितीय निदर्शना, रूपक, शब्दप्रमाण और अनुप्रास की संसृष्टि है।

माय बाप भूखे को अधार निराधार को। सेतु भव-सागर को हेतु सुख-सार को॥ पतित पावन राम नाम सौं न दूसरो। सुमिरि सुभूमि भयउ तुलसी सो ऊसरो ॥३॥

भूखे को माता-पिता है और आधार रहित के लिये सहारा है, संसार-समुद्र के हेतु पुल है और सुख का सार (तत्व) है। राम नाम के समान पतितों को पवित्र करनेवाला दूसरा नहीं है जिसको स्मरण करके तुलसी के समान ऊसर (निरुपजाऊ भूमि) सुन्दर धरती (उप-जाऊ भूमि खेत) हो गया ! ॥३॥

द्वितीय निदर्शना, रूपक, प्रथम उल्लास और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(७०)

भलो भली भाँति है जौं मेरे कहे लागि है। मन राम-नाम सौं सुभाय अनुरागिहै ॥१॥

हे मन ! यदि मेरे कहने में लग कर राम नाम से प्रीति करेगा तो तेरी भली भांति भलाई है ॥१॥

राम नाम को प्रभाउ जान जूड़ी-आगि है । सहित सहाय कलिकाल भीरु भागि है ॥ राग राम नाम सौं बिराग जोग जागि है । बाम बिधि भालहूँ न कर्म-दाग दागिहै ॥२॥

राम-नाम के प्रभाव को कलिकाल रूपी शीतज्वर के लिये अग्नि रूप जानो, वह सहायकों सहित डर कर भाग जायगा । राम-नाम के प्रेम से वैराग्य और योग जागृत होगा, विपरीत हुए विधाता कर्म के दाग से कपाल को न दागेगा अर्थात् नाम की महिमा से वाम हुए ब्रह्मा भी ललाट में प्रतिकूल फल नहीं लिख सकते ॥२॥

सहायक सहित कलिकाल में जूड़ी का आरोप करके राम नाम के प्रभाव में अग्नि का आरोपण इसलिये किया कि पावक से जाड़ा दूर भाग जाता है । यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है । ज्वर के श्वास, मूर्छा, अरुचि, वमन, प्यास, दस्त आदि उपद्रव और कलियुग के काम, क्रोध, लोभ, मद, मत्सर आदि सहायक हैं ।

राम नाम मोदक सनेह-सुधा पागिहै । पाइ परितोष तू न द्वार द्वार बागिहै ॥ राम नाम कामतरु जोइ जोइ माँगिहै । तुलसी स्वारथ परमारथउ न खाँगिहै ॥३॥

राम-नाम रूपी लड्डू को स्नेह रूपी अमृत (सीरा) से पगेगा तब तू सन्तोष को प्राप्त होकर दरवाजे दरवाजे न भटकता फिरेगा । राम-नाम कल्पवृक्ष रूप है, जो जो माँगेगा—हे तुलसी ! स्वार्थ और परमार्थ कुछ भी न घटेगा ॥३॥

परम्परित और समअभेदरूपक है । 'द्वार द्वार और जोइ जोइ' शब्द रुचिरता के लिये दो दो बार आये 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

(७१)

ऐसेहू साहेब की सेवा सौं होत चोर रे । आपनी न बूझि न कहे को राँड़रोर रे ॥ १ ॥

ऐसे स्वामी की सेवा से तू चोर होता है ? न तो तुझे अपनी ओर से समझ पड़ता है और न व्यर्थ के हल्ले में पड़ कर दूसरों के कहने को सुनता है ॥१॥

मुनि मन अगम सुगम माय-बाप सौं । कृपासिन्धु सहज सखा-सनेही आप सौं ॥ लोक बेद बिदित बड़ो न रघुनाथ सौं । सब दिन सब देस सबही के साथ सौं ॥ २ ॥

मुनियों के मन में दुर्गम माता-पिता के समान सुगम कृपा के समुद्र हैं और स्वभाव ही आप से आप स्नेही-मित्र हैं। लोक और वेद में विख्यात रघुनाथजी से बड़ा कोई नहीं है, सब दिन सब देश में सभी के साथ (सहायक) रहते हैं ॥२॥

'सब' शब्द रुचिरता के लिये कई बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है।

स्वामी-सर्वज्ञ सौं चलइ न चोरी चार की। प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की ॥ काय न कलेस लेस लेत मानि मन की। सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जन की ॥ ३ ॥

सर्वज्ञ स्वामी से सेवक की चोरी नहीं चलती, प्रीति पहचानना इस दरबार की रीति है। शारीरिक कष्ट कुछ भी नहीं: मन की (प्रीति पहचान कर उसको) मान लेते हैं और स्मरण करने से सकुच कर दासों की रुचि पूरी करते रहते हैं ॥३॥

रीझे बस होत खीझे देत निज धाम रे। फलत सकल फल कामतरु नाम रे ॥ बँचे खोटे दाम न मिलइ न राखे काम रे। सोऊ तुलसी निवाजेउ ऐसे राजा राम रे ॥ ४ ॥

प्रसन्न होने से वश में होते और अप्रसन्न होने पर अपना धाम देते हैं, नाम रूपी कल्पवृक्ष सम्पूर्ण फलों का फलनेवाला है। तुलसी सरीखा खोटा सेवक जिसे बेंचने पर न दाम मिलेगा और न पास रखने से काम आ सकता है, राजा रामचन्द्रजी ऐसे कृपालु हैं कि उस पर भी दया की ॥४॥

राम-नाम और कल्पवृक्ष में पूर्णरूप से एक रूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है। रीझने और खीझनेवाले को समान फल देने में 'चतुर्थ तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(७२)

मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौं तो साँइ-द्रोही पै सेवक-हित साँई ॥ राम सौं बड़ो है कवन मो सौं कवन छोटो। राम सौं खरो है कवन मो सौं कवन खोटो ॥ १ ॥

अपनी भलाई से रामचन्द्रजी ने मेरा भला किया, मैं तो स्वामिद्रोही सेवक हूँ पर स्वामी सेवक-हितकारी हैं। रामचन्द्रजी के समान कौन बड़ा है और मेरे बराबर छोटा कौन है? (कोई नहीं)। रामचन्द्रजी के सदृश अच्छा कौन है और मेरे तुल्य खोटा कौन है? (कोई नहीं) ॥१॥

अनमेल कथन में 'प्रथम विषम अलंकार' है। कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ प्रकट होना कि कोई नहीं है 'वक्रोक्ति अलंकार' है।

लोग कहैं राम को गुलाम हौं कहाऔं। ऐतो बड़ो अपराध भौ न मन बाऔं॥ पाथ माथे चढ़इ तृन तुलसी ज्यौं नीचो। बोरत न वारि ताहि जानि आप सींचो॥२॥

लोग मुझको रामचन्द्रजी का दास कहते हैं और मैं भी कहलाता हूँ (किन्तु गुलाम बना हूँ काम, क्रोध, लोभादिका)। इतने बड़े अपराध पर भी स्वामी का मन टेढ़ा नहीं हुआ। तुलसी वैसा ही नीच है जैसे तृण पानी के सिर पर चढ़ता है; किन्तु पानी उसको अपना सींचा हुआ जान कर डुबोता नहीं॥२॥

तुलसी नीच सेवक है, इस साधारण बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे काठ अपने पोषक के मस्तक पर उतराता है और पानी उसको अपना सींचा जान कर डुबाता नहीं सिर पर धारण करता है उसी तरह रघुनाथजी ने मुझ नीच सेवक को ऊँच पद दिया। 'उदाहरण अलंकार' है।

(७३)

जागु जागु जागु जीव जो है जग-जामिनी। देह-गेह नेह जानि जैसे घन दामिनी। सोये सपने को सहइ संसृति सन्ताप रे। बूड़ो मृग-बारि खायो जेँवरी को साँप रे॥१॥

अरे जीव! जो संसार रूपी रात्रि है उससे तू जाग, जाग कर सचेत हो। देह और घर के स्नेह को ऐसा समझ जैसे बादल और बिजली। तू सोते हुए संसार-सम्बन्धी दुःख स्वप्न के समान सहता है। मृग के जल (झूठमूठ के पानी) में डूबता है और रस्सी का साँप तुझे खाये जाता है॥१॥

शरीर और घर के स्नेह को अनित्य जान, इस बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे बादल में बिजली दिखाई पड़ती है; किन्तु ठहराऊ नहीं होती 'उदाहरण अलंकार' है। 'जागु' शब्द में आग्रह की विप्सा है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

कहैं बेद बुध तू तो बूझ मन माहिं रे। दोष दुख सपने को जागेही पै जाहिं रे॥ तुलसी जागे तें जाइ तिहूँ ताप ताय रे। राम नाम सुचि रुचि सहज सुभाय रे॥२॥

तू मन में समझे तो सही, वेद और विद्वान कहते हैं कि सपने के दोष और दुःख जागने ही पर जाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जागने से तीनों तापों की जलन चली जाती है॥२॥

(७४)

राग-बिभास ।

जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव, जागि त्यागि मूढ़तानुरागु श्रीहरे । करि विचार तजि विकार भजि उदार रामचन्द्र, भद्र-सिन्धु दीन-बन्धु वेद वदत रे ॥१॥

जानकीनाथ की कृपा सुजान जीवों को जगाती हैं कि मूर्खता छोड़ कर सचेत हो श्री हरि भगवान से प्रेम कर। विचार करके दोषों का त्याग कर कल्याण के समुद्र दीनों के सहायक जिन्हें वेद कहते हैं, उन उदार रामचन्द्रजी का भजन कर ॥१॥

मोह-मय कुहू-निसा विसाल काल विपुल सोय, खोय सो अनूप रूप स्वप्न जो परे। अब प्रभात प्रगट ज्ञान-भानु के प्रकास त्रास,-नास राग मोह द्वेष निविड़-तम टरे ॥२॥

अज्ञान रूपी अमावश्या की रात्रि में बहुत अधिक समय तक सोकर बड़ा वक्त खो दिया, जिस स्वप्न में पड़ा है उससे अपना रूप (आत्मज्ञान) भूल गया है। अब ज्ञान रूपी सूर्य्य के प्रकट होने से सवेरा हुआ और भय जाता रहा, राग, मोह तथा द्वेष रूपी घना अन्धकार हट गया ॥२॥

अज्ञान में अमावश्या की रात्रि का आरोप, संसार की संलग्नता में सोने का, नाना कामनाओं पर स्वप्न का, ज्ञान में सूर्य्योदय का रागादि में घने अन्धकार का आरोपण करना रात्रि और मोह रात्रि का 'साङ्ग रूप अलंकार' है।

मोह मद मान चोर भोर जानि जातुधान, काम क्रोध लोभ छोभ निकर अपडरे। देखत रघुबर प्रताप बीते सन्ताप पाप, ताप त्रिबिध प्रेम आप दूरही करे ॥३॥

सवेरा हुआ जान कर मोह, मद और अभिमान रूपी चोर तथा काम, क्रोध, लोभ और बेचैनी रूपी राक्षसों के वृन्द डर गये। रघुनाथजी के प्रताप (सूर्य्य) को देखते ही सब भाग गये और दुःख, पाप एवम् तीनों तापों को प्रेम रूपी जल दूर कर देता है ॥३॥

स्रवन सुनि गिरा गँभीर जागे अतिधीर बीर, बर बिराग तोष सकल सन्त आदरे। तुलसिदास प्रभु कृपाल निरखि जीव जन बिहाल, भञ्जेउ भवजाल परम मङ्गलाचरे ॥४॥

कानों से गम्भीर वाणी सुन कर अत्यन्त साहसी शूरवीर श्रेष्ठ वैराग्य और सन्तोष जगे, सब सन्तों ने उनका आदर किया । तुलसीदासजी कहते हैं कृपालु प्रभु रामचन्द्रजी ने जीव सेवक को बेचैन देख कर संसार के प्रपञ्च का नाश करके अत्युत्तम मङ्गलीक व्यवहार किया ॥४॥

इस पद में रात्रि और भव-रजनी का सङ्गोपाङ्ग वर्णन 'साङ्गरूपक अलंकार' है ।

(७५)

राग-ललित ।

खोटो खरो रावरो हौं रावरी सौं रावरे सौं, झूठ क्यौं कहौंगो जानो सबही के मन की । करम वचन हिये कहउँ न कपट किये, ऐसो हठ जैसे गाँठि पानी परे सन की ॥१॥

बुरा या भला मैं आप का हूँ, आप से आप की सौगन्द करके कहता हूँ, आप सभी के मन की बात जानते हैं फिर झूठ कैसे कहूँगा । कर्म, वचन और मन से कपट करके नहीं कहता हूँ, मेरा हठ ऐसा है जैसे पानी पड़ने पर सन की गाँठ (छूटती नहीं) ॥१॥

मैं आप का दास हूँ मेरे मन की दृढ़ प्रतिज्ञा है, यह हठ न छूटेगा । इस साधारण बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे जल में भींगने पर सन की गाँठ नहीं छूटती 'उदाहरण अलंकार' है । 'रावरे' शब्द में यमक है और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

दूसरो भरोसो नाहिं बासना उपसना की, बासव बिरञ्चि सुर नर मुनि गन की । स्वारथ के साथी सबै हाथी स्वान लेवा देई काहू तो न पीर रघुबीर दीन जन की ॥ २ ॥

मुझे दूसरे का भरोसा नहीं है और न इन्द्र, ब्रह्मा, देवता, मनुष्य तथा मुनियों की उपासना की इच्छा है । सब मतलब के साथी हैं हाथी लेकर कुत्ता देते हैं, हे रघुनाथजी ! दीन जनों की पीड़ा तो किसी को नहीं है ॥२॥

यहाँ प्रस्तुत वर्णन तो यह है कि इन्द्रादिदेवता बड़ी पूजा लेकर अल्प फल देते हैं । इसे सीधे न कह कर हाथी-स्वान लेवा देई से असली तात्पर्य्य प्रकट करना 'ललित अलंकार' है ।

साँप-सभा साबर लबार भये देव दिव्य, दुसह सासति कीजे आगे दै या तन की । साँचो परे पाऊँ पान पञ्च मैं परइ प्रमान, तुलसी चातक आस राम स्याम घन की ॥ ३ ॥

हे स्वर्गीय देव! साँप की मण्डली में सावरमन्त्र की लवारी से (प्राणान्त होता है, यदि मेरा कथन झूठ हो तो) इस शरीर को (संसार रूपी सर्प के) आगे डाल कर कठिन दुर्दशा कीजिये। सच जान पड़े तब पान का बीड़ा मिले जिससे पञ्चों में प्रमाणित हो कि तुलसी चातक को एक रामचन्द्रजी रूपी श्याममेघ की आशा है॥३॥

आप सर्वज्ञ हैं इसलिये बनाकर बात कहूँगा तो वह आप से छिप नहीं सकती। इस प्रस्तुत वर्णन को सीधे न कह कर केवल उसका प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(७६)

राम को गुलाम नाम रामबोला राखेउ राम, काम इहइ नाम दुइ हौं कबहूँ कहत हौं। रोटी-लूगा नीके राखइ आगेहू की बेद भाखइ, भलो होइहै तेरो ता तें आनद लहत हौं॥१॥

मैं रामचन्द्रजी का गुलाम हूँ, रामचन्द्रजी ने मेरा नाम रामबोला रक्खा है। मेरा यही काम है कि कभी दो एक बार उनका नाम मुख से कहता हूँ। इससे भोजन-वस्त्र अच्छी तरह मिलता है और आगे (परलोक) के लिये वेद कहता है कि तेरा भला होगा इसलिये आनन्द प्राप्त हो रहा है (राम-नाम के प्रताप से लोक-परलोक दोनों बनता है)॥१॥

बाँधेउ हौं करम जड़ गरब-निगड़-गूढ़, सुनत दुसह हौं तो सासति सहत हौं। आरत अनाथ नाथ कोसलपाल कृपाल, लीन्हेउ छीनि दीन देखेउ दुरित दहत हौं॥२॥

मुझे जड़कर्म ने गर्व की जटिल बेड़ी से बाँध रक्खा था, मैं तो वह दुर्दशा सहता था जो सुनने में असहनीय है। दुखी और अनाथों के नाथ अयोध्या के रक्षक कृपालु (रामचन्द्रजी) ने मुझे पाप की आँच में जलते हुए सन्तप्त देख कर उससे बचा लिया॥२॥

बूझेउ ज्योंही कहेउँ मैं हूँ चेरो होइहौं रावरोजू, मेरो कोऊ कहूँ नाहिं चरन गहत हौं। मींजो गुरु पीठि अपनाइ गहि बाँह बोलि, सेवक सुखद सदा बिरद बहत हौं॥३॥

ज्यों ही पूछा त्यों ही मैं ने कहा—मैं आप का दास होना चाहता हूँ, मेरा कहीं कोई नहीं है इससे आप के पाँव पकड़ता हूँ। गुरु (प्रभु) ने पीठ पर हाथ फेरा और अपना लिया, बाँह पकड़ कर बोले—मैं भक्तों को सदा सुख देनेवाली नामवरी निबाहता हूँ॥३॥

लोग कहैं पोच सो न सोच न सकोच मेरे, ब्याह न बरेखी जाति पाँति न चहत हौं । तुलसी अकाज काज रामहीं के रीझे खीझे, प्रीति की प्रतीति मन मुदित रहत हौं ॥४॥

लोग नीच कहें इसका सोच और लज्जा मुझे नहीं है, न विवाह सगाई और न जाति-पाँति में मिलना चाहता हूँ । तुलसी की बुराई भलाई रामचन्द्रजी ही की प्रसन्नता और नाराजगी से है, उन्हीं की प्रीति में विश्वास रख कर मन में प्रसन्न रहता हूँ ॥४॥

यहाँ अनेक अङ्ग-स्वभाव का दृढ़ विश्वास 'आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार' है ।

(७७)

जानकीजीवन जग-जीवन जगत-हित, जगदीस रघुनाथ राजिव-लोचन राम । बदन सरद-बिधु सुख सील श्री सदन, सहज सुन्दर तनु सोभा अगनित काम ॥१॥

जानकीजी के प्राणाधार, जगत के जीवन, संसार के उपकारी, विश्व के स्वामी, रघुकुल के नाथ कमल नेत्र रामचन्द्रजी हैं । मुख शरद्काल के चन्द्रमा के समान सुख का हद और सुन्दरता का स्थान है, शरीर स्वाभाविक सुन्दर असंख्यों कामदेव की शोभा से युक्त है ॥१॥

जग और जीवन शब्दों में यमक तथा पुनरुक्तिप्रकाश का सन्देहसङ्कर है । राजिव लोचन में वाचकधर्म लुप्तोपमा, बदन सरद-बिधु सुखसील श्रीसदन में वाचक लुप्तोपमा अलंकार है और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

जगत सुपिता-मातु सुगुरु सुहित-मीत, सब को दाहिने दीनबन्धु काहू के न बाम । आरति हरन सरनद अतुलित दानि, प्रनतपाल कृपाल पतित पावन नाम ॥२॥

जगत के सुन्दर पिता-माता, श्रेष्ठ गुरु, सुघर हितैषी, अच्छे मित्र, सब के अनुकूल, गरीबों के सहायक बन्धु और किसी के लिये टेढ़े नहीं हैं । दुःख के हरनेवाले, शरणदाता, अप्रमेय दानी, शरणागत रक्षक, कृपा के स्थान और जिनका नाम पतितों को पवित्र करनेवाला है ॥२॥

सुन्दर पिता-माता, गुरु, हितैषी, मित्र के उत्कृष्ट गुणों को एक रामचन्द्रजी में स्थापन करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार, है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

बन्दित सकल बिस्व सेबित सकल सुर, आगम निगम कहैं रावरोई गुन-ग्राम । इहइ जानि तुलसी तिहारो जन भयउ चहइ, न्यारे कै गनीबो जहाँ गने गरीब गुलाम ॥३॥

समस्त संसार से वन्दनीय और सम्पूर्ण देवताओं से सेवित आप के गुण-समूह वेद शास्त्र कहते हैं। यही समझ कर तुलसी आप का दास होना चाहता है, इसको अलग ही कर के रखिये जहाँ गरीब गुलामोंकी गिनती है ॥३॥

यदि मैं उत्तम भक्तों की श्रेणी में बैठने लायक नहीं हूँ तो जहाँ गरीब सेवक केवट, कोल-भील, गणिका, गिद्ध, अजामिल आदि की गणना है उसी पंक्ति में बैठाइये। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर होने से 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग' है।

(७८)

राग-टोड़ी

दीन को दयाल दानि दूसरो न कोई। जाहि दीनता कहउँ मैं देखउँ दीन सोई ॥ सुर मुनि नर नाग असुर साहब तौ घनेरे। तौ लौं जौ लौं रावरे न नेकु नयन फेरे ॥१॥

दीनों पर दया करनेवाला दानी दूसरा कोई नहीं है; जिससे दीनता कहता हूँ मैं उसी को दीन देखता हूँ। देवता, मुनि, मनुष्य, नाग और दैत्यों में स्वामी तो बहुत से हैं, पर जबतक आप थोड़ी दया की निगाह नहीं फेरते तब तक कोई बड़प्पन नहीं पाते ॥१॥

त्रिभुवन तिहुँकाल बिदित बदत बेद चारी। आदि मध्य अन्त राम साहिबी तिहारी ॥ तुम्हहिं माँगि माँगनो न माँगनो कहायो। सुनि सुभाव सील सुजस जाचन जन आयो ॥२॥

हे रामचन्द्रजी! तीनों लोक और तीनों काल में प्रसिद्ध है और चारों वेद कहते हैं कि आदि मध्य तथा अन्त में आप की ही मलिकई है। आप से माँग कर माँगनेवाले मङ्गन नहीं कहलाये, ऐसा स्वभाव, शील और सुयश सुन कर यह दास आप से माँगने आया है ॥ ॥

पाहन पसु ब्याध बिहँग अपनो करि लीन्हे। महाराज दसरथ के रङ्क राय कीन्हे ॥ तू गरीब को निवाज हौं गरीब तेरो। बारक कहिये कृपाल तुलसिदास मेरो ॥३॥

पत्थर, (अहल्या) पशु, (हाथी) व्याधा, (वाल्मीकि) पक्षी (जटायु) को अपना बना लिया। हे महाराज दशरथनन्दन! आपने दरिद्रों को राजा बना दिया। आप गरीब-निवाज हैं और मैं आप का गरीब (सेवक) हूँ। हे कृपालु! एक बार कहिये कि तुलसीदास मेरा है ॥३॥

आप गरीबों पर दया करनेवाले हैं और मैं गरीब हूँ, यथायोग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है।

(७९)

तू दयाल दीन-हौं तू-दानि हौं-भिखारी । हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप-पुञ्ज-हारी ॥ नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सौं । मो समान आरत नहिं आरति-हर तो सौं ॥१॥

आप दयालु हैं मैं दीन हूँ, आप दानी हैं मैं भिक्षुक हूँ, मैं प्रसिद्ध पापी हूँ और आप पाप की राशि नसानेवाले हैं । आप अनाथों के नाथ हैं और मेरे समान अनाथ कौन है ? मेरे समान दुखी नहीं और आप के बराबर दुःख का हरनेवाला कोई नहीं है ॥१॥

ब्रह्म तू हौं जीव तू हौं ठाकुर हौं चेरो । तात मात गुरु सखा तू सब बिधि हित मेरो ॥ तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै । ज्यौं त्यौं तुलसी कृपालु चरन सरन पावै ॥२॥

आप ब्रह्म हैं मैं जीव हूँ, आप ठाकुर हैं मैं चाकर हूँ, आप सब तरह के मेरे हितकारी पिता, माता, गुरु और मित्र हैं । आप से और मुझसे बहुत नाते (सम्बन्ध) हैं जो अच्छा लगे वही मानिये । हे कृपालु ! जिस किसी प्रकार से तुलसी चरणों का सहारा पावे ॥२॥

इस पद में यथायोग्य का सङ्ग वर्णन में 'प्रथम सम अलंकार' है । एक रामचन्द्रजी में पिता-माता, गुरु और मित्र के गुणों की समता 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है । यमक, पुनरुक्तिप्रकाश, वक्रोक्ति और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

(८०)

और काहि माँगिये को माँगिबो निवारै । अभिमत दातार कौन दुख दरिद्र दारै ॥१॥

और किस से माँगने जाऊँ जो मङ्गनता छुड़ा दे, इच्छित फल का देनेवाला, दुःख और दरिद्र का नसानेवाला कौन है ? (कोई नहीं) ॥१॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ भासित होना कि ऐसा कोई दूसरा नहीं है 'वक्रोक्ति अलंकार' है । अनुप्रास भी है ।

धरम-धाम राम काम कोटि रूप रूरो । साहेब सब बिधि सुजान दान खड्ग सूरो ॥ सुसमय दिन दुइ निसान सब के द्वार बाजै । कुसमय दसरथ के दानि तैं गरीब निवाजै ॥२॥

हे रामचन्द्रजी! आप धर्म के मन्दिर और करोड़ों कामदेव के रूप से सुन्दर हैं, सब तरह से सुजान स्वामी और दान रूपी खड्ग चलाने में शूरवीर हैं। अच्छे दिन में दो दिन के लिये सब के दरवाजे पर डङ्का बजता है, हे दशरथनन्दन दानवीर! बुरे दिन में आप ही ग़रीबों पर दया करनेवाले हैं ॥२॥

उपमेय रामचन्द्रजी के रूप के उपमान करोड़ों कामदेव से बढ़ कर कहना 'व्यतिरेक अलंकार' है। दान में खड्ग का आरोप करके शूरता में रामचन्द्रजी की एकरूपता करना 'सम-अभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

सेवा बिनु गुन बिहीन दीनता सुनाये। जे जे तैं निहाल किये फूले फिरत पाये॥ तुलसिदास जाचक रुचि जानि दान दीजे। रामचन्द्र चन्द्र तू चकोर मोहि कीजे ॥३॥

गुण-हीन जन बिना सेवा किये जिस जिस ने अपनी दीनता सुनाई, उन सब को आपने निहाल कर दिया वे प्रसन्नता से फूले फिरते पाये जाते हैं। तुलसीदास भिक्षुक की रुचि जान कर दान दीजिये, हे रामचन्द्रजी! आप चन्द्रमा रूप हैं और मुझे चकोर बनाइये ॥३॥

रामचन्द्रजी-उपमेय, चन्द्रमा-उपमान में पूर्णरूप से एक रूपता करना 'समअभेद रूपक अलंकार' है। 'चन्द्र' शब्द दो बार आया; किन्तु अर्थ दोनों का भिन्न होने से 'यमक अलंकार' है।

(८१)

दीनबन्धु सुखसिन्धु कृपाकर, कारुनीक रघुराई। सुनहु नाथ मन जरत त्रिबिध जर, करत फिरत बौराई ॥१॥

हे दीनबन्धु सुखसागर कृपा के खानि दयालु रघुनाथजी, हे नाथ! सुनिये, मेरा मन तीनों तापों से जलता है इसलिये पागलपन करता फिरता है ॥१॥

यहाँ दैहिक, दैविक, भौतिक तीनों ताप और वात, पित्त, कफ तीनों दोष से उत्पन्न सन्निपात ज्वर और संसारी रोग का साङ्ग रूपक वर्णन है।

कबहुँ जोग रत भोग निरत सठ, हठि बियोग बस होई। कबहुँ मोह-बस द्रोह करत बहु, कबहुँ दया अति सोई ॥२॥

कभी योग में तत्पर, कभी विषय-भोग में लिप्त और कभी हठ से यह मूर्ख वियोग के अधीन होता है। कभी अज्ञानता के वश बहुत सा वैर करता है और कभी वह अत्यन्त दयालु बन जाता है ॥२॥

कबहुँ दीन मति-हीन रङ्क-तर, कबहुँ भूप-अभिमानी। कबहुँ मूढ़ पंडित बिडम्बरत, कबहुँ धरम-रत ज्ञानी ॥३॥

कभी दुखी, बुद्धि हीन, अत्यन्त दरिद्र और कभी अभिमानियों का राजा हो जाता है। कभी मूर्ख, कभी पण्डित, कभी पाखण्ड में तत्पर और कभी धर्म में अनुरक्त ज्ञानी बनता है ॥३॥

कबहुँ देख जग धनमय रिपुमय, कबहुँ नारिमय भासै।
संसृति-सन्निपात दारुन दुख, बिनु हरि-कृपा न नासै ॥ ४ ॥

कभी जगत को धनमय, कभी शत्रुमय देखता है और कभी स्त्रीमय भासित होता है। संसार रूपी भीषण सन्निपात का दुःख बिना भगवान की कृपा (रूपी ओषधि) के नष्ट नहीं होता ॥४॥

सञ्जम जप तप नेम धरम व्रत, बहु भेषज समुदाई।
तुलसिदास भव-रोग राम-पद,-प्रेमहीन नहिं जाई ॥५॥

संयम, जप, तपस्या, नियम, धर्म और उपवास आदि बहुत सी ओषधियों का समुदाय है, परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं यह संसार-सम्बन्धी रोग बिना रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम के नहीं दूर होता ॥५॥

राम-पद-प्रेम के बिना संसृति सन्निपात छूटने का अभाव वर्णन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है।

(८२)

मोह जनित मल लाग विविध बिधि, कोटिहु जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित, अधिक अधिक लपटाई ॥१॥

अज्ञान से उत्पन्न अनेक प्रकार का पाप लगा है वह करोड़ों यत्न से भी नहीं जाता। जन्म जन्मान्तर से मन उसके साधन में तत्पर है इससे अधिक उसी में लिपटता जाता है ॥१॥

'जनम जनम और अधिक अधिक' दोनों शब्द भाव की रुचिरता के लिये दो दो बार आये हैं। यह 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है। मोह छुड़ाने के लिये करोड़ों यत्न विद्यमान रहते हुए उसका न छूटना 'विशेषोक्ति अलंकार' है।

नयन मलिन पर नारि निरखि मन,-मलिन विषय सँग लागे।
हृदय मलिन बासना मान मद, जीव सहज-सुख त्यागे ॥ २ ॥

पराई स्त्री को देख कर आँखें मलिन हुई हैं और विषयों के साथ लग कर मन मैला हो गया है। हृदय कामना अभिमान और मद से मलिन हो कर जीव ने अपने स्वाभाविक सुख (आत्मानन्द) को त्याग दिया है ॥२॥

पर-निन्दा सुनि स्रवन मलिन भये, बचन दोष पर गाये।
सब प्रकार मल भार लाग निज,-नाथ चरन बिसराये ॥३॥

पराई निन्दा सुन कर कान मलिन हुए हैं और पराये के दोष कहने से वाणी मैली हुई है। सब प्रकार से पापों का बोझ अपने स्वामी के चरणों को भुलाने से लगा है ॥३॥

तुलसिदास व्रत ज्ञान दान तप, सुद्धि हेतु स्रुति गावै। राम-चरन अनुराग नीर बिनु, मल अति नास न पावै ॥ ४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि व्रत, ज्ञान, दान और तप आदि शुद्धि के लिये वेद गाते हैं; परन्तु रामचन्द्रजी के चरणानुराग रूपी जल के बिना अत्यन्त बड़ा पाप नाश को नहीं प्राप्त होता ॥४॥

रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम और जल की पूर्णरूप से एकरूपता है; क्योंकि बिना जल के मैला साफ़ नहीं होता 'समअभेदरूपक अलंकार' है। मल का नाश वर्णनीय विषय है, वह बिना राम-पद प्रेम के होता नहीं 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' दोनों का सन्देहसङ्कर है।

(८२) राग-जयतिश्री।

कछु होइ न आय गयउ जनम जाय। अति दुर्लभ तनु पाइ कपट तजि, भजे न राम मन बचन काय ॥१॥

कुछ हो नहीं सका और जन्म व्यर्थ ही चला गया! अत्यन्त दुर्लभ शरीर पा कर तू ने मन, वचन और कर्म से छल छोड़ कर रामचन्द्रजी का भजन नहीं किया ॥१॥

चितचाही बात रामभजन नहीं हुआ और सारी जिन्दगी मुफ़्त में ही चली गई 'विषादन अलंकार' है।

लरिकाई बीती अचेत चित, चञ्चलता चौगुनी चाय। जोबन ज्वर जुबती कुपथ्य करि, भयो त्रिदोष भरि मदनबाय ॥ २ ॥

लड़काई नासमझी में बीती चित्त में चपलता और चौगुना उमङ्ग था। जवानी रूपी ज्वर में तरुणी रूपी अपथ्य (बदपरहेजी) करके कामदेव रूपी बाई से भर कर त्रिदोष (सन्नि-पात) हो गया ॥२॥

युवावस्था में ज्वर का आरोप, स्त्री में कुपथ्य का और कामदेव में बाई का आरोपण इसलिये किया कि ज्वर में वात से त्रिदोष होता है तब प्राणी अचेत होकर पागलों की तरह अनाप शनाप बकने लगता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

मध्य बयस धन हेतु गँवाई, कृषी बनिज नाना उपाय। राम-बिमुख सुख लहेउ न सपनेहुँ, निसि बासर तयो तिहूँ ताय ॥३॥

मध्यावस्था धनोपार्जन के लिये खेती और वनिजई (व्यापार) नाना उपायों में खो दी। रामचन्द्रजी से प्रतिकूल रह कर सपने में भी चैन नहीं मिला, दिन रात तीनों तापों से जलता रहा ॥३॥

सेये नाहिँ सीतापति सेवक, साधु सुमति भलि भगति भाय।
सुने न पुलकि तन कहे न मुदित मन, किये जो चरित रघुबंस-राय ॥४॥

सीतानाथ के सेवक सुन्दर बुद्धिवाले साधुजनों की अच्छी भक्ति और भाव से सेवा नहीं की। रघुकुल के राजा (रामचन्द्रजी) ने जो चरित किये उसको पुलकित शरीर से न तो सुने और न प्रसन्न मन से कहे ॥४॥

स और भ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

अब सोचत मनि बिनु भुजङ्ग ज्यों, बिकल अङ्ग दले जरा धाय।
सिर धुनि धुनि पछितात मींजि कर, कोउ न मीत हित दुसह दाय ॥५॥

अब जैसे बिना मणि के साँप की तरह सोचता है जब कि बुढ़ाई ने धावा करके अङ्गों को कुचल डाला और इन्द्रियाँ विह्वल हो गईं। सिर पीट पीट कर और हाथ मल कर पछताता है; किन्तु इस कठिन सन्ताप को हटानेवाला कोई मित्र नहीं है ॥५॥

जब बुढ़ापे ने अङ्गों को दलमल कर व्याकुल कर दिया तब पछताता है, इस साधारण बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे मणि के बिना साँप दुःख से पश्चात्ताप करता हो 'उदाहरण अलंकार' है। 'धुनि' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनिरुक्तिप्रकाश अलंकार' है।

जिन लगि निज परलोक बिगारेउ, ते लजात होत ठाढ़े ठाय।
तुलसी अजहुँ सुमिरु रघुनाथहि, तरेउ गयन्द जा के एक नाय ॥६॥

जिनके लिये तू ने अपना परलोक बिगाड़ा वे तेरे पास खड़े होते हुए लजाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि अब भी रघुनाथजी का स्मरण कर जिनका एक बार नाम लेने से गजेन्द्र तर गया अर्थात् भीषण सङ्कट से छुटकारा पाया ॥६॥

जब एक बार नाम लेने से हाथी सङ्कट मुक्त हुआ तब तू भी अवश्य जरा विपत्ति से छूट कर सुखी होगा। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग' है।

(८४)

तू पछितइहै मन मींजि हाथ। भयउ सुगम तोहि अमर अगम तनु, समुझ न क्यों खोवत अकाथ ॥१॥

अरे मन! तू हाथ मल कर पछतायगा, देवताओं को दुर्लभ शरीर तुझे सुलभ हुआ है इसको समझता नहीं; क्यों व्यर्थ ही खोता है? ॥१॥

सुख साधन हरि बिमुख वृथा जस, स्रम फल घृत हित मथे पाथ । अस बिचारि तजि कुपथ कुसङ्गति, चलु सुपन्थ मिलु भले साथ ॥२॥

भगवान से विमुख रह कर सुख के लिये यत्न करना वैसा ही है जैसे घी के लिये पानी को मथने से परिश्रम ही फल होता है। ऐसा विचार कर कुमार्ग और कुसङ्गति को छोड़ कर सुमार्ग में चले तथा अच्छे लोगों के सङ्ग में मिल कर रहे ॥२॥

हरिविमुखों के लिये सुख-प्राप्ति का प्रयत्न व्यर्थ है, इस सामान्य बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे घृत की प्राप्ति के लिये पानी का महना वृथा है; क्योंकि घी दही के मथने से निकलता है पानी में परिश्रम के सिवा दूसरा फल नहीं 'उदाहरण अलंकार' है।

देखु राम-सेवक सुनु कीरति, रटहि नाम करि गान गाथ । हृदय आनु धनु बान पानि प्रभु, लसे मुनिपट कटि कसे भाथ ॥३॥

रामभक्तों को देख, रामचन्द्रजी की कीर्त्ति सुन, उनके नाम को रट और उनकी कथा बना कर गावे। प्रभु रामचन्द्रजी हाथ में धनुष-बाण लिये, मुनियों के वस्त्र धारण किये हैं कमर में तरकस शोभित है, ऐसा रूप हृदय में बसावे ॥३॥

तुलसिदास परिहरि प्रपञ्च सब, नाउ राम-पद-कमल माथ । जनि डरपहि तो से अनेक खल, अपनायउ जानकीनाथ ॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि सारा प्रपञ्च (छल का विस्तार) त्याग कर रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में मस्तक नवावे। डरे मत; तेरे समान असंख्यों दुष्टों को जानकीनाथ ने अपनाया अर्थात् अपनी शरण में रख लिया है ॥४॥

यहाँ 'काव्यार्थापत्ति अलंकार' की ध्वनि है।

(८५)

राग-धनाश्री

मन माधव को नेकु निहारहि । सुनु सठ सदा रङ्क के धन ज्यौं, छिन छिन प्रभुहि सँभारहि ॥१॥

हे मन! तनिक माधव भगवान को देख। अरे मूर्ख! सुन, सदा दरिद्र के धन की तरह क्षण क्षण प्रभु का स्मरण करता रहे ॥१॥

हे मन! तनिक तू माधव भगवान के दर्शन कर और प्रभु को सदा याद कर, इस बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे दरिद्र प्राणी अपनी सम्पत्ति का बार बार स्मरण करता रहता है, उसे कभी भूलता नहीं 'उदाहरण अलंकार' है। 'छिन' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश' है। म, न और स अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

सोभा सील ज्ञान गुन मन्दिर, सुन्दर परम उदारहि।
रञ्जन सन्त अखिल अघ गञ्जन, भञ्जन विषय-विकारहि ॥२॥

जो शोभा, शुद्धाचरण, ज्ञान और गुणों के मन्दिर, अतिशय श्रेष्ठ, सुन्दर, सन्तों को प्रसन्न करनेवाले, समस्त पापों के नसानेवाले और विषयों के दोषों को तोड़नेवाले हैं ॥२॥

जौं बिनु जोग जज्ञ व्रत सञ्जम, गयउ चहहि भव पारहि।
तौ जनि तुलसिदास निसि बासर, हरि-पद-कमल बिसारहि ॥३॥

यदि बिना योग, यज्ञ, उपवास और संयम के संसार रूपी समुद्र के पार जाना चाहता है तो हे तुलसीदास! दिन रात भगवान के चरण कमलों को मत भूल ॥३॥

संसार और सागर में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेद रूपक अलंकार' है। सतसत् की समता का भाव सूचक 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है।

(८६)

इहइ कहेउ सुत वेद चहूँ। श्रीरघुबीर-चरन चिन्तन तजि, नाहिँ न ठौर कहूँ ॥ १ ॥

हे पुत्र! चारों वेदों ने यही कहा है—श्रीरघुनाथजी के चरणों का चिन्तन (बार बार स्मरण) छोड़ कर (जीव को विश्राम के लिये) कहीं जगह नहीं है ॥१॥

जा के चरन बिरञ्चि सेइ सिधि,-पाई सङ्करहूँ।
सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ, भजन करत अजहूँ ॥२॥

जिनके चरणों की सेवा करके ब्रह्मा और शिव ने भी सिद्धि पाई है। शुकदेव और सनकादिक मुनीश्वर जीवन्मुक्त होकर विचरते हैं, वे भी अब तक भजन करते हैं ॥२॥

जद्यपि परम चपल श्री सन्तत, थिर न रहति कतहूँ।
हरि-पद-पङ्कज पाइ अचल भइ, करम बचन मनहूँ ॥ ३ ॥

यद्यपि लक्ष्मी बड़ी चञ्चला है वह निरन्तर कहीं स्थिर नहीं रहती; परन्तु भगवान के चरण-कमलों को पा कर कर्म, वचन और मन से निश्चल हुई है ॥३॥

करुनासिन्धु भगत-चिन्तामनि, सोभा सेवतहूँ।
अपर सकल सुर असुर ईस सब, खायउ उरग छहूँ ॥ ४ ॥

दयासागर भक्तों के चिन्तामणि (वाञ्छित फल देनेवाले) की सेवा करने ही में शोभा है। अन्य समस्त देवता दैत्य मालिक कहलानेवालों को काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरता रूपी छओं सर्पों ने डसा है (वे अपने आपे में नहीं हैं) ॥४॥

उपमेय उपमान की पूर्ण रूप से एकरूपता वर्णन करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

सुरुचि कहेउ सो सत्य तात अति-परुख बचन जबहूँ।
तुलसिदास रघुनाथ बिमुख नहिं, मिटइ बिपति कबहूँ ॥५॥

हे पुत्र! सुरुचि ने यद्यपि अत्यन्त कठोर वचन कहा, पर वह सत्य है। तुलसीदासजी कहते हैं कि रघुनाथजी से विपरीत रहने में कभी विपत्ति नहीं मिटती ॥५॥

ध्रुव की माता सुनीति ने पुत्र को उपदेश दिया वही इस पद में कहा गया है। राजा उत्तानपाद की बड़ी रानी सुनीति थी, उसके गर्भ से ध्रुव उत्पन्न हुए। छोटी रानी सुरुचि के गर्भ से उत्तमकुमार जन्मा था। पाँच वर्ष की अवस्था में ध्रुव को सौतेली माता सुरुचि ने तिरस्कार के साथ राजा की गोदी से हटा कर कड़ी बातें कहीं। ध्रुव रोते हुए अपनी माता सुनीति के पास आ कर वह सब निवेदन किया, उसकी माता ने जो कहा वही ऊपर कही हुई शिक्षा है। विशेष वृत्तान्त विनयकोश में 'ध्रुव' शब्द देखो।

(८७)

सुनु मन मूढ़ सिखावन मेरो। हरि-पद बिमुख लहेउ न काहु सुख, सठ यह समुझ सबेरो ॥१॥

हे मूर्ख मन! मेरा सिखावन सुन, भगवान के चरणों से विमुख रह कर किसी ने सुख नहीं पाया, अरे दुष्ट! यह सबेरे ही (आयु रहते) समझ ॥१॥

बिछुरे ससि रबि मन नयनन्ह तैं, पावत दुख बहुतेरो।
भ्रमत स्रमित निसि दिवस गगन महँ, तहँ रिपु राहु बड़ेरो ॥२॥

चन्द्रमा मन से और सूर्य्य नेत्रों से अलग हुए इससे बहुत सा दुःख पाते हैं। दिन रात आकाश में चक्कर खाते हुए थकते हैं, वहाँ बड़ा शत्रु राहु (सताता) है ॥२॥

पहले ससि रबि कह कर उसी क्रम से मन और नेत्र कहने में 'यथासंख्य अलंकार' है। सूर्य्य, चन्द्रमा और राहु का विस्तृत वृत्तान्त विनयकोश में 'राहु' शब्द देखो।

जद्यपि अति पुनीत सुरसरिता, तिहुँ पुर सुजस घनेरो।
तजे चरन अजहूँ न मिटत नित, बहिबो ताहू केरो ॥३॥

यद्यपि गङ्गाजी अत्यन्त पवित्र हैं उनका तीनों लोकों में बहुत बड़ा सुयश है। भगवान के चरणों को त्यागने से अब भी उनका नित्य बहना नहीं मिटता है ॥३॥

मिटइ न बिपत्ति भजे बिनु रघुपति, स्रुति सन्देह निबेरो।
तुलसिदास सब आस छाड़ि के, होहु राम कर चेरो ॥४॥

विना रघुनाथजी के भजन किये विपत्ति नहीं मिटती इसका सन्देह वेदों ने छुड़ा दिया है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब आशा छोड़ कर रामचन्द्रजी का सेवक हो ॥४॥

इस पद में उपमानप्रमाण, शब्दप्रमाण, प्रथम विनोक्ति की संसृष्टि है।

(८८)

कबहूँ मन विस्राम न मान्यो। निसि दिन भ्रमत बिसारि सहज-सुख, जहँ तहँ इन्द्रिन्ह तान्यो ॥१॥

तू मन में कभी चैन नहीं पाया, अपना स्वाभाविक सुख भुला कर इन्द्रियों के तनाव में पड़ा हुआ जहाँ तहाँ दिन रात चक्कर खाता फिरता है ॥१॥

जदपि विषय सँग सहे दुसह दुख, विषम-जाल अरुझान्यो।
तदपि न तजत मूढ़ ममता बस, जानतहूँ नहिँ जान्यो ॥२॥

यद्यपि विषयों के सङ्ग में भीषण फन्दे में फँस कर कठिन दुःख सहन किया है तो भी मूर्खता के अधीन होकर ममत्व नहीं त्यागता है, जानते हुए भी नहीं जाना अर्थात् अनजान ही बना है ॥२॥

जनम अनेक कियेउ नाना बिधि, करम-कीच चित सान्यो। होइ न बिमल बिबेक-नीर बिनु, बेद पुरान बखान्यो ॥३॥

अनेक जन्मों के किये हुए नाना प्रकार कर्म रूपी कीचड़ में मन लिपटा हुआ है वह बिना ज्ञान रूपी जल के निर्मल नहीं होता, वेद और पुराणों ने ऐसा कहा है ॥३॥

समअभेद रूपक, प्रथम विनोक्ति, शब्दप्रमाण तीनों अलंकारों की संसृष्टि है।

निज हित नाथ पिता गुरु हरि सौं, हरषि हृदय नहिँ आन्यो।
तुलसिदास कब तृषा जाइ सर,-खनतहि जनम सिरान्यो ॥ ४ ॥

अपने हितकारी स्वामी, पिता और गुरु रामचन्द्रजी हैं उन्हें प्रसन्नता से हृदय में नहीं ले आये। तुलसीदासजी कहते हैं कि तालाव खोदते ही जन्म बीत गया; प्यास कब दूर होगी? ॥४॥

यहाँ प्रस्तुत वृत्तान्त तो यह है कि विषयानन्द के लिये जन्मान्तर से प्रयत्न करता आता है परन्तु उससे तृप्ति कभी नहीं हुई। इस बात को सीधे न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कथन करना 'ललित अलंकार' है। मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के उत्कृष्ट गुणों को एक रामचन्द्रजी में सम करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(८९)

मेरो मन हरिजू हठ न तजै। निसि दिन नाथ देउँ सिख बहु विधि, करत सुभाव निजै ॥१॥

हे स्वामिन् रामचन्द्रजी ! मेरा मन हठ नहीं छोड़ता है। दिन रात बहुत तरह से शिक्षा देता हूँ, पर वह अपने ही स्वभाव के अनुसार करता है ॥१॥

ज्यौं जुवती अनुभवति प्रसव अति,-दारुन दुख उपजै। होइ अनुकूल बिसारि सूल सठ, पुनि खलु पतिहि भजै ॥ २ ॥

जैसे स्त्री को बच्चा जनने का अत्यन्त भयानक दुःख उत्पन्न होता है, उसको जानते हुए भी वह मूर्खा पीड़ा भुला कर निश्चय प्रसन्न हो पति की फिर (उसी भाव) से सेवा करती है ॥२॥

उपमानप्रमाण और उदाहरण का सन्देहसङ्कर है।

लोलुप भ्रमत गृहप ज्यौं जहँ तहँ, सिर पदत्रान बजै। तदपि अधम विचरत तेहि मारग, कबहुँ न मूढ़ लजै ॥ ३ ॥

जैसे अत्यन्त लालची गृहस्थ जहाँ तहाँ (धनिकों के दरवाजे पर) घूमते फिरते हैं और उनके सिर पर जूतियाँ पड़ती हैं, तो भी वे नीच मूर्ख उसी रास्ते में चलते हैं कभी लज्जित नहीं होते ॥३॥

अधिकांश मुद्रित प्रतियों में 'लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यों जहँ तहँ शिर पदत्रान बजै' पाठ है। गृहपशु का अर्थ कुत्ते का करते हैं; परन्तु यहाँ कुत्ते से प्रयोजन नहीं है और 'गृहपशु' से छन्दोभङ्ग दोष आता है। शुद्धपाठ 'गृहप' है, अर्थ न समझ कर लोगों ने उसे बढ़ा कर बना दिया और उसमें कुत्ते के अर्थ की कल्पना की है।

हौं हारेउँ करि जतन विविध विधि, अतिसय प्रबल अजै। तुलसिदास बस होइ तबहि जब, प्रेरक-प्रभु बरजै ॥ ४ ॥

मैं अनेक प्रकार का उपाय करके हार गया, वह अत्यन्त बलवान जीतने के योग्य नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि वशीभूत तो तभी होगा जब आज्ञा करनेवाले प्रभु रामचन्द्रजी उसको मना करेंगे ॥४॥

(९०)

ऐसी मूढ़ता या मन की। परिहरि रामभगति-सुरसरिता, आस करत ओस-कन की ॥ १ ॥

इस मन की ऐसी मूर्खता है कि रामभक्ति रूपी गङ्गाजी को छोड़ कर ओस के कणों की आशा करता है ॥१॥

धूम समूह निरखि चातक ज्यौं, तृषित जानि मति घन की।
नहिँ तहँ सीतलता न पानि पुनि, हानि होत लोचन की ॥ २ ॥

जैसे बहुत सा धुवाँ देख कर प्यासा पपीहा उसको बुद्धि से बादल समझे परन्तु वहाँ ठण्ढक नहीं, फिर जल भी नहीं है, नेत्रों की हानि होती है ॥२॥

'उपमानप्रमाण अलंकार' है।

ज्यौं गच काँच बिलोकि स्येन जड़, छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस,छत बिसारि आनन की ॥ ३ ॥

जैसे शीशे के चबूतरे में मूर्ख बाज पक्षी अपने शरीर की परछाहीं देख कर भूख से अत्यन्त अधीर हुआ चोंच की चोट भूल कर उस पर टूटता है ॥३॥

कहँ लौं कहउँ कुचाल कृपानिधि, जानत हौ गति जन की।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख, करहु लाज निज पन की ॥४॥

हे कृपानिधान प्रभु रामचन्द्रजी ! कहाँ तक इसकी कुचाल कहूँ, आप सेवक की दशा को जानते हैं। अपनी प्रतिज्ञा (शरणागत पालन की) लाज कीजिये, तुलसीदास के कठिन दुःख को हर लीजिये ॥४॥

हृदय में मन ने अपनी मूर्खता से घना ऊधम मचा रक्खा है, आप की भक्ति छोड़ कर बार बार दुखदाई विषयों में दौड़ता रहता है। आप अन्तर्य्यामी हैं सब जानते हैं इससे इसकी कुचाल न कह कर प्रार्थी हूँ, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(९१)

नाचतही निसि दिवस मरेउ। तबही तैं न भयउँ हरि थिर जब तैं जिव नाम धरेउ ॥ १ ॥

हे भगवन् ! जब से आपने मेरी जीव संज्ञा रख दी तब से मैं स्थिर नहीं हुआ, दिन रात नाचते ही मर रहा हूँ ॥१॥

बहु बासना बिबिध कञ्चुक, भूषन लोभादि भरेउ। चर अरु अचर गगन जल थल महँ, कवन न स्वाँग करेउ ॥ २ ॥

बहुत सी कामना रूपी अनेक प्रकार के वस्त्र और लोभ आदि षड्वर्ग रूपी गहनों से भरपूर हूँ। जङ्गम और स्थावर जीवों में आकाश, जल तथा स्थल कौन सी नकल (भड़ैती) नहीं किया अर्थात् तरह तरह के रूप बनाकर खेल की ॥२॥

देव दनुज मुनि नाग मनुज नहिँ, जाचत कोउ उबरेउ ।
मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख, काहू तौ न हरेउ ॥ ३ ॥

देवता, दैत्य, मुनि, नाग और मनुष्यों में माँगने से कोई बाकी नहीं बचा; पर मेरी भीषण दरिद्रता के दोष और दुःख को तो किसी ने दूर नहीं किया ॥३॥

थके नयन पद पानि सुमति बल, सङ्ग सकल बिछुरेउ ।
अब रघुनाथ सरन आयउ जन, भव भय बिकल डरेउ ॥ ४ ॥

आँख, पाँव, हाथ, सुबुद्धि का बल थक गया और सम्पूर्ण साथी बिछुड़ गये। अब यह जन संसार के डर से डर कर व्याकुल हुआ रघुनाथजी की शरण में आया है ॥४॥

यहाँ अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है कि जब तक नेत्र, पद, पानि और मति में बल था तब तक देवता, दैत्य, मुनि और मनुष्यों से याचना करने के लिये दौड़ता रहा। जब इन्होंने साथ छोड़ दिया अर्थात् सारी इन्द्रियाँ शक्तिहत हो गई तब आप की शरण आया हूँ मेरी रक्षा कीजिये।

जेहि गुन तेँ बस होहु रीझि करि, मोहि सो सब बिसरेउ ।
तुलसिदास निज भवन द्वार प्रभु, दीजे रहन परेउ ॥ ५ ॥

जिस गुण से प्रसन्न होकर आप वश में होते हैं, मुझे वह सब भूल गया है। हे प्रभो! तुलसीदास को अपने मन्दिर के दरवाजे पर पड़ा रहने दीजिये ॥५॥

(९२)

माधव मो सम मन्द न कोऊ। जद्यपि मीन-पतङ्ग हीन मति, मोहि न पूजइ ओऊ ॥ १ ॥

हे माधव! मेरे समान अनाड़ी कोई नहीं है। यद्यपि मछली और पाँखी दोनों बुद्धिहीन हैं; पर वे भी मेरी बराबरी में नहीं पहुँच सकते ॥१॥

उपमेय की बराबरी में उपमानों का न तुलना 'चतुर्थ प्रतीप अलंकार' है।

रुचिर रूप आहार बस्य उन्ह, पावक लोह न जानेउ ।
देखत बिपति बिषय न तजत हौँ, ता तेँ अधिक अयानेउ ॥२॥

वे क्षुधा के अधीन हो सुन्दर रूप देख कर अग्नि और लोह को (मृत्यु का कारण) नहीं जानते; पर मैं विषय की विपत्तियों को देखते हुए भी उसे त्यागता नहीं हूँ, इसलिये उनसे बढ़कर मूर्ख हूँ ॥२॥

'उपमान मछली और पाँखी दोनों बिना जाने प्राण गँवाते हैं, उपमेय मैं जान बूझ कर विषयों को छोड़ता नहीं हूँ । उपमान से उपमेय में मूर्खत्व अधिक होना वर्णन 'व्यतिरेक अलंकार' है ।

महा मोह सरिता अपार महँ, सन्तत फिरत बहेउ।
श्रीहरि-चरन-कमल नौका तजि, फिरि फिरि फेन गहेउ ॥ ३ ॥

महामोह रूपी अपार नदी में निरन्तर बहता फिरता हूँ । रामचन्द्रजी के चरण-कमल रूपी नौका को छोड़ कर बार बार फेन पकड़ता हूँ ॥३॥

अत्यन्त अज्ञान पर अपार नदी का आरोप, हरि-चरण-कमलों में नौका का और विषयानन्द में फेन का आरोपण इसलिये किया कि नदी में बहनेवाला प्राणी नाव के आधार से बच सकता है; किन्तु फेन पकड़ने से रक्षा नहीं हो सकती 'परम्परितरूपक अलंकार' है। केवल उपमान फेन कह कर विषयाधार-उपमेय प्रकट करना 'रूपकातिशयोक्ति अलंकार' है। 'फिरि' शब्द भाव की रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश' है ।

अस्थि पुरातन छुधित स्वान अति, ज्यौं भरि मुख पकरै।
निज तालू-गत रुधिर पान करि, मन सन्तोष धरै ॥ ४ ॥

जैसे अत्यन्त भूखा कुत्ता पुरानी हड्डी मुँह भर कर पकड़े और अपने ही तालू से निकले रक्त को पान करके मन में सन्तोष धारण करे (मेरी यही दशा है) ॥४॥

उपमानप्रमाण और उदाहरण का सन्देहसङ्कर है ।

परम कठिन भव-व्याल ग्रसित हौं, त्रसित भयउँ अति भारी । चाहत अभय भेक-सरनागत, खगपति नाथ बिसारी ॥५॥

मैं अत्यन्त भयङ्कर संसार रूपी सर्प से ग्रसा हुआ बहुत ही भयभीत हो रहा हूँ । हे नाथ ! गरुड़ को भूल कर मेंढक की शरण में निर्भय होना चाहता हूँ । ॥५॥

समअभेद रूपक और उपमानप्रमाण की संसृष्टि है । ललित भी है ।

जलचर-बृन्द जाल अन्तर्गत, होत सिमिटि एक पासा।
एकहि एक खात लालच बस, नहिँ देखत निज नासा ॥ ६ ॥

जलजीवों के झुण्ड जाल के भीतर बटुर कर एक साथ इकट्ठे होते हैं वे लालच वश एक दूसरे को खाते हैं और अपना नाश नहीं देखते (कि मैं भी काल के मुख में हूँ) ॥६॥

मेरे अघ सारद अनेक जुग, गनत पार नहिँ पावै।
तुलसीदास पतित-पावन प्रभु, यह भरोस जिय आवै ॥ ७ ॥

मेरे पापों को अनन्त युगों तक कह कर सरस्वती पार नहीं पा सकती । तुलसीदास के मन में एक यही भरोसा आता है कि प्रभु रामचन्द्रजी पापियों को पवित्र करनेवाले हैं ॥७॥

यहाँ लक्षणामूलक अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है कि चाहे मैं कैसा ही पापी हूँ, पर प्रभु पतित-पावन हैं वे अवश्य ही मेरा उद्धार करेंगे ।

(९३)

कृपा सो कहा बिसारी राम । जेहि करुना सुनि स्रवन दीन दुख, धावत हौ तजि धाम ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी ! वह कृपा आप कैसे भूल गये कि जिस दया से दीनों के दुःख कान से सुन कर वैकुण्ठ-धाम छोड़ कर दौड़ते हो ॥१॥

नागराज निज बल बिचारि हिय,-हारि चरन चित दीन्ह । आरत-गिरा सुनत खगपति तजि, चलत बिलम्ब न कीन्ह ॥२॥

गजेन्द्र ने अपना बल विचार कर हृदय में हार मान कर चरणों में मन लगाया । उसकी दुःख भरी वाणी सुनते ही गरुड़ को छोड़ कर आपने चलने में देरी नहीं की ॥२॥

दिति-सुत त्रास त्रसित निसि दिन, प्रहलाद प्रतिज्ञा राखी । अतुलित बल मृगराज-मनुज तनु, दनुज हतेउ सुर साखी ॥३॥

दिति के पुत्र (हिरण्यकशिपु) के भय से रातोदिन भयभीत प्रह्लाद-भक्त की आपने प्रतिज्ञा रख ली । अत्यन्त बलवान सिंह और मनुष्य (नृसिंह) रूप धारण कर दैत्य को मारा, इसके देवता साक्षी (गवाह) हैं ॥३॥

प्रह्लाद का वृत्तान्त विनयकोश में 'प्रह्लाद' शब्द देखो ।

भूप सदसि नृप बल बिलोकि प्रभु,-राखु कहेउ नर-नारी । बसन पूरि अरि दर्प दूर करि,-भूरि कृपा दनुजारी ॥ ४ ॥

राजसभा में राजा दुर्योधन का अत्याचार देख कर अर्जुन की स्त्री (द्रौपदी) ने कहा—हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये । वस्त्र बढ़ा कर शत्रु के घमण्ड को दूर कर दिया, हे दैत्यारि ! आप बड़े ही दयालु हैं ॥४॥

द्रौपदी का विशेष वृत्तान्त जानने के लिये विनयकोश में 'द्रौपदी और द्रुपद' दोनों शब्दों की व्याख्या देखिये ।

एक एक रिपु तेँ त्रासित जन, तुम्ह राखेउ रघुबीर । अब मोहि देत दुसह दुख बहु रिपु, कस न हरहु भव-भीर ॥ ५ ॥

हे रघुवीर ! एक एक शत्रु से भयभीत दासों की आपने रक्षा की । अब मुझे बहुत से वैरी भीषण दुःख देते हैं, मेरा संसारी-भय क्यों नहीं दूर करते हो ? ॥५॥

लोभ ग्राह दनुजेस-क्रोध कुरुराज,-बन्धु खल मार।
तुलसिदास प्रभु यह दारुन दुख,भञ्जहु राम उदार ॥ ६ ॥

लोभ रूपी मगर, क्रोध रूपी हिरण्यकशिपु और कामदेव रूपी दुर्योधन का भाई दुष्ट दुःशासन है। हे उदार स्वामी रामचन्द्रजी ! यह भयानक दुःख चूर चूर कीजिये ॥६॥

पूर्वार्द्ध में समअभेद रूपक है। यहाँ 'उदार' संज्ञा साभिप्राय है; क्योंकि महान् स्वामी ही विकराल कष्ट ध्वंस करने में समर्थ हो सकता है। यह परिकराङ्कुर अलंकार' है। 'दुःशासन' का परिचय भी विनयकोश में देखिये।

(९४)

काहे तैं हरि मोहि बिसारो। जानत निज महिमा मेरे
अघ, तदपि न नाथ सँभारो ॥ १ ॥

हे भगवन् ! किस कारण से आपने मुझे भुला दिया है ? हे नाथ ! अपनी महिमा और मेरे पाप को आप जानते हैं तो भी रक्षा नहीं करते हो ॥१॥

पतित पुनीत दीन-हित असरन,-सरन कहत स्रुति चारो।
हौँ नहिँ अधम सभीत दीन किधौँ, वेदन्ह मृषा पुकारो ॥ २ ॥

चारों वेद आप को पतित-पावन, दीन-हितकारी और अशरण-शरण कहते हैं, तो क्या मैं पतित, भयभीत और दीन नहीं हूँ या कि वेदों ने झूठ ही बड़ाई की है ? ॥२॥

जब कि मैं अधम, सभीत और दीन हूँ। आप पतित-पावन, भय-नाशक और दीनहितकारी हैं तो भी मेरी सुध नहीं करते हैं। मुझे सन्देह होता है कि मैं वैसा नहीं हूँ या कि वेदों ने मिथ्या कहा है। तथ्यातथ्य का निश्चय न होकर संशय बना ही रहना 'सन्देह अलंकार' है।

खग गनिका गज व्याध पाँति जहँ, तहँ हौँ हूँ बैठारो।
अब केहि लाज कृपानिधान परसत पनवारो फारो ॥ ३ ॥

गिद्ध, वेश्या, हाथी और व्याधा की पंक्ति जहाँ है वहाँ मुझे भी बैठाइये। हे कृपानिधान ! अब कौन सी लाज से परोसते हुए पत्तल फाड़ते हो ॥३॥

यहाँ कहना तो यह है कि आपने गिद्ध गणिका आदि असंख्यों पापियों को शरण में लिया, तब तुलसी पापी को शरण में लेने से क्यों आनाकानी करते हो ? इस बात को सीधे न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कथन करना 'ललित अलंकार' है।

जौँ कलिकाल प्रबल होतो अति, तुव निदेस तैं न्यारो।
तौ तजि रोस भरोस दोष गुन, तेहि भजते तजि गारो ॥ ४ ॥

यदि कलिकाल आप की आज्ञा से भिन्न अत्यन्त जोरावर होता तो क्रोध से उसका दोष कहना और आप के गुणों का भरोसा छोड़ इसका गर्व त्याग कर उसी का भजन करते ॥४॥

कलिकाल पर रोष कर उसका दोष कहना और आप के गुणों पर गर्व के साथ भरोसा रखना, इस कथन में 'यथासंख्य अलंकार' है।

मसक विरञ्चि विरञ्चि मसक सम, करहु प्रभाउ तिहारो।
अस सामर्थ्य अछत मोहि त्यागहु, नाथ तहाँ कछु चारो ॥ ५ ॥

मसा को ब्रह्मा और ब्रह्मा को मसा के समान कर सकते हो, इतनी बड़ी आप की महिमा है। ऐसी शक्ति रहते हुए मुझे त्यागते हो, हे नाथ ! तब वहाँ मेरा कुछ वश है ? ॥५॥

'विरञ्चि' और 'मसक' शब्द भाव की रुचिरता के लिये दो दो बार आये 'पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार' है। दैन्यसञ्चारी भाव है।

नाहिं न नरक परत मो कहँ डर, जद्यपि हौं अति हारो।
यह बड़ि त्रास दासतुलसी प्रभु, नामहुँ पाप न जारो ॥ ६ ॥

यद्यपि मैं नरक भोगते भोगते बहुत थक गया हूँ तो भी मुझ को उसमें पड़ने का डर नहीं है। हे प्रभो ! यह बड़ा डर हो रहा है कि तुलसीदास के पाप को नाम भी नहीं जला सका ॥६॥

'वारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ' इतनी बड़ी नाम की महिमा तुलसी के बदौलत झूठ होना चाहती है ? मुझे इसकी बड़ी त्रास है और नरक में पड़ने का डर नहीं है; क्योंकि मैं नारकी हूँ मेरे लिये नरक में जाना कोई नई बात नहीं है। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(९५)

तौ न मोर अघ अवगुन गनिहैं। जौं जमराज काज सब परिहरि, इहइ ख्याल उर अनिहैं ॥ १ ॥

यदि यमराज अपना सब काम छोड़ कर यही विचार मन में ले आवेंगे (कि तुलसी के पापों का लेखा किया जाय) तब भी मेरे पाप और दोषों की गणना वे न कर सकेंगे ॥१॥

चलि हैं छूटि पुञ्ज पापिन्ह के, असमञ्जस जिय जनिहैं।
देखि खलल अधिकार सुप्रभु सौं, भूरि भलाई भनिहैं ॥२॥

पापियों के झुण्ड छूट कर चल देंगे और उनके मन में असमञ्जस (पसोपेश) होगा। अपने अधिकार में बाधा देख कर वे सुन्दर स्वामी (आप) से मेरी बहुत भलाई कहेंगे ॥२॥

मेरे पाप और दुर्गुण इतने अधिक हैं कि यमराज उनका झटपट लेखा कर न सकेंगे, इस कार्य में उन्हें युगों लग जायगा। न्याय के लिये जो अन्यान्य पापी यमपुरी में आवेंगे यमराज

को फुरसत न रहेगी इससे उनका समय पर न्याय न होगा और वे छुटकारा पा कर चल देंगे। तब यमराज को चिन्ता होगी कि तुलसी पापी क्या आया मानों मेरे लिये बला आ गई है। न तो इसके पापों का लेखा समाप्त होगा और न मेरे इजलास का काम होने पावेगा इसलिये किसी हिकमत से इसको यहाँ से हटाना चाहिये। यह सोच कर अपने कल्याण के लिये वे कौशल-पूर्वक आप से मेरी बहुत बड़ाई करेंगे कि यह पापी नहीं, आप का सच्चा प्रेमी भक्त-शिरोमणि है इसको अपने धाम में ले जाइये। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

हँसि करिहैं परतीति भगति की, भगत-सिरोमनि मनिहैं।
ज्यौं त्यौं तुलसिदास कोसलपति, अपनायेहि पर बनिहैं॥ ३॥

हँस कर आप भक्ति का विश्वास करेंगे और मुझे भक्तशिरोमणि मानेंगे। हे कोशलेन्द्र-भगवान! जिस किसी तरह से तुलसीदास को अपनाने ही पर बनेगा॥३॥

भक्ति आप को परम प्यारी है इस कारण यमराज की बनावटी बात पर भक्ति के नाते विश्वास करके मुझे भागवत मान कर अपनाना पड़ेगा, अन्यथा भक्ति की महिमा में न्यूनता आवेगी जिसको आप देख नहीं सकते। यह लक्षणामूलक अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है।

(९६)

जौं जिय धरिहउ अवगुन जन के। तौ क्यौं कटत सुकृत नख तैं मो पै, बिपुल बृन्द अघ बन के॥ १॥

यदि आप दास के अवगुणों को मन में ले आवेंगे तो पुण्य रूपी नखों से मेरे विशाल झुण्ड के झुण्ड पाप रूपी वन कैसे कटेंगे?॥१॥

पाप समूह पर वन का आरोप और अपने पुण्यों पर नाखून का आरोपण इसलिये किया कि जङ्गल काटने के लिये कुल्हाड़ा समर्थ है नख नहीं, 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अपने पुण्यों की अल्पता व्यञ्जित करने की ध्वनि है और कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ प्रगट होना कि नहीं कट सकेंगे 'वक्रोक्ति अलंकार' है।

कहिहै कवन कलुष मेरे कृत, करम बचन अरु मन के।
हारहिं कोटि सेष सारद स्रुति, गिनत एक एक छन के॥ २॥

मेरे कर्म, वचन और मन से किये पापों को कौन कहेगा? करोड़ों शेष, सरस्वती और वेद एक एक क्षण के पापों की गिनती करने में हार जाँयगे॥२॥

शेष, सरस्वति और वेदों को कथन के अयोग्य ठहरा कर अपने पापों की अतिशय अपारता कथन 'सम्बन्धातिशयोक्ति अलंकार' है।

जौं चित चढ़इ नाम महिमा निज,-गुन-गन पावन पन के।
तौ तुलसिहि तारिहौ बिप्र ज्यौं, दसन तोरि जमगन के॥ ३॥

यदि नाम की महिमा, अपने पवित्र गुण-समूह और प्रतिज्ञा की याद चित्त पर चढ़ेगी तो अजामिल की तरह यमदूतों के दाँत तोड़ कर तुलसी को भी पार कीजियेगा ॥३॥

(९७)

जौं हरि जन के अवगुन गहते। तौ सुरपति कुरुराज बालि सौं, कत हठि बैर बेसहते ॥ १ ॥

यदि भगवान अपने दासों के दोषों को पकड़ते (मन में लाते) तो इन्द्र, दुर्योधन और वाली से हठ करके काहे को शत्रुता खरीदते ॥१॥

सत्यभामा के लिये इन्द्र से, पाण्डवों के अर्थ दुर्योधन से और सुग्रीव के हेतु वाली से वैरत्व मोल लिया।

जौं जप जोग जाग व्रत बरजित, केवल प्रेम न चहते। तौ कत सुर मुनिवर बिहाइ ब्रज, गोप-गेह बसि रहते ॥ २ ॥

यदि जप, योग, यज्ञ और व्रत के सिवा केवल प्रेम न चाहते होते तो देवता तथा मुनिवरों को छोड़ कर ब्रज में अहीरों के घर निवास करते ? ॥२॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा यह अर्थ प्रकट होना कि भगवान केवल प्रेम के भूखे हैं, इसी से देवता मुनियों के पवित्र मन्दिर छोड़ कर अहीरों के घर में बसे 'वक्रोक्ति अलंकार' है।

जौं जहँ तहँ पन राखि भगत को, भजन प्रभाउ न कहते। तौ कलि कठिन करम मारग जड़,-हम केहि भाँति निबहते ॥३॥

यदि जहाँ तहाँ भक्तों की प्रतिज्ञा पूरी करके भजन की महिमा न कहते तो इस कठिन कलि के कर्म-मार्ग में हम सरीखे मूर्खों का निर्वाह किस तरह होता ? ॥३॥

जौं सुत हित लिय नाम अजामिल के अघ अमित न दहते। तौ जमभट साँसति-हर हम से, वृषभ खोजि खोजि नहते ॥ ४ ॥

यदि पुत्र के हेतु नाम लेने से अजामिल के अपार पापों को न भस्म किये होते तो यमराज के शूरवीर दूत हमारे समान बैलों को खोज खोज कर दुर्दशा रूपी हल में जोतते ॥४॥

उपमा, रूपक, प्रमाण और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

जौं जग बिदित पतित-पावन अति, बाँकुर बिरद न बहते। तौ बहु कलप कुटिल तुलसी से, सपनेहुँ सुगति न लहते ॥५॥

यदि पापियों को पवित्र करनेवाली अत्यन्त बाँकी नामवरी जगत में प्रसिद्ध करके न फैलाये होते तो तुलसी के समान खल बहुत कल्प पर्यन्त सपने में भी अच्छी गति न पाते ॥५॥

(९८)

असि हरि करत दास पर प्रीति । निज प्रभुता बिसारि जन के बस, होत सदा यह रीति ॥ १ ॥

अपने दासों पर भगवान ऐसी प्रीति करते हैं कि अपनी बड़ाई भुला कर भक्तों के वश में हो जाते हैं, यह सदा से उनकी रीति है ॥१॥

जिन्ह बाँधे सुर असुर नाग नर, प्रबल करम की डोरी । सोइ अबिछिन्न ब्रह्म जसुमति हठि, बाँधेउ सकत न छोरी ॥२॥

जिन्हों ने देवता, दैत्य, नाग और मनुष्यों को कर्म की बड़ी जोरावर डोरी से बाँध रक्खा है । उन्हीं अखण्ड ब्रह्म आदिपुरुष को यशोदाजी ने हठ करके बाँध दिया और वे उस कृत्रिम बन्धन को छुड़ा न सके ॥२॥

ब्रह्म का रस्सी से बाँधा जाना, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है । भगवान भक्तों पर ऐसी कृपा करते हैं, इसका समस्त पद में प्रमाण कथन 'उपमानप्रमाण अलंकार' है ।

जाकी माया बस बिरञ्चि सिव, नाचत पार न पायो । करतल ताल बजाइ ग्वाल,-जुबतिन्ह सोइ नाथ नचायो ॥३॥

जिनकी माया के अधीन होकर ब्रह्मा और शिवजी ने नाचते हुए पार नहीं पाया । उन्हीं स्वामी को अहीरों की स्त्रियों ने हाथ की ताली बजा कर नाच नचाया ॥३॥

बिस्वम्भर श्रीपति त्रिभुवन-पति, बेद बिदित यह लीख । बलि सौँ कछु न चली प्रभुता बरु, होइ द्विज माँगी भीख ॥४॥

यह निशान वेद में प्रसिद्ध है कि विश्वपोषण, लक्ष्मीकान्त और तीनों लोकों के मालिक (होने पर भी भक्त राजा) बलि से कुछ महिमा नहीं चली वरन् ब्राह्मण हो कर भीख माँगी ॥४॥

जाको नाम लिये छूटत भव जनम मरन दुख भार । अम्बरीष हित लागि कृपानिधि, सोइ जनमे दस बार ॥ ५ ॥

जिनका नाम लेने से दुःख का भार संसार में जन्म मृत्यु का होना छूट जाता है वे ही कृपानिधान (परमात्मा) राजा अम्बरीष की भलाई के लिये दस बार जन्मे ! ॥५॥

अम्बरीष और बलि आदि ऐतिहासिक शब्दों को विनयकोश में देखिये ।

जोग बिराग ध्यान जप तप करि, जेहि खोजत मुनि-ज्ञानी ।
बानर भालु चपल पसु पाँवर, नाथ तहाँ रति मानी ॥ ६ ॥

योग, वैराग्य, ध्यान, जप और तप करके जिन्हें ज्ञानी मुनि खोजते हैं उन्हीं स्वामी ने चञ्चल नीच पशु वानर और भालुओं से प्रेम माना ! ॥६॥

लोकपाल जम काल पवन रवि, ससि सब आज्ञाकारी ।
तुलसिदास प्रभु उग्रसेन के, द्वार बेत कर धारी ॥ ७ ॥

लोकपाल, यम, काल, पवन, सूर्य्य, चन्द्रमा सब जिनके आज्ञाकारी हैं । तुलसीदासजी कहते हैं वे ही प्रभु रामचन्द्रजी उग्रसेन भक्त के दरवाजे पर हाथ में छड़ी ले कर द्वारपाल बने थे ॥७॥

(९९)

बिरद गरीब-निवाज राम को । गावत बेद पुरान सम्भु सुक, प्रगट प्रभाव नाम को ॥ १ ॥

गरीबों पर दया करना रामचन्द्रजी की नामवरी है । जिनके नाम की महिमा प्रसिद्ध है, वेद, पुराण, शिवजी, शुकदेव मुनि गाते हैं ॥१॥

रामचन्द्रजी गरीबनिवाज हैं, इसको वेदपुराणादि गाते हैं 'शब्दप्रमाण अलंकार' है ।

ध्रुव प्रहलाद बिभीषन कपि जदुपति पांडव सुदाम को ।
लोक सुजस परलोक सुगति इनमें है को राम काम को ॥ २ ॥

ध्रुव, प्रह्लाद, विभीषण, सुग्रीव, ययाति, युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई और सुदामा को लोक में सुन्दर यशस्वी बनाकर परलोक में अच्छी गति दी, इनमें रामचन्द्रजी के काम का (उपकारी) कौन है ? ॥२॥

यहाँ कंठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ भासित होना कि कोई भी रामचन्द्रजी के उपकारी नहीं हैं 'वक्रोक्ति अलंकार' है ।

गनिका कोल किरात आदिकबि, इन्ह तें अधिक बाम को ।
बाजिमेध कब कियउ अजामिल, गज गायक कब साम को ॥ ३ ॥

वेश्या, म्लेच्छ, शवर, आदिकवि इनसे बढ़ कर कुटिल कौन था ? अजामिल ने कब अश्वमेध किया और हाथी कब सामवेद का गानेवाला हुआ था ? (कभी नहीं) ॥३॥

यहाँ भी वक्रोक्ति है और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

छली मलीन हीन सबही अँग, तुलसी सौं छीन छाम को ।
नाम नरेस प्रताप प्रबल जग, जुग जुग चालत चाम को ॥ ४ ॥

तुलसी के समान कपटी, पापी, सभी अङ्गों (शुभ साधनों) से रहित दुबला पतला कौन है ? राम-नाम रूपी राजा के प्रबल प्रताप से संसार में युग युग से चाम का सिक्का चलता आता है ॥४॥

यहाँ कहना तो यह है कि नाम के प्रताप से युग युग पर्यन्त पापी पवित्र होते आये हैं, इस बात को सीधे न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कथन करना 'ललित अलंकार' है। युग शब्द में 'पुनरुक्तिप्रकाश' है और अनुप्रास भी है ।

(१००)

सुनत सीतापति सील सुभाउ । मोद न मन तन पुलक नयन जल, सो नर खेंहर खाउ ॥ १ ॥

सीतानाथ के शील स्वभाव को सुनते ही जिसका मन आनन्दित न हो, शरीर पुलकायमान और नेत्रों में प्रेमाश्रु न उमड़ा वह मनुष्य धूल खानेवाला (कीड़े मकोड़े के समान निषिद्ध जीव) है ॥१॥

स, म, न और ख अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास और असत् दो असम वाक्यों की समता में 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है ।

सिसुपन तें पितु मातु बन्धु गुरु, सेवक सचिव सखाउ ।
कहत राम बिधु-बदन रिसौंहैं, सपनेहुँ लखेउ न काउ ॥ २ ॥

लड़कपन से पिता, माता, भाई, गुरु, सेवक, मन्त्री और मित्र ने भी रामचन्द्रजी के मुख-चन्द्र को क्रोधयुक्त कभी सपने में भी नहीं देखा, सब ऐसा कहते हैं ॥२॥

खेलत सङ्ग अनुज बालक नित, जोगवत अनट अपाउ ।
जीति हारि चुचकारि दुलारत- देत दियावत दाउ ॥ ३ ॥

छोटे भाइयों और बालक-मित्रों के साथ नित्य खेलते हुए अत्याचार और अन्याय बचाते थे । अपनी जीती हुई बाजी हार मान कर चुमकार कर (प्यार के साथ) दाव देते और दूसरों को दिलवाते थे ॥३॥

सिला साप सन्ताप बिगत भइ, परसत पावन पाउ ।
दई सुगति सो न हेरि हरष हिय, चरन छुये को पछिताउ ॥४॥

शिला (अहल्या) पवित्र चरणों के स्पर्श से शाप के दुःख से छूट गई। उसको अच्छी गति दी यह देख कर हृदय में हर्ष नहीं हुआ वरन् पाँव से छूने का पछतावा हुआ ॥४॥

भव-धनु भञ्जि निदरि भूपति, भृगुनाथ खाइ गये ताउ ।
छमि अपराध छमाय पाँय परि, इतो न अनत समाउ ॥ ५ ॥

शिवजी के धनुष को तोड़ कर घमण्डी राजाओं का तिरस्कार किया जिससे परशुरामजी क्रोध से उबल पड़े। उनके अपराध को क्षमा करके पाँव पड़ कर आप क्षमा प्रार्थी हुए, इतनी सहनशीलता दूसरे में नहीं है ॥५॥

कहेउ राज वन दियेउ नारि-बस, गरि गलानि गये राउ ।
ता कुमातु को मन जोगवत ज्यौँ, निज तन मरम-कुघाउ ॥ ६ ॥

राज्य देना कह कर स्त्री के अधीन हो वन दिया वरन् राजा उस मनस्ताप से गल गये। ऐसी नीच माता के मन को कैसे बचाते रहे जैसे अपने शरीर के मर्म स्थल के बुरे घाव को लोग बचाते हैं ॥६॥

उस कुमाता का मन जोगवते थे, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे लोग अपने शरीर के मर्म स्थान के घाव को बचाते हैं 'उदाहरण अलंकार' है।

कपि सेवा बस भये कनौड़े, कहेउ पवन-सुत आउ ।
देबे को न कछू रिनियाँ हौँ, धनिक तू पत्र लिखाउ ॥ ७ ॥

हनूमानजी की सेवा से उपकार के बोझ से दब कर उनके वश में हुए और कहा—हे पवनकुमार! आओ, मैं तुम्हारा ऋणी हूँ और तुम मेरे साहूकार (महाजन) हो, मेरे पास देने को कुछ नहीं है तुम मुझ से दस्तावेज लिखा लो ॥७॥

जब तुम्हारे उपकार के योग्य सामग्री मेरे पास प्रस्तुत होगी तब प्रत्युपकार करके ऋण से मुक्त हूँगा, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

अपनायउ सुग्रीव बिभीषन, तिन्ह न तजेउ छल-छाउ ।
भरत सभा सनमानि सराहत, होत न हृदय अघाउ ॥ ८ ॥

सुग्रीव और विभीषण को अपनाया उन्हों ने छलबाजी नहीं छोड़ी। सभा में उनका सन्मान करके भरतजी से बड़ाई करते हुए हृदय में अघाव (सन्तोष) नहीं होता था ॥८॥

निज करुना करतूति भगत पर, चपत चलत चरचाउ ।
सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत, सुनत कहत फिर गाउ ॥ ९ ॥

अपनी दया की करनी जो भक्तों पर करते हैं उसकी चर्चा चलने से लज्जित होते हैं। एक बार प्रणाम करने से विनीत जनों के यश वर्णन करते, सुनते और बार बार गान करके कहते हैं ॥९॥

समुझि, समुझि गुन ग्राम राम के, उर अनुराग बढ़ाउ।
तुलसिदास अनयास राम-पद, पइहै प्रेम पसाउ ॥१०॥

रामचन्द्रजी के गुण-समूह समझ समझ कर हृदय में प्रेम बढ़ाओ। तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना परिश्रम ही रामचन्द्रजी के चरणों के प्रेम से स्वामी की प्रसन्नता पाओगे अर्थात् प्रेम से प्रभु अवश्य प्रसन्न होते हैं ॥१०॥

(१०१)

जाउँ कहाँ तजि चरन तिहारे। काको नाम पतित-पावन जग, केहि अति दीन पियारे ॥ १ ॥

आप के चरणों को छोड़ कर कहाँ जाऊँ ? संसार में किसका नाम पापियों को पवित्र करनेवाला है और किस को ग़रीब अत्यन्त प्यारे हैं ॥१॥

कवन देव बरिआइ बिरद हित, हठि हठि अधम उधारे।
खग मृग व्याध पखान बिटप जड़, जवन कवन सुर तारे ॥ २ ॥

कौन देवता जोरावरी से नामवरी के लिये बार बार हठ करके अधमों का उद्धार किया है ? पक्षी, (जटायु) मृग, (हाथी वानर भालु) व्याध, (वाल्मीकि) पत्थर, (अहल्या) वृक्ष, (यमलार्जुन) दण्डकवन और म्लेच्छ को किस देवता ने (संसार-समुद्र से) पार किया है ? ॥२॥

देव दनुज मुनि नाग मनुज सब, माया बिबस बिचारे।
तिन्ह के हाथ दासतुलसी प्रभु, कहा अपनपौ हारे ॥ ३ ॥

देवता, दैत्य, मुनि, नाग और मनुष्य बेचारे सब माया के अधीन हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि—हे नाथ ! उनके हाथ अपने को हारने से क्या लाभ। (कुछ नहीं) ॥३॥

जो स्वयम् माया के वशवर्ती हैं वे मुझे कैसे मुक्त कर सकेंगे, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१०२)

हरि तुम्ह बहुत अनुग्रह कीन्हौं। साधन-धाम बिबुध दुर्लभ तनु, मोहि कृपा करि दीन्हौं ॥ १ ॥

हे भगवन्! आप ने बड़ी कृपा की जो साधनों का स्थान देवताओं को दुर्लभ मनुष्य-देह मुझ को दया करके दिया ॥१॥

कोटिहु मुख कहि जाइ न प्रभु के, एक एक उपकार।
तदपि नाथ कछु और माँगिहउँ, दीजे परम उदार ॥ २ ॥

यद्यपि स्वामी के एक एक उपकार करोड़ों मुख से भी नहीं कहे जा सकते। हे नाथ! तो भी कुछ और माँगता हूँ, आप अत्युत्तम दानी हैं; दीजिये ॥२॥

बिषय बारि मन मीन भिन्न नहिं, होत कबहुँ पल एक।
ता तेँ सहिय बिपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ॥ ३ ॥

विषय रूपी जल से मन रूपी मछली कभी एक पल भर अलग नहीं होता, इस लिये अनेक योनियों में जन्म ले लेकर अत्यन्त भीषण विपत्ति सहता हूँ ॥३॥

कृपा डोरि बंसी पद-अङ्कुस, परम प्रेम मृदु चारो।
एहि बिधि बेधि हरहु मेरो दुख, कौतुक राम तिहारो ॥ ४ ॥

कृपा रूपी डोरी और चरणों के अङ्कुश रूपी कँटिया में अत्युत्तम प्रेम रूपी मुलायम चारा मिलाइये। हे रामचन्द्रजी! इस तरह चुभा कर मेरा दुःख हरिये, आप का यह खेलवाड़ है ॥४॥

विषय पर पानी का आरोप, मन पर मछली का, रामचन्द्रजी की कृपा पर डोरी का, पदाङ्कुश पर बनसी का और परम प्रेम पर कोमल चारे का आरोपण किया गया है। एक के बिना पूरा रूपक सिद्ध न होता 'परम्परितरूपक अलंकार' है। 'कौतुक राम तिहारो' में वाच्य-सिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है कि आप के इस कुतूहल से मैं दुर्दशा से छूट जाऊँगा।

है स्रुति बिदित उपाय सकल सुर, केहि केहि दीन निहोरै।
तुलसिदास यह जीव मोह रजु, जो बाँधइ सोइ छोरै ॥ ५ ॥

वेदों में उपाय प्रसिद्ध हैं; पर यह दीन तुलसीदास समस्त देवताओं से किससे किससे निहोरा (विनती) करे, जीव को अज्ञान की रस्सी से जो बाँधता है वही छोड़ भी सकता है ॥ ५ ॥

व्यङ्गार्थ द्वारा कारण के समान कार्य्य का कथन अर्थात् जीव को जिसने मोह रज्जु से बाँध रक्खा है वही छोड़ने में भी समर्थ है 'द्वितीय सम अलङ्कार' है।

(१०२)

यह बिनती रघुबीर गोसाँई। और आस बिस्वास भरोसो, हरो जिय की जड़ताई ॥ १ ॥

हे रघुवीर गुसाँईं ! मेरी यह विनती है कि दूसरे की आशा, विश्वास और भरोसा की मूर्खता जो मन में समाई है उसको हर लीजिये ॥१॥

चहउँ न सुगति सुमति सम्पति किछु, रिधि सिधि बिपुल बड़ाई।
हेतु रहित अनुराग नाथ-पद, बढ़उ अनुदिन अधिकाई ॥ २ ॥

मैं अच्छी गति, सुबुद्धि, सम्पत्ति, समृद्धि, सिद्धि और विशाल महिमा कुछ नहीं चाहता हूँ। हे नाथ ! (एक यही चाहना है कि) आप के चरणों में दिनोदिन बिना कारण प्रेम बढ़ता जाय ॥२॥

कुटिल करम लेइ जाइ मोहि जहँ,-जहँ अपनी बरिआई।
तहाँ तहाँ जनि छोह छाड़िये, कमठ-अंड की नाँईं ॥ ३ ॥

मेरा कुटिल कर्म अपनी जोरावरी से मुझ को जहाँ जहाँ ले जाय वहाँ वहाँ कछुए के अण्डे की तरह आप छोह न त्यागिये (दया बनाये रहिये) ॥ ३ ॥

आप दया न छोड़िये, इस साधारण बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे कछुई अण्डे पर स्नेह रखती है 'उदाहरण अलंकार' है। 'कमठ' शब्द विनयकोश में देखो।

है जग मँ जहँ लगि या तनु की, प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभुही सौं, होहिं सिमिटि एकठाई ॥ ४ ॥

इस शरीर के संसार में जहाँ तक प्रीति और विश्वास के नाते हैं, तुलसीदास के वे सब इकट्ठे बटुर कर आप ही से हों ॥ ४ ॥

गुरु, पिता, माता, भाई, मित्रादि के नाते और विश्वास एक रामचन्द्रजी में हों 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(१०४)

जानकी जीवन की बलि जइहौं। मन कहइ सीय-राम-पद परिहरि, अब न कहूँ चलि जइहौं ॥ १ ॥

जानकीजी के प्राणाधार (रामचन्द्रजी) की बलि जाता हूँ। मन कहता है कि सीताजी और रामचन्द्रजी के चरणों को छोड़ कर अब कहीं चल कर न जाऊँगा ॥ १ ॥

उपजी उर प्रतीति सपनेहुँ सुख,-प्रभु-पद-बिमुख न पइहौं।
मन समेत या तनु के बासिन्ह, इहइ सिखावन दइहौं ॥ २ ॥

स्वामी के चरणों में हृदय में विश्वास उत्पन्न हुआ है वह सुख विमुख होने पर सपने में भी न पाऊँगा। मन के सहित इस शरीर के निवासियों को यही शिक्षा दूँगा ॥ २ ॥

मन, बुद्धि, चित्त, अहङ्कार, पाँचों प्राण और दसों इन्द्रियाँ सब शरीर के निवासी हैं।

स्रवनन्हि और कथा नहिं सुनिहउँ, रसना और न गइहौं ।
रोकिहउँ नयन बिलोकत औरहि, सीस ईसही नइहौं ॥ ३ ॥

कानों से दूसरों की कथा न सुनूँगा और जीभ से दूसरे का गुण न गाऊँगा। आँखों को दूसरों के देखने में रोकूँगा और मस्तक ईश्वर ही को नवाऊँगा ॥३॥

नातो नेह नाथ सौं करि सब,-नातो नेह बहइहौं ।
यह छरभार ताहि तुलसी जग जा को दास कहइहौं ॥ ४ ॥

स्नेह का नाता स्वामी से करके अन्य सब प्रेम के सम्बन्ध को दूर बहा दूँगा। तुलसी-दासजो कहते हैं कि यह कुबोझ उन्हीं पर है जिनका मैं जगत में दास कहलाऊँगा ॥४॥

मेरी इस प्रतिज्ञा का निर्वाह और सेवक की लाज रखने का बोझ स्वामी के ऊपर है। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१०५)

अबलौं नसानी अब न नसइहौं। राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे फिरि न डसइहौं ॥ १ ॥

अब तक जो बिगड़ी सो बिगड़ी; पर अब न बिगड़ने दूँगा। रामचन्द्रजी की कृपा से संसार रूपी रात्रि बीत गई और उससे मैं जाग गया। फिर बिस्तर न बिछाऊँगा ॥ १ ॥

पायेउँ नाम चारु चिन्तामनि, उर कर तें न खसइहौं ।
स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कञ्चनहिं कसइहौं ॥ २ ॥

नाम रूपी सुन्दर चिन्तामणि पा गया हूँ उसको हृदय रूपी हाथ से न गिराऊँगा। सुन्दर साँवली मूर्त्ति रूपी पवित्र कसौटी पर चित्त रूपी सुवर्ण को कसवाऊँगा ॥ २ ॥

राम-नाम और चिन्तामणि में पूर्णरूप से एकरूपता करके अधिकत्व दिखाना कि सूर्य्य का प्रकाश रात्रि में नहीं रहता, किन्तु मणि में दिन रात समान प्रकाश रहता है 'अधिक अभेद रूपक अलंकार' है। श्यामली मूर्त्ति पर कसौटी पत्थर का आरोप करके अपने चित्त पर सुवर्ण का आरोपण इसलिये किया गया कि कसौटी पर कसने से सोने के खर खोट होने की परीक्षा की जाती है। कहने का तात्पर्य्य यह कि श्याम रूप में मन लग गया तो खरा और न लगा तो खोटा समझूँगा 'परम्परित सम अभेद रूपक अलंकार' है।

परबस जानि हँसेउ निज इन्द्रिन्ह, इन्ह बस होइ न हँसइहौं ।
मन मधुकर पन करि तुलसी रघुपति-पद-पदुम बसइहौं ॥ ३ ॥

मेरी इन्द्रियाँ मुझे पराधीन जान कर हँसती हैं; किन्तु इनके अधीन हो कर हँसी न कराऊँगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि मन रूपी भ्रमर को प्रतिज्ञा करके रघुनाथजी के चरण रूपी कमल में टिकाऊँगा ॥ ३ ॥ 'सम अभेद रूपक अलंकार' है।

(१०६)

राग-रामकली।

महाराज रामादरेउ धन्य सोई। गरुअ गुन-रासि सर्बज्ञ सुकृती सुघर, सीलनिधि साधु तेहि सम न कोई ॥ १ ॥

महाराज रामचन्द्रजी ने जिसका आदर किया वह धन्य है। उसके बराबर गरुआ, गुणों का पुञ्ज, सर्व ज्ञाता, पुण्यात्मा, शोभायमान, शुद्धाचरण का भण्डार और सज्जन कोई नहीं है ॥ १ ॥
ग और स अक्षरों की आवृति में अनुप्रास है।

उपल केवट कीस भालु निसिचर सबरि, गीध सम दम दया दान हीने। नाम लिय राम किय परम पावन सकल, तरत नर जासु गुन गान कीने ॥ २ ॥

पत्थर, (अहल्या) केवट, (मलाह) वानर, भालु, राक्षस, (विभीषण) शबरी और गिद्ध सौम्यता, इन्द्रिय दमन, दया तथा दान से रहित थे। नाम लेने से रामचन्द्रजी ने सब को अत्यन्त पवित्र कर दिया जिनका गुण-गान करने से मनुष्य संसार-समुद्र से पार होते हैं ॥ २ ॥

ब्याध अपराध की साध राखी कवन, पिङ्गला कौन मति भगति भैई। कवन धौं सोमजाजी अजामिल अधम, कवन गजराज धौं बाजपेई ॥ ३ ॥

व्याधा (वाल्मीकि) ने पाप की कौन सी इच्छा बाकी रक्खी और पिङ्गला वेश्या की बुद्धि कौन सी भक्ति में सराबोर थी? पापी अजामिल न जाने कौन सा सोमयज्ञ करनेवाला था और गजेन्द्र न जाने कौन सा अश्वमेध किया था? ॥ ३ ॥
कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ भासित होना कि किसी भी यज्ञ के करनेवाले न थे 'वक्रोक्ति अलंकार' है। 'धौं' शब्द सन्देह का वाचक है, करना और न करना दोनों में किसी एक का निश्चय नहीं 'सन्देह अलंकार' है। ध, व और अ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

पंडु-सुत गोपिका बिदुर कुबरी सबहि, सोध किय सुद्धता लेस कैसो। प्रेम लखि कृष्न किय आपने तिन्हहु को, सुजस संसार हरि-हर को जैसो ॥ ४ ॥

पाण्डुपुत्र, (युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेव) अहीरिन, विदुर और कुबरी सब का पता लगाने से लेशमात्र पवित्रता कैसी? श्रीकृष्णचन्द्रजी ने प्रेम लख कर

उनको भी अपना बना लिया और उनका सुयश संसार में विष्णु तथा शिवजी जैसा (पवित्र सुहावना) प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥

जारज सन्तान, कुलटा, दासीपुत्र, नाइन-टहलुनी जो अपवित्रता से पूर्ण उनका सुन्दर यश संसार में फैला, इस बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे विष्णु और शिवजी का यश 'उदाहरण अलंकार' है। सब का संक्षिप्त वृत्तान्त विनयकोश में देखो।

कोल खल भिल्ल जमनादि खस राम कहि, नीच होइ ऊँच पद को न पायो। दीन दुख दवन श्रीरवन करुना भवन, पतित पावन बिरद बेद गायो ॥ ५ ॥

दुष्ट कोल, भील, खस और म्लेच्छ आदि नीच होने पर भी 'राम' कह कर किसने ऊँचा पद नहीं पाया ? दीन दुःख-नाशक, लक्ष्मीकान्त, दया के स्थान भगवान की पतितों को पवित्र करनेवाली नामवरी वेद गाते हैं ॥ ५ ॥

मन्द-मति कुटिल खल-तिलक तुलसी सरिस, भा न तिहुँलोक तिहुँकाल कोऊ। नाम की कानि पहिचानि जन आपनो ग्रसत कलि ब्याल रखि सरन सोऊ ॥ ६ ॥

नीचबुद्धि, कपटी और दुष्टों का तिलक तुलसी के समान तीनों लोक और तीनों काल में कोई नहीं हुआ । नाम मर्यादा का ध्यान करके अपना दास जान कर उसे भी कलिका रूपी साँप के पकड़ने से बचा कर अपने शरण में रख लिया ॥६॥

(१०७)

राग-बिलावल ।

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम। सुभग सरोरुह लोचन सुठि सुन्दर स्याम ॥ १ ॥

अयोध्या के स्वामी रामचन्द्रजी मेरे अच्छे देवता हैं, उनका सुन्दर कमल के समान नेत्र और अत्यन्त शोभन श्याम शरीर है ॥१॥

'स' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है। लोचन-उपमेय, सरोरुह-उपमान, शुभगता-धर्म है, किन्तु वाचक पद न रहने से 'वाचकलुप्तोपमा अलंकार' है।

सिय समेत सोभित सदा, छबि अमित अनङ्ग। भुज बिसाल सर-धनु धरे, कटि चारु निखङ्ग ॥ २ ॥

सीताजी के सहित सदा असंख्यों कामदेव (और रति के समान) छवि से सुशोभित हैं। विशाल भुजाओं में बाण-धनुष धारण किये हुए और कमर में सुन्दर तरकस कसे हैं ॥२॥

करोड़ों कामदेव से बढ़ कर शोभा का वर्णन 'व्यतिरेक अलंकार' है।

बलि पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति । सुमिरतही मानत भलो, पावन सब रीति ॥ ३ ॥

भेंट और शुश्रूषा नहीं चाहते, केवल प्रेम चाहते हैं। स्मरण करते ही भला मानते हैं, उनकी सब रीति पवित्र है ॥ ३ ॥

देइ सकल सुख दुख दहइ, आरतजन-बन्धु । गुन गहि अघ अवगुन हरइ, अस करुना-सिन्धु ॥ ४ ॥

समस्त सुख देते हैं और दुःख नाश करते हैं दुखीजनों के सहायक-बन्धु हैं। गुण ग्रहण करके पाप और दोषों को हर लेते हैं ऐसे दयासागर हैं ॥ ४ ॥

सब सुख देकर दुःखों को हर लेना 'परिवृत अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

देस काल पूरन सदा, बद बेद पुरान । सब को प्रभु सब मँ बसइ, सब की गति जान ॥ ५ ॥

जिनको सदा देश और काल में परिपूर्ण वेद-पुराण कहते हैं। सब के स्वामी, सब में बसे हुए और सब की गति जानते हैं ॥५॥

वेद और पुराणों के कथन का प्रमाण वर्णन 'शब्दप्रमाण अलंकार' है। 'सब' शब्द भाव की रुचिरता के लिये कई बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है।

को करि कोटिक कामना, पूजइ बहु देव । तुलसिदास तेहि सेइये, सङ्कर जेहि सेव ॥ ६ ॥

करोड़ों कामना करके बहुत से देवताओं की आराधना कौन करे ? तुलसीदासजी कहते हैं कि जिनकी सेवा शङ्करजी करते हैं तू उन्हीं (रामचन्द्रजी) की सेवा कर ॥६॥

यहाँ सीधे शब्दों में यह न कह कर कि तू रामचन्द्रजी की सेवा करे, उसको घुमा कर कहना कि जिनकी शिवजी सेवा करते हैं उनका भजन कर 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है। अन्य देवी-देवताओं की पूजा से उपेक्षा प्रकट करने में अनन्य उपासना की ध्वनि व्यञ्जित होती है।

(१०८)

बीर महा अवराधिये, साधे सिधि होइ । सकल काम पूरन करइ, जानइ सब कोइ ॥ १ ॥

महा बलवान की उपासना करनी चाहिये जिनके प्रयत्न से सिद्धि होती है। जो समस्त कामनाओं की पूर्ति करते हैं इसको सब कोई जानते हैं ॥१॥

बेगि बिलम्ब न कीजिये, लीजे उपदेस । बीजमन्त्र जपिये सोई, जो जपत महेस ॥ २ ॥

तुरन्त देरी न कीजिये बीजमन्त्र (राम-नाम) की शिक्षा लीजिये, वही जाप कीजिये जिसको शिवजी जपते हैं ॥ २ ॥

सीधे शब्दों में राम नाम का जप करो यह न कह कर बीजमन्त्र जिसको शिवजी जपते हैं उसको जपो, घुमा कर कहना 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है ।

प्रेम-बारि तरपन भलो, घृत सहज सनेह । संसय समिध अगिनि-छमा ममता-बलि-देह ॥ ३॥

प्रेम रूपी जल का उत्तम तर्पण है और स्वाभाविक स्नेह घृत है । सन्देह यज्ञ में जलाने की लकड़ी है, क्षमा और ममत्व बलिदान का अङ्ग है ॥ ३ ॥

अघ उचाटि मन बस करइ, मारइ मद मार । आकरषइ सुख सम्पदा, सन्तोष बिचार ॥ ४ ॥

(यह अनुष्ठान) पाप को दूर करके मन को वश में करता है, अहङ्कार और कामदेव को मारता है । सुख, सम्पत्ति, सन्तोष और विचार को अपनी ओर खींचता है ॥ ४ ॥

राम-नाम जप का और पुरश्चरणादि यज्ञ का यहाँ कविजी ने साङ्गोपाङ्ग रूपक बाँधा है । यह 'साङ्गरूपक अलंकार' है । एक ही जप यज्ञ से पाप का उच्चाटन, मन का वशीकरण, मद और मार का मारण, सुख-सम्पत्ति आदि का आकर्षण होना 'प्रथम व्याघात अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

जे एहि भाँति भजन किये, मिले रघुपति ताहि । तुलसिदास प्रभु पथ चढ़ेउ, जौं लेहु निबाहि ॥ ५ ॥

जिसने इस तरह भजन किये उसको रघुनाथजी मिले हैं । तुलसीदासजी कहते हैं— हे प्रभो ! मैं उसी रास्ते पर चढ़ा हूँ यदि आपनी ओर से निर्वाह कीजियेगा (तो मनकामना पूरी होगी) ॥ ५ ॥

आत्मतुष्टि, प्रमाण और सम्भावना अलंकार की संसृष्टि है ।

(१०९)

कस न करहु करुना हरे, दुख हरन मुरारि । त्रिबिध ताप सन्देह सोक, संसय भय हारि ॥ १ ॥

हे दुःख हरण मुरारि भगवन् ! मुझ पर क्यों नहीं दया करते हो ? आप तीनों ताप, सन्देह, शोक, संशय और भय के हरनेवाले हैं ॥१॥

यहाँ दुःख-हरण और मुरारि संज्ञाएँ साभिप्राय हैं, क्योंकि दुःख का हरनेवाला ही दीनों पर दयालु हो सकता है। मुर जैसे भीषण दैत्य का नाशक ही ताप, सन्देह, शोक आदि भयङ्कर शत्रुओं के दमन में समर्थ हो सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। सन्देह और संशय शब्द पर्यायवाची होने से पुनरुक्ति का आभास है; किन्तु पुनरुक्ति नहीं। एक विषयों को सुखद मानने का और दूसरा असत्य संसार को सत्य समझने का भ्रमोत्पादक 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है।

यह कलिकाल जनित मल, मति-मन्द मलिन-मन। तेहि पर प्रभु नहिँ कर सँभार, केहि भाँति जिअइ जन॥ २॥

इस कलियुग से उत्पन्न पापों द्वारा बुद्धि नीच और मन मैला हो गया है। हे प्रभो! उस पर आप सँभाल (बचाव) न करेंगे तो यह दास किस तरह जीवित रहेगा? ॥ २॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ भासित होना कि यह जन जीवित नहीं रहेगा 'वक्रोक्ति अलंकार' है। 'म' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास।

सब प्रकार समरथ प्रभो, मैँ सब बिधि हीन। यह जिय जानि द्रवउ नहीं, मैँ करम-बिहीन॥ ३॥

प्रभो! आप सब प्रकार समर्थ हैं और मैं सब तरह हीन हूँ। यह जी में जान कर आप दया नहीं करते हैं कि मैं अभागा हूँ॥ ३॥

भ्रमत अनेक जोनि रघुपति, पति आन न मोर। दुख सुख सहउँ रहउँ सदा, सरनागत तोर॥ ४॥

हे रघुनाथजी! अनेक योनियों में भटकता फिरता हूँ; किन्तु मेरे दूसरा मालिक नहीं है। दुःख सुख सहता हूँ और सदा आप की शरण में प्राप्त होकर रहता हूँ॥४॥

'पति' शब्द दो बार आया है; किन्तु अर्थ पृथक् पृथक् होने से 'यमक अलंकार' है।

तुम्ह सम देव न कोउ कृपालु, समुझौँ मन माहिँ। तुलसिदास हरि तोषिये, सो साधन नाहिँ॥ ५॥

आप के समान कृपालु देवता कोई नहीं है यह मन में समझता हूँ। तुलसीदासजी कहते हैं—हे भगवन्! जिससे आप प्रसन्न होते हैं वह उपाय मेरे पास नहीं है॥५॥

(११०)

कहु केहि कहिय कृपानिधे, भव-जनित बिपति अति। इन्द्रिय सकल बिकल सदा, निज निज सुभाउ रति॥ १॥

हे दयानिधे ! संसार से उत्पन्न बड़ी विपत्ति कहिये किससे कहूँ ? सब इन्द्रियाँ अपने अपने स्वभाव (विषयों) में प्रीति करके सदा विकल रहती हैं ॥१॥

अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

जो सुख सम्पति सरग नरक, सन्तत सँग लागी। हरि परिहरि सोइ जतन करत, मन मोर अभागी ॥ २ ॥

जो सुख और सम्पत्ति निरन्तर स्वर्ग तथा नरक में साथ लगी रहती है। हे भगवन्! आप को छोड़ कर मेरा अभागा मन उसी (विषय सुख) के लिये यत्न करता है ॥२॥

मैं अति दीन दयाल-देव, सुनि मन अनुरागे। जौं न द्रवहु रघुबीर धीर, काहे न दुख लागे ॥ ३ ॥

हे धीर रघुवीर देव! मैं अत्यन्त दीन हूँ और आप दया के स्थान हैं, यह सुन कर मन अनुरक्त हो रहा है। यदि अनुग्रह न कीजियेगा तो क्यों न दुःख लगेगा ? ॥३॥

मैं दीन हूँ आप दयाल हैं, यथायोग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है। कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ भासित होना कि दीनदयाल का दया न करना इस प्रकृति-विपर्यय को देख कर दास को काहे न दुःख होगा अर्थात् अवश्य दुःखी होगा 'वक्रोक्ति अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

जद्यपि मैं अपराध-भवन, दुख हरन मुरारे। तुलसिदास कहँ आस इहइ, बहु पतित उधारे ॥ ४ ॥

हे दुःख-हरण मुरारि ! यद्यपि मैं पापों का स्थान हूँ, पर तुलसीदास को यही भरोसा है कि आप ने बहुत से पतितों का उद्धार किया है ॥४॥

तब तुलसी पतित का भी उद्धार कीजियेगा, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्य-प्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१११)

केसव कहि न जाइ का कहिये। देखत तव रचना बिचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ॥ १ ॥

हे केशव ! कहा नहीं जाता है क्या कहूँ, आप की अत्यन्त विलक्षण रचना देखते हुए उसको समझ कर मन ही मन आश्चर्य से परिपूर्ण होकर) रह जाता हूँ ॥१॥

सून भीति पर चित्र रङ्ग नहिं, कर बिनु लिखा चितेरे। धोये मिटइ न मरइ भीति दुख,-पाइय एहि तनु हेरे ॥ २ ॥

शून्य (आकाश रूपी) दीवार पर बिना हाथ के चित्रकार ने तसवीर लिखा उसमें रङ्ग नहीं है। वह चित्र धोने से मिटता नहीं और न भीति का नाश होता है, देखने से उसका दुःख इस शरीर में पाया जाता है ॥२॥

यहाँ केवल उपमान का कथन है और उपमेय का अर्थ अध्याहार से समझा जाता है। जैसे—शून्य भीति-उपमान और आकार रहित माया-उपमेय है। रङ्ग-उपमान और चौरासी लक्ष योनियाँ-उपमेय हैं। चित्रकार-उपमान और निर्गुण ब्रह्म-उपमेय हैं। धोने से न मिटना-उपमान और विविध कर्म जल से धोना तथा जन्म मृत्यु का बना रहना रङ्ग का न छूटना-उपमेय है। मरना-उपमान और आवागमन बना रहना-उपमेय है। चित्र-दर्शकों को आनन्द प्राप्त होता है पर इस के दर्शकों को दुःख होते देखा जाना 'रूपकातिशयोक्ति अलंकार' है। व्यङ्गार्थ द्वारा बिना भीति, रङ्ग, हाथ रहित चित्रकार के द्वारा तसवीर का बनना, धोने से न मिटना और देखने से शरीर में दुःख होना, यह विचित्रता अर्थात् कारण के बिना कार्य का प्रकट होना 'प्रथम विभावना अलंकार' है।

रबि-कर-नीर बसइ अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीँ।
बदन हीन सो ग्रसइ चराचर, पान करन जे जाहीँ ॥ ३ ॥

सूर्य्य के किरण रूपी (मिथ्या) जल उसमें अत्यन्त भीषण रूप का मगर निवास करता है और वह मुख रहित है। जड़ चेतन जीव जो जलपान करने जाते हैं उन्हें पकड़ लेता है ॥३॥

यहाँ भी उपर्युक्त अलंकारों की संसृष्टि है। रविकर नीर-उपमान और विविध कामनायें मृगतृष्णा रूपी जल-उपमेय है। मगर-उपमान और काल-उपमेय है। इच्छा पूर्त्ति की आशा उपमान और प्यास-उपमेय है। काल का ग्रसना-उपमान और जीवनान्त का होना-उपमेय है। यह विचित्र कथन 'अद्भुत रस' है।

कोउ कह सत्य झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल करि मानै।
तुलसिदास परिहरइ तीनि भ्रम, सो आपन पहिचानै ॥ ४ ॥

कोई (संसार और माया को) सत्य कहता और कोई झूठ कहता है, कोई कोई दोनों को जोरावर (सत्य) करके मानते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि जो इन तीनों भ्रमों को त्यागेगा वही अपने (आत्मस्वरूप) को पहचानेगा ॥४॥

असत् सत् के समता का भाव सूचक, प्रथम निदर्शना अलंकार' है।

(११२)

केसव कारन कवन गोसाँई। जेहि अपराध असाध जानि मोहि तजहु अज्ञ की नाँई ॥ १ ॥

हे केशव गुसाँई! कौन कारण है कि जिस अपराध से मुझे असाध्य समझ कर अनजान की भाँति त्याग रहे हो? ॥१॥

परम पुनीत सन्त कोमल चित, तिन्हहिं तुम्हहिं बनिआई ।
तौ कत बिप्र ब्याध गनिकहि तारेहु कछु रही सगाई ॥ २ ॥

(यदि यह कहा जाय कि) अत्यन्त पवित्र कोमल चित्तवाले सन्तजन उन्हीं से आप की बनती (मेल) है तो ब्राह्मण (अजामिल) व्याधा (वाल्मीकि) और वेश्या का उद्धार काहे को किया, क्या उनसे कुछ नातेदारी थी ? ॥२॥

काल करम गति अगति जीव की, सब हरि हाथ तुम्हारे ।
सोइ कछु करहु हरहु ममता मम, फिरउँ न तुम्हहिं बिसारे ॥३॥

हे भगवन् ! जीव की सुगति, दुर्गति, कर्म और काल सब आप के हाथ में है। वही कुछ कीजिये कि मेरी अज्ञानता हर लीजिये जिससे आप को भुला कर मैं (संसार में भटकता) न फिरूँ ॥३॥

जौं तुम्ह तजहु भजउँ न आन प्रभु, यह प्रमान पन मोरे ।
मन बच करम नरक सुरपुर जहँ, तहँ रघुबीर निहोरे ॥ ४ ॥

यदि आप मुझे त्याग देंगे तो भी मैं दूसरे स्वामी की सेवा न करूँगा, मेरी यह सच्ची प्रतिज्ञा है। हे रघुनाथजी ! मन, वचन और कर्म से नरक या स्वर्ग जहाँ रहूँगा वहाँ आप ही के निहोरे अर्थात् दूसरे की प्रेरणा न मानूँगा ॥४॥

जद्यपि नाथ उचित न होत अस,-प्रभु सौं करउँ ढिठाई ।
तुलसिदास सीदत निसि-दिन, देखत तुम्हारि निठुराई ॥ ५ ॥

हे नाथ ! यद्यपि यह उचित नहीं होता है कि मैं स्वामी से ऐसी ढिठाई करता हूँ। तुलसीदास रातोंदिन आप की निष्ठुरता देख कर दुखी हो रहा है ॥५॥

सेवक का इस तरह स्वामी से गुस्ताख़ी की बातें कहना अत्यन्त अनुचित और गर्हित है तो भी लाचारी से कहना पड़ा, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(११२)

माधव अब न द्रवहु केहि लेखे । प्रनतपाल पन तोर मोर पन, जिअउँ कमल-पद देखे ॥ १ ॥

हे माधव ! अब किस कारण आप दया नहीं करते हैं ? आप की प्रतिज्ञा दीनजनों की रक्षा करना है और मेरा सङ्कल्प आप के चरण-कमलों को देख कर जीने का है ॥१॥

यथायोग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है।

जब लगि मैं न दीन दयाल तैं, मैं न दास तैं स्वामी ।
तब लगि जो दुख सहेउँ कहेउँ नहिं, जद्यपि अन्तरजामी ॥ २ ॥

जब तक मैं दीन नहीं था आप दयालु नहीं हुए और मैं दास नहीं हुआ था आप स्वामी नहीं हुए । तब तक जो दुःख मैं ने सहा वह आप से कहा नहीं यद्यपि आप अन्तर्यामी (सब जाननेवाले) हैं ॥२॥

तैं उदार मैं कृपिन पतित मैं, तैं पुनीत स्रुति गावै ।
बहुत नात रघुनाथ तोहि मोहि, अब न तजे बनिआवै ॥ ३ ॥

आप दानी हैं मैं कञ्जूस हूँ; मैं पापी हूँ और आप को वेद पवित्र कहते हैं । हे रघुनाथजी ! अब आप से और मुझ से बहुत नाते जुड़ गये हैं त्यागने से न बन पड़ेगा ॥३॥

यथायोग्य का सङ्ग वर्णन में 'प्रथम सम अलंकार' है । 'तैं और मैं' शब्द भाव की रुचिरता के लिये दो दो बार आये 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है । 'अब न तजे बनिआवै' इस वाक्य में व्यञ्जनामूलक गूढ़ व्यङ्ग है कि मुझे त्यागने से आप की दीनदयालुता, पतित-पुनीतता आदि गुणों पर धब्बा लगेगा और सद्ग्रंथों के वाक्य झूठे पड़ जायँगे ।

जनक जननि गुरु बन्धु सुहृद पति, सब प्रकार हितकारी ।
द्वैत रूप तम कूप परउँ नहिं, अस कछु जतन बिचारी ॥ ४ ॥

पिता, माता, गुरु, भाई, मित्र और मालिक सब तरह से आप मेरे हितकारी हैं । ऐसा कुछ उपाय विचारिये जिससे मैं अज्ञान रूपी अन्धकूप में न पड़ूँ ॥४॥

माता-पिता आदि के हितकर उत्कृष्ट गुणों की समता एक रामचन्द्रजी में एकत्रित करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है । अज्ञान और अँधेरी कुआँ में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'सम अभेद रूपक अलंकार' है ।

सुनु अदभ्र करुना बारिज लोचन मोचन भय भारी ।
तुलसिदास प्रभु तव प्रकास बिनु, संसय टरइ न टारी ॥ ५ ॥

अनन्त दया के रूप, कमल के समान नेत्र और भारी भय के छुड़ानेवाले प्रभो ! सुनिये, आप के आलोक (तेज) से रहित तुलसीदास का सन्देह दूसरे के हटाने से न हटेगा ॥५॥

'बारिज लोचन' में वाचकधर्म लुप्तोपमा है । बिना प्रभु के प्रकाश से संशय रूपी अन्धकार न टलने की हीनता 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है । अनुप्रास भी है ।

(११४)

माधव मो समान जग माहीं । सब बिधि हीन मलीन दीन अति, लीन बिषय कोउ नाहीं ॥ १ ॥

हे माधव ! संसार में सब तरह से निन्दित, अपवित्र, दुखी और अत्यन्त विषयासक्त मेरे समान कोई नहीं है ॥१॥

तुम्ह सम हेतु रहित कृपाल आरत हित ईस न त्यागी । मैं दुख सोक बिकल कृपाल केहि कारन दया न लागी ॥ २ ॥

आप के समान अकारण कृपालु और दुखीजनों का हितकारी, त्यागी (सर्वस्व दान देने-वाला स्वामी नहीं है। हे दयानिधान ! मैं दुःख और शोक से विकल हूँ, किस कारण आप को दया नहीं लगती है ? ॥२॥

अकारण कृपालु, दीन हितकारी और सर्वस्व दान करनेवाले स्वामी के हृदय में दीन देख कर दया न लगना 'द्वितीय विषम अलंकार है। 'कृपाल' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

नाहिँ न कछु अवगुन तुम्हार अपराध मोर मैं माना । ज्ञान भवन तनु दियेउ मोहि सो, पाइ न मैं प्रभु जाना ॥३॥

आप का कुछ दोष नहीं है; मैं मानता हूँ कि अपराध मेरा ही है। आपने मुझे ज्ञान का स्थान शरीर दिया; किन्तु उसको पाकर भी मैं ने स्वामी को नहीं जाना ॥३॥

ऐसी दशा में आप को कैसे दोष दे सकता हूँ ? यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

बेनु करील श्रिखंड बसन्तहि, दूषन मृषा लगावैं । सार रहित हतभाग्य सुरभि पल्लव सो कहहु किमि पावैं ॥ ४ ॥

बाँस चन्दन को और करील बसन्त को झूठ ही दोष लगाता है। बाँस सार हीन (पोपला) और करील अभागा (बदकिस्मत) है, फिर कहिये वे सुगन्ध और पत्ते कैसे पा सकते हैं ? ॥४॥

पहले बाँस और करील का नाम लेकर उसी क्रम से दोनों का वर्णन अन्त तक निबाहना 'यथासंख्य अलंकार' है।

सब प्रकार मैं कठिन मृदुल हरि, दृढ़ बिचार जिय मोरे । तुलसिदास यह मोह सृङ्खला छूटइ तुम्हरेहि छोरे ॥ ५ ॥

मैं सब प्रकार कठोर हूँ और आप कोमल हैं, हे भगवान् ! मेरे मन में ध्रुव निश्चय है कि तुलसीदास का यह अज्ञान का बन्धन आप ही के छोरने से छूटेगा ॥५॥

मैं कठिन और आप कोमल, इस अनमेल कथन में 'प्रथम विषम अलंकार' है। अपने अङ्ग स्वभाव का दृढ़ विश्वास कहना 'आत्मतुष्टि प्रमाण अलंकार' है।

(११५)

माधव मोह फाँस क्यों टूटै । बाहर कोटि उपाय करिय, अभिअन्तर ग्रन्थि न छूटै ॥ १ ॥

हे माधव ! अज्ञान की बेड़ी कैसे टूटेगी ? बाहर करोड़ों उपाय करता हूँ; किन्तु अन्तःकरण की गाँठ नहीं छूटती ॥१॥

घृत पूरन कराह अन्तर्गत, ससि प्रतिबिम्ब दिखावै। ईंधन अनल लगाइ कलप सत, अवटत नास न पावै ॥ २ ॥

घी से भरे हुए कड़ाह के भीतर चन्द्रमा की परछाहीं दिखाती हो, उसको करोड़ों कल्प तक लकड़ी की आग से औटता रहे; प्रतिबिम्ब का नाश नहीं होता ॥२॥

यहाँ उपमा की सादृश्यता में 'उपमान प्रमाण अलंकार' है ।

तरु कोटर महँ बस बिहङ्ग तरु,-काटे मरइ न जैसे । साधन करिय बिचार हीन मन,-सुद्ध होइ नहिं तैसे ॥ ३ ॥

वृक्ष के खोढ़रे में पक्षी निवास करता हो, जैसे पेड़ के काटने से वह नहीं मरता । उसी तरह बिना विचार के उपाय करने से मन पवित्र नहीं होता ॥३॥

विचार रहित साधनों से मन शुद्ध नहीं होता, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे पक्षी को मारने की इच्छा से उस वृक्ष को काटना जिसके कोटर में वह रहता है विवेक-शून्यता है; क्योंकि वृक्ष काटते ही पक्षी उड़ जायगा मरेगा नहीं 'उदाहरण अलंकार' है ।

अन्तर मलिन विषय मन अति तनु,-पावन करिय पखारे। मरइ न उरग अनेक जतन, बलमीक बिबिध बिधि मारे ॥ ४ ॥

मन के अत्यन्त विषयी होने से अन्तःकरण मैला हो गया है और शरीर को नहा धो कर पवित्र करता हूँ । असंख्यों उपाय से अनेक प्रकार बिल के पीटने से साँप नहीं मरता ॥४॥

प्रथम उपमेय वाक्य और दूसरा उपमान वाक्य है, बिना वाचक पद के दोनों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलकना 'दृष्टान्त अलंकार' है । अनुप्रास भी है ।

तुलसिदास हरि गुरु करुना बिनु, बिमल बिबेक न होई। बिनु बिबेक संसार-घोर-निधि, पार न पावइ कोई ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना भगवान और गुरु की दया के निर्मल ज्ञान नहीं होता, बिना ज्ञान के कोई भीषण संसार रूपी समुद्र से पार नहीं पाता ॥५॥

हरि-गुरु कृपा कारण है और निर्मल ज्ञान कार्य, फिर वही ज्ञान कारण हो गया और संसार-सागर से पार पाना कार्य्य, हुआ। यह 'कारणमाला अलंकार' है।

(११६)

माधव असि तुम्हारि यह माया। करि उपाय पचि मरिय तरिय नहिं, जब लगि करहु न दाया ॥ १ ॥

हे माधव! यह आप की माया ऐसी है कि पूर्णरूप से लग कर उपाय करके मरे; किन्तु जब तक आप दया नहीं करते तब तक इससे छुटकारा नहीं होता ॥१॥

सुनिय गुनिय समुझिय, समझाइय दसा हृदय नहिं आवै। जेहि अनुभव बिनु मोह जनित भव,-दारुन बिपति सतावै ॥२॥

सुनता हूँ, बिचारता हूँ, समझता हूँ और दूसरों को समझाता हूँ; पर वह दसा हृदय में नहीं आती कि जिस अनुभूत ज्ञान के विना अज्ञान से उत्पन्न संसार की भीषण आपदा दुःख दे रही है ॥ २ ॥

सुनना, गुनना, समझना, समझाना अनुभूत ज्ञान के यथार्थ कारण विद्यमान रहते फल रूपी सची समझदारी का न होना 'विशेषोक्ति अलंकार' है। विना अनुभूत ज्ञान के सुख का अभाव वर्णन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है। दोनों का सन्देहसङ्कर है।

ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जौंपै मन सो रस पावै। तौं कत मृगजल रूप विषय कारन निसि बासर धावै ॥ ३ ॥

वेदोपदेश मीठा शीतल जल है, यदि मन उसका स्वाद पा जाय तो मृगजल रूपी विषयों के लिये काहे को रातोदिन दौड़ेगा? ॥३॥

वेदों में मधुर शीतल जल का आरोप और विषयों में झूठे जल का आरोपण 'समअभेद-रूपक अलंकार' है। यदि ऐसा हो तो ऐसा हो 'सम्भावना अलंकार' है। 'ब्रह्म' शब्द के वेद, ब्राह्मण, ब्रह्मा और परमेश्वर चारों अर्थ है। यह 'श्लेष अलंकार' है। तीनों अलंकारों की सम प्रधानता है।

जेहि के भवन बिमल चिन्तामनि, सो कत काँच बटोरै। सपने परबस परइ जागि देखत केहि जाइ निहोरै ॥ ४ ॥

जिसके घर में स्वच्छ चिन्तामणि है वह काँच काहे को बटोरेगा? सपने में पराधीनता में पड़ा है और जाग कर देखता है (तो कुछ नहीं, उसका) निहोरा जाकर किससे करेगा? ॥४॥

उपमानप्रमाण और वक्रोक्ति की संसृष्टि है।

ज्ञान भगति साधन अनेक सब, सत्य झूठ कछु नाहीं।
तुलसिदास हरि कृपा मिटइ भ्रम, यह भरोस मन माहीं ॥ ५ ॥

ज्ञान, भक्ति आदि असंख्यों साधन हैं वे सब सत्य कुछ झूठ नहीं हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि मेरे मन में भरोसा है यह भ्रम भगवान की कृपा से मिटेगा ॥५॥

अपनी ही प्रथम कही बात का निषेध करके दूसरी बात कहना 'उक्ताक्षेप अलंकार' है और अपने अङ्गस्वभाव का दृढ़ विश्वास प्रकट करना 'आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार' है। दोनों की संसृष्टि है।

(११७)

हे हरि कवन दोष तोहि दीजे। जेहि उपाय सपनेहुँ दुर्लभ गति, सोइ निसि बासर कीजे ॥ १ ॥

हे भगवन्! आप को कौन दोष दिया जाय जब कि मैं रातोदिन वही उपाय करता हूँ जिससे मोक्ष सपने में भी दुर्लभ है ॥१॥

जानत अर्थ अनर्थ रूप तमकूप परब एहि लागे। तदपि न तजत स्वान अज खर ज्यौं, फिरत विषय अनुरागे ॥ २ ॥

अर्थ (मित्र, पशु, भूमि, धन धान्य आदि की प्राप्ति और वृद्धि) को अनिष्ट का रूप जानता हूँ कि इसके सम्बन्ध से अन्धकूप में पड़ूँगा तो भी उसे त्यागता नहीं, कुत्ता, बकरा और गदहे की तरह विषयों में अनुरक्त होकर फिरता हूँ ॥२॥

अनर्थ रूप जान कर भी मैं विषयों को नहीं त्यागता अर्थ के पीछे दौड़ता हूं, इस साधारण बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे कुत्ता, खसा और गदहा अपार कष्ट सहते हुए भी विषयानुराग नहीं त्यागते 'उदाहरण अलंकार' है।

भूत द्रोह कृत मोह वस्य हित आपन मैं न बिचारा।
मद मत्सर अभिमान ज्ञानरिपु, इन्ह महँ रहनि अपारा ॥ ३ ॥

अज्ञान वश जीवों से द्रोह किया; किन्तु अपनी भलाई मैं ने नहीं सोची। मद, मत्सरता और अभिमान जो ज्ञान के शत्रु हैं उनमें रहने की बड़ी आदत है ॥३॥

बेद पुरान सुनत समुझत रघुनाथ सकल जग व्यापी
बेधत नहिं श्रीखंड बेनु इव, सार हीन मन पापी ॥ ४ ॥

वेद पुराणों को सुनता हूँ और समझता हूँ कि रघुनाथजी सम्पूर्ण जगत में व्यापमान हैं। पर पापी मन में यह बात पोपले बाँस और चन्दन के समान धँसती नहीं ॥४॥

उपमा और उदाहरण अलंकार का सन्देहसङ्कर है।

मैं अपराध-सिन्धु करुनाकर, जानत अन्तरजामी।
तुलसिदास भव व्याल ग्रसित तव,-सरन उरगरिपु-गामी ॥ ५ ॥

हे दयानिधान! मैं पाप का समुद्र हूँ आप अन्तर्यामी सब जानते हैं और सर्पों के शत्रु (गरुड़जी पर सवार होकर) चलनेवाले हैं, संसार रूपी सर्प से ग्रसा हुआ तुलसीदास आप की शरण आया है ॥५॥

यहाँ 'उरगरिपुगामी' संज्ञा साभिप्राय है; क्योंकि गरुड़ पर सवार होनेवाला ही भवव्याल से रक्षा करने में समर्थ हो सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। सिन्धु और अपराध-सागर, सर्प और भवव्याल में समअभेद रूपक है।

(११८)

हे हरि कवन जतन सुख मानहु। ज्यौं गज-दसन तथा मम करनी, सब प्रकार तुम्ह जानहु ॥ १ ॥

हे भगवन्! आप किस उपाय से आनन्द मानेंगे? जैसे हाथी के दाँत वैसी मेरा करनी है, आप सब प्रकार जानते हैं ॥१॥

मेरी ऐसी करनी है जैसे हाथी के दाँत खाने को और दिखाने को और अर्थात् कहता कुछ हूँ और करता कुछ हूँ 'उदाहरण अलंकार' है।

जो कछु कहिय करिय भव-सागर, तरिय बच्छ-पद जैसे।
रहनि आन बिधि कहनि आन हरि,-पद सुख पाइय कैसे ॥२॥

जो कुछ कहता हूँ वैसा करूँ तो संसार रूपी समुद्र से बछड़े के खुर की तरह पार हो जाऊँ। पर चालचलन दूसरे प्रकार को और कहना दूसरा, फिर हरिपद का आनन्द कैसे पा सकता हूँ? ॥२॥

उदाहरण, रूपक और उपमानप्रमाण की संसृष्टि है।

देखत चारु मयूर बरन सुभ, बोल सुधा इव सानी।
सबिष उरग आहार निठुर अस, यह करनी वह बानी ॥३॥

मुरैला देखने में सुन्दर अच्छे रङ्ग का और उसकी बोली अमृत के समान मधुरता से सनी रहती है। उसमें ऐसी निर्दयता कि विषधर साँपों का भोजन करना, कहाँ वह मीठी वाणी और कहाँ यह क्रूरता भरी करनी! ॥ ३ ॥

इस अनमेल वर्णन में 'प्रथम विषम अलंकार' है। बोल—उपमेय, सुधा—उपमान, इव—वाचक और सानी—साधारणधर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है। दोनों की संसृष्टि है।

अखिल जीव बत्सर निर्मत्सर, चरन-कमल अनुरागी।
ते तव प्रिय रघुबीर धीरमति, अतिसय निज पर त्यागी ॥४॥

जिन्हें सम्पूर्ण जीव प्यारे हैं और मत्सरता रहित चरण-कमलों के प्रेमी हैं। हे रघुवीर ! वे धीरबुद्धि आप को अत्यन्त प्रिय हैं जो अपने पराये (भेदभाव) के त्यागी हैं ॥४॥

जद्यपि मम अवगुन अपार संसार जोग्य रघुराया।
तुलसिदास निज गुन बिचारि, करुनानिधान करु दाया ॥५॥

हे रघुनाथजी ! यद्यपि मेरा अपराध बहुत बड़ा संसार (नरक) के योग्य है तो भी आप दयानिधान हैं अपने गुणों को विचार कर तुलसीदास पर दया कीजिये ॥५॥

अपनी ही प्रथम कही हुई बात का निषेध करके दूसरी बात कहना 'निषेधाक्षेप अलंकार' है।

(११९)

हे हरि कवन जतन भ्रम भागै। देखत सुनत बिचारत यह मन, निज सुभाउ नहिँ त्यागै ॥ १ ॥

हे भगवन् ! किस उपाय से भ्रम दूर हो जब कि देखते, सुनते और विचारते हुए भी यह मन अपना स्वभाव (चञ्चलता) नहीं त्यागता है ॥१॥

भक्ति ज्ञान बैराग सकल साधन एहि लागि उपाई।
कोउ भल कहउ देउ कछु कोऊ, असि बासना न जाई ॥ २ ॥

इसके लिये भक्ति, ज्ञान और वैराग्य आदि सब साधनों के उपाय हैं। (उन्हें करते हुए भी) ऐसी कामना नहीं दूर होती कि कोई अच्छा कहे और कोई कुछ दे ॥२॥

दिखौआ भक्ति, ज्ञान, वैराग्य का साधन करता हूँ पर इच्छा रखता हूँ कि कोई मेरी बड़ाई करे या कोई भक्त, ज्ञानी, वैराग्यवान समझ कर कुछ देवे, वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

जेहि निसि सकल जीव सूतहिँ तव-कृपापात्र जन जागै।
निज करनी बिपरीत देखि मोहि, समुझि महा भय लागै ॥३॥

जिस (अज्ञान) रात्रि में सब जीव सोते हैं और आप के कृपाभाजन भक्तजन जागते हैं। अपनी उलटी करनी देख कर और (संसार के कष्टों को) समझ कर मुझे बड़ा डर लगता है ॥ ३ ॥

जद्यपि भग्न मनोरथ बिधिबस, सुख इच्छित दुख पावै।
चित्रकार कर-हीन जथा स्वारथ बिनु चित्र बनावै ॥ ४ ॥

यद्यपि मनोरथ पराजित होता है सुख की चाहना करने पर दैवयोग से दुःख ही पाता है। जैसे—बिना हाथ का मुसौवर बिना प्रयोजन के तसवीर बनाता है ॥४॥

सुख की इच्छा करने पर दैवयोग से दुःख मिलता है, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे बिना हाथ का चित्रकार लालच वश तसवीर बनाने का प्रयास करे किन्तु चित्र बिना हाथ के बन नहीं सकता केवल श्रमफल हाथ लगता है। उसी तरह बिना हरि कृपा जीव की कामना पूरी नहीं हो सकती 'उदाहरण अलंकार' है।

हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि, अति भरोस जिय मोरे।
तुलसिदास इन्द्रिय-सम्भव दुख, हरे बनिहि प्रभु तोरे ॥ ५ ॥

आप हृषीकेश (इन्द्रियों के मालिक) हैं, यह नाम सुन कर बलि जाता हूँ मेरे मन में बड़ा भरोसा है। हे प्रभो! इन्द्रियों से उत्पन्न तुलसीदास का दुःख आप ही के दूर करने से दूर होगा ॥ ५ ॥

हृषीकेश संज्ञा साभिप्राय है, क्योंकि इन्द्रियों से पैदा हुए दुःख को इन्द्रियों का स्वामी ही दूर कर सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है।

(१२०)

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी। जद्यपि मृषा सत्य भासइ जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी ॥ १ ॥

हे हरे! मेरे भारी भ्रम को क्यों नहीं हरते हो? यद्यपि (संसार) झूठा है पर जब तक आप की कृपा नहीं होती तब तक सत्य भासित होता है ॥१॥

'हरि' शब्द साभिप्राय है, क्योंकि हरनेवाला ही भ्रम हरने में समर्थ हो सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। प्रथम विनोक्ति की ध्वनि है कि बिना आप की कृपा के झूठा भी सत्य दिखाई पड़ता है।

अर्थ अबिद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गोसाँई।
बिनु बन्धन निज हठ सठ पर-बस, परेउ कीर की नाँई ॥ २ ॥

धन-धान्य आदि को अनुपस्थित (नहीं रहनेवाले) जानता हूँ, हे स्वामिन्! तो भी मेरी तेरी की धारणा नहीं जाती। सुग्गे की तरह बिना बन्धन के अपनी मूर्खता से हठ करके पराधीनता में पड़ा हूँ ॥२॥

संसार को असत्य जानते हुए भी उसका न छूटना 'विशेषोक्ति अलंकार' है। बिना बन्धन के अपने हठ से परवश हुआ हूँ जैसे शुक 'उदाहरण अलंकार' है। सुग्गा जिस प्रकार अपनी मूर्खता से बन्धन में पड़ता है वह विनयकोश में 'शुक' शब्द देखो।

सपने व्याधि बिबिध बाधा जनु, मृत्यु उपस्थिति आई।
बैद अनेक उपाय करइ, जागे बिनु पीर न जाई ॥ ३ ॥

सपने में रोग द्वारा नाना प्रकार की पीड़ा से मानों मृत्यु समीप आ गई हो। वैद्य अनेक यत्न करे पर बिना जागे वह पीड़ा नहीं जाती ॥ ३ ॥

विना देखे हुए मृत्यु-उपमेय के उपमा के सादृश्य से जानने का भाव 'उपमानप्रमाण अलंकार' है। रोग की पीड़ा से मौत पास आने की उत्प्रेक्षा करना 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा' है। विशेषोक्ति और विनोक्ति का सन्देहसङ्कर है।

स्रुति गुरु साधु सुमृति सम्मत यह,-दृस्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे भजे बिनु रघुपति, बिपति सकइ को टारी ॥ ४ ॥

वेद, गुरु, सज्जन और स्मृतियों का मत है कि यह खेल (संसार का मनोरञ्जक व्यापार) सदा दुःख उत्पन्न करनेवाला है। विना उसे त्यागे और विना रघुनाथजी का भजन किये इस विपत्ति को कौन हटा सकता है? (कोई भी हटाने में समर्थ नहीं है) ॥४॥

शब्दप्रमाण, प्रथम विनोक्ति और वक्रोक्ति की संसृष्टि है।

बहु उपाय संसार तरन कहँ, बिमल गिरा स्रुति गावै।
तुलसिदास मैं मोर गये बिनु, जिय सुख कबहुँ न पावै ॥ ५ ॥

संसार-समुद्र से पार होने के लिये निर्मल वाणी से वेद बहुत सा उपाय कहता है, परन्तु तुलसीदासजी कहते हैं—विना मैं मोर (अपने विराने का भेदभाव) दूर हुए जीव कभी सुख नहीं पाता ॥५॥

पहले यह कहना कि संसार से पार होने का बहुत उपाय वेद निर्मल वाणी से गाता है, फिर उसका निषेध करना कि विना मैं मोर गये जीव सुख नहीं पाता 'उक्ताक्षेप की ध्वनि' है। विना मैं मोर गये सुख की हीनता कथन में 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है।

(१२१)

हे हरि यह भ्रम की अधिकाई। देखत सुनत कहत समुझत संसय सन्देह न जाई ॥ १ ॥

हे हरे! यह भ्रम की अधिकता है कि देखते, सुनते, समझते और कहते हुए संशय सन्देह नहीं जाता ॥१॥

संशय और सन्देह पर्यायवाची शब्द हैं जिससे पुनरुक्ति का आभास है; किन्तु पुनरुक्ति नहीं है दोनों शब्दों के अर्थ पृथक् पृथक् हैं। एक संसार के सत्यासत्य होने का भ्रमसूचक और दूसरा सुखदाई विषयों में सुख की भ्रान्ति बोधित करनेवाला 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है। देखना, सुनना, कहना, समझना कारण विद्यामन रहते संशय-सन्देह का न दूर होना 'विशेषोक्ति अलंकार' है। त और स अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

जौं जग मृषा ताप त्रय अनुभव, होत कहहु केहि लेखे।
कहि न जाइ मृग-बारि सत्य भ्रम तें दुख होइ बिसेखे ॥ २ ॥

यदि संसार झूठा है तो कहिये तीनों तापों का परीक्षा द्वारा प्राप्त ज्ञान किस कारण होता है? मृगजल सच्चा नहीं कहा जा सकता; परन्तु मृगों को भ्रम से बड़ा ही दुःख होता है ॥२॥

ऊपर संशय-सन्देह कहा, यहाँ उसी क्रम से कथन 'यथासंख्य अलंकार' है।

सुभग सेज सोवत सपने बारिधि बूड़त भय लागै। कोटिहु नाव न पार पाव सो, जबलगि आपु न जागै ॥ ३ ॥

सुन्दर पलँग पर सोते हुए सपने में समुद्र में डूबने का भय लगे, करोड़ों नाव से पार नहीं मिलता जबतक वह आप नहीं जाग जाता ॥३॥

बिना देखे उपमान उपमेय की सादृश्यता में 'उपमानप्रमाण अलंकार' है।

अनविचार रमनीय सदा संसार भयङ्कर भारी। सम सन्तोष दया बिबेक तेँ, व्यवहारी सुखकारी ॥ ४ ॥

बिना समझे भारी भयानक संसार सदा रमणीय (सुहावना) लगता है। इसमें सौम्यता, सन्तोष, दया और ज्ञान से व्यवहार करनेवाले प्रसन्न रहते हैं ॥४॥

तुलसिदास सब बिधि प्रपञ्च जग, जदपि झूठ स्रुति गावै। रघुपति भगति सन्त सङ्गति बिनु, को भव त्रास नसावै ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं यद्यपि संसार के प्रपञ्च को वेद गाते हैं कि सब तरह मिथ्या है तो भी रघुनाथजी की भक्ति और सन्तों की सङ्गति के बिना संसार का भय कौन नाश कर सकता है? (कोई नहीं) ॥५॥

प्रथम विनोक्ति, वक्रोक्ति और अनुप्रास का सन्देहसङ्कर है।

(१२२)

मैं हरि साधन करइ न जानी। जस आमय भेषज न कीन्ह तस, दोष कवन दरमानी ॥ १ ॥

हे भगवन्! मैं उपाय करना नहीं जानता। जैसा रोग है वैसी दवा नहीं की, फिर दरमानी (इलाज करनेवाले हकीम या वैद्य) का कौन दोष? (कुछ नहीं) ॥१॥

सपने नृप कहँ घटइ बिप्र-बध, बिकल फिरइ अघ लागे। बाजिमेध सतकोटि करइ नहिँ,-सुद्ध होइ बिनु जागे ॥ २ ॥

सपने में राजा को ब्रह्महत्या लगे और वह पाप के भय से व्याकुल होकर घूमता फिरे। करोड़ों अश्वमेध करने पर भी बिना जागे पवित्र नहीं होता ॥२॥

स्रग महँ सर्प बिपुल भयदायक प्रगट होइ अबिचारे।
बहु आयुध धरि बल अनेक करि, हारिय मरइ न मारे ॥ ३ ॥

नासमझी से माला (रस्सी) में बड़ा भय दायक साँप प्रत्यक्ष मालूम हो, उसको बहुत सा हथियार लेकर और नाना प्रकार का बल करके मारते मारते हार जाइये पर मरता नहीं ॥३॥

निज भ्रम तें रविकर-सम्भव-सागर अति भय उपजावै।
अवगाहत बोहित नौका चढ़ि, कबहूँ पार न पावै ॥ ४ ॥

अपने भ्रम से सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न समुद्र अत्यन्त भय उपजावे, जहाज और नाव पर चढ़ कर थहाने से कभी पार नहीं मिलता ॥४॥

तुलसिदास जग आपु सहित जब लगि निर्मूल न जाई।
तब लगि कोटि उपाय करिय पचि, मरिय तरिय नहिं भाई ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं जब तक संसार मोर तोर के सहित निर्मूल होकर नहीं जाता तब तक—हे भाई ! करोड़ों उपाय पूर्णरूप से लग कर करते मरोगे, पर पार न पाओगे ॥५॥

(१२३)

असं कछु समुझि परत रघुराया । बिनु तव कृपा दयाल दास हित, मोह न छूटइ माया ॥ १ ॥

हे दयालु रघुनाथजी ! मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता है कि विना आप की कृपा के दासों की भलाई नहीं होती और न माया-मोह छूटता है ॥१॥

बिना रघुनाथजी की कृपा के अज्ञान और माया का न छूटना वर्णन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है।

बाक्यज्ञान अत्यन्त निपुन भव पार न पावइ कोई । निसि गृह-मध्य दीप की बातन्हि, तम निवृत्त नहिं होई ॥ २ ॥

शब्दज्ञान में अत्यन्त प्रवीण होने से कोई संसार से पार नहीं पाता। रात को घर में दीपक की बातों से अन्धकार नहीं दूर होता (वह सत्य दीपक ही से जा सकता है) ॥२॥

प्रथम उपमेय वाक्य है और दूसरा उपमान वाक्य है, दोनों में विना वाचक पद के बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलकना 'दृष्टान्त अलंकार' है।

जैसे कोउ एक दीन दुखित अति, असन बिना दुख पावै।
चित्र कल्पतरु कामधेनु गृह, लिखे न बिपति नसावै ॥ ३ ॥

जैसे कोई एक अत्यन्त दीन दुःखित मनुष्य भोजन के बिना दुःख पाता हो। कल्पवृक्ष और कामधेनु की तसवीर घर में लिखने से विपत्ति (गरीबी तथा भूख का सङ्कट) नहीं नष्ट होता ॥३॥

उदाहरण और उपमानप्रमाण का सन्देहसङ्कर है।

षटरस बहु प्रकार व्यञ्जन कोउ, दिन अरु रैन बखानै। बिनु बोले सन्तोष जनित सुख, खाइ सोई पै जानै ॥ ४ ॥

छओं रस के बने बहुत प्रकार के भोजनों को कोई दिन और रात बखान करे (तो भूख न जायगी)। बिना बोले (बखान किये) जो खायगा वही तृप्ति से उत्पन्न आनन्द को जान सकता है ॥४॥

जबलगि नहिँ निज हृदि प्रकाश अरु बिषय आस मन माहीँ। तुलसिदास तबलगि जग-जोनि भ्रमत सपनेहुँ सुख नाहीँ ॥ ५ ॥

जब तक अपने हृदय में (ज्ञान का) प्रकाश नहीं होता और विषय की आशा मन में रहती है; तुलसीदासजी कहते हैं तब तक जीव संसार की योनियों में चक्कर खाता फिरता है; सपने में भी सुख नहीं पाता ॥५॥

(१२४)

जौँ निज मन परिहरइ बिकारा। तौ कत द्वैत जनित संसृति दुख, संसय सोक अपारा ॥ १ ॥

यदि अपना मन विकारों को छोड़ दे तो दुर्भाव से उत्पन्न संसारी दुःख अपार सन्देह और शोक काहे को हो ॥१॥

सत्रु मित्र मध्यस्थ तीनि ये, मन कीन्हे बरिआई। त्यागब गहब उपेच्छनीय अहि,-हाटक-तृन की नाई ॥ २ ॥

शत्रु, मित्र और मध्यस्थ इन तीनों को मन ने जोरावरी से बनाया है। त्यागना, ग्रहण करना और अपेक्षाभाव रखना साँप, सुवर्ण और तृण की तरह करता है ॥२॥

सर्प को शत्रु मान कर त्यागना, सुवर्ण को मित्र मान कर ग्रहण और तृण को न शत्रु न मित्र समझ कर उदासीन भाव रखना मन की कल्पना मात्र है। पहले शत्रु, मित्र, मध्यस्थ का नाम लेकर अन्त तक उसी क्रम से वर्णन का निर्वाह करना 'यथासंख्य अलंकार' है।

असन बसन पसु बस्तु बिबिध बिधि, सब मनि महँ रह जैसे। सरग नरक चर अचर लोक बहु, बसत मध्य मन तैसे ॥ ३ ॥

भोजन, वस्त्र, पशु और अनेक प्रकार की सब वस्तु जैसे मणि में रहती है, उसी तरह स्वर्ग, नरक, जङ्गम, स्थावर और बहुत से लोक मन में बसते हैं ॥३॥

जैसे मणि के मूल्य में सारी वस्तु निवास करती हैं, तैसे स्वर्ग, नरक, चराचर और विविध लोकों में जीव को पहुँचाने का मन ही कारण है 'उदाहरण और दृष्टान्त' का सन्देह-सङ्कर है।

बिटप मध्य पुत्रिका सूत्र महँ, कञ्चुक बिनहिं बनाये। मन महँ तथा लीन नाना तनु, प्रगटत अवसर पाये ॥ ४ ॥

वृक्ष में कठपुतली और सूत में कपड़ा विना बनाये नहीं प्रत्यक्ष होता, उसी तरह मन में अनेक शरीर मिले रहते हैं वे अवसर पा कर प्रकट होते हैं ॥४॥

रघुपति भगति बारिछालित चित, बिनु प्रयासही सूझै। तुलसिदास कह चिदविलास जग, बूझत बूझत बूझै ॥ ५ ॥

रघुनाथजी की भक्ति रूपी जल से स्नान किये हुए चित्त को विना परिश्रम ही सूझता है। तुलसीदासजी कहते हैं—जगत में चैतन्य स्वरूप ईश्वर की माया का ज्ञान समझते समझते समझ में आता है ॥५॥

'बूझत' शब्द भाव की रुचिरता के लिये कई बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है।

(१२५)

मैं केहि कहउँ बिपति अति भारी। श्रीरघुबीर धीर हितकारी ॥१॥

हे धीर हितकारी श्रीरघुवीर! मैं बड़ी भारी विपत्ति किस से कहूँ ॥१॥

मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहिं बरजोरा। मानहिं नहिं बिनय निहोरा ॥ २ ॥

हे प्रभो! मेरा हृदय आप का घर है वहाँ बहुत से चोर आ कर बस गये हैं। वे बड़ी कठिन जोरावरी करते हैं विनती और निहोरा नहीं मानते हैं ॥२॥

तम मोह लोभ अहँकारा। मद क्रोध बोधरिपु मारा॥ अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा ॥ ३ ॥

हे नाथ! ज्ञान के शत्रु अज्ञान, मोह, लोभ, अहङ्कार, मद, क्रोध और कामदेव बड़ा उत्पात करते हैं, मुझे अनाथ जान कर मसलते (उत्पीड़ित करते) हैं ॥३॥

मैं एक अमित बटपारा। कोउ सुनइ न मोर पुकारा॥ भागेहु नहिं नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा ॥ ४ ॥

मैं अकेला हूँ और ठग बहुत हैं कोई मेरी गोहार नहीं सुनता है। हे नाथ! भागने से भी छुटकारा नहीं है, आप रघुकुल के स्वामी हैं मेरी रक्षा कीजिये ॥४॥

यहाँ 'रघुनायक' संज्ञा साभिप्राय है; क्योंकि चोर डाकुओं के उपद्रव से रक्षा करने में नीतिमान सबल राजा ही समर्थ हो सकता है 'परिकराङ्कुर अलंकार' है।

कह तुलसिदास सुनु रामा। लूटहिं तसकर तव धामा॥
चिन्ता यह मोहि अपारा। अपजस नहिं होइ तुम्हारा ॥ ५ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं—हे रामचन्द्रजी! सुनिये, चोर आप के घर को लूटते हैं। मुझे यह अपार चिन्ता है कि आप को अपकीर्त्ति (बदनामी) न हो ॥५॥

यहाँ कहना तो यह है कि मेरे हृदय को काम क्रोधादिकों से मुक्त कीजिये, उसको सीधे शब्दों में न कह कर घुमा कर प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है। व्यङ्गार्थ द्वारा द्वितीय पर्यायोक्ति है।

(१२६)

मन मेरे मानहि सिख मेरी। जौं निज भगति चहइ हरि केरी ॥१॥

मेरे मन! यदि तू भगवान की वास्तविक भक्ति चाहता है तो मेरा सिखावन मान ॥१॥

उर आनहि प्रभु कृत हित जेते। सेवहिं ते जे अपनपौ चेते ॥
दुख सुख अरु अपमान बड़ाई। सब सम लेखहि बिपति बिहाई ॥२॥

प्रभु ने जितने उपकार किये हैं उन्हें हृदय में ले आवे, जिन्हों ने आत्मभाव समझ लिया वे उनकी सेवा करते हैं। दुःख, सुख, अपमान और बड़ाई सब को बराबर समझे तो विपत्ति दूर हो जायगी ॥२॥

सुनु सठ काल-ग्रसित यह देही। जनि तेहि लागि बिदूषहि केही ॥ तुलसिदास बिनु असि मति आये। मिलहिं न राम कपट लय लाये ॥ ३ ॥

अरे मूर्ख! सुन, यह शरीर काल से ग्रसा हुआ है उसके लिये तू किसी को मत चिढ़ा। तुलसीदासजी कहते हैं—बिना ऐसी बुद्धि के आये कपट की लय लगाने से रामचन्द्रजी नहीं मिलते ॥३॥

बिना ऐसी बुद्धि के रामचन्द्रजी नहीं मिलते 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है। व्यङ्गार्थ में गूढ़ोक्ति अलंकार है, क्योंकि यहाँ कविजी कहते तो अपने मन से हैं पर इसकी विशेष सूचना संसार के लोगों के लिये है जिसमें वे सुन कर समझें और दुर्गुणों को त्याग कर भगवान के चरणों में अनुरक्त हों।

(१२७)

मैं जानी हरि पद-रति-नाहीं । सपनेहुँ नहिं बिराग मन माहीं ॥१॥

मैं ने भगवान के चरणों में प्रीति करना नहीं जाना और मन में सपने में भी वैराग्य नहीं है ॥१॥

जे रघुबीर चरन अनुरागे । ते सब भोग रोग सम त्यागे ॥ काम-भुजङ्ग डसत जब जाही । विषय नींब कटु लगत न ताही ॥ २ ॥

जो रघुनाथजी के चरणों के प्रेमी हैं वे सब विषयों को रोग के समान जान कर त्याग देते हैं। जब कामदेव रूपी साँप जिसको काटता है तब उसको विषय रूपी नींब कड़वी नहीं लगती ॥२॥

दो असम वाक्यों में जे ते वाचकों द्वारा समता भाव सूचक 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है। भोग—उपमेय, रोग—उपमान, सम—वाचक और त्यागना—धर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है। काम पर सर्प का आरोप और विषय पर नींव का आरोपण करके पूर्णरूप से एक रूपता दिखाना 'सम अभेद रूपक अलंकार' है। तीनों की संसृष्टि है।

असमञ्जस अस हृदय बिचारी । बढ़त सोच नित नूतन भारी । जब कब राम-कृपा दुख जाई । तुलसिदास नहिं आन उपाई ॥ ३ ॥

ऐसा सोच कर हृदय में असमंजस है और नित्य नया भारी सोच बढ़ता है। जब कभी रामचन्द्रजी की कृपा से दुःख जायगा, तुलसीदासजी कहते हैं कि दूसरा उपाय नहीं है ॥३॥

(१२८)

सुमिरु सनेह सहित सीतापति । राम-चरन तजि नहिं न आन गति ॥१॥

स्नेह के सहित सीतानाथ का स्मरण कर, रामचन्द्रजी के चरणों को छोड़ कर (जीव के लिये) दूसरा सहारा नहीं है ॥१॥

जप तप तीरथ जोग समाधी । कलि मति बिकल न कछु निरुपाधी ॥२॥

जप, तप, तीर्थ, योग और समाधि कुछ भी निरुपद्रव नहीं हैं क्योंकि कलियुग के कारण बुद्धि घबराई हुई (विह्वल) है ॥२॥

करतहु सुकृत न पाप सिराहीं । रक्तबीज जिमि बाढ़त जाहीं ॥ ३ ॥

पुण्य करते हुए भी पाप नहीं चुकते हैं वे रक्तबीज जैसे बढ़ते जाते हैं ॥३॥

सुकृत करने पर भी पाप नहीं समाप्त होते हैं, इस समान्य बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे कालिका देवि के काटने पर रक्तबीज दैत्य बढ़ता था 'उदाहरण अलंकार' है।

हरनि एक अघ-असुर-जालिका । तुलसिदास प्रभु-कृपा-कालिका ॥४॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि पाप रूपी दैत्यों के दल की नाशक प्रभु रामचन्द्रजी की कृपा अद्वितीय कालिका है ॥४॥

रामकृपा और कालिका, पाप और दैत्य समूह उपमेय उपमान हैं। अद्वितीय कथन से 'अधिक अभेद रूपक अलंकार' है।

(१२९)

रसना तू राम राम,-राम क्यौं न रटत। सुमिरत सुख सुकृत बढ़त अघ अमङ्गल घटत ॥ १ ॥

अरी जिह्वा! तू राम राम राम क्यों नहीं रटती? जिसके स्मरण से सुख और पुण्य बढ़ते हैं तथा पाप और अमङ्गल घटते हैं ॥१॥

'राम' शब्द में आग्रह की विप्सा है। एक राम-नाम के स्मरण से सुख सुकृत का बढ़ना और अघ अमंगल का घटना 'प्रथम व्याघात अलंकार' है। र, स और अ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

बिनु स्रम कलि-कलुष-जाल, कटु कराल कटत। दिनकर के उदय जथा, तिमिर-तोम फटत ॥ २ ॥

बिना परिश्रम कलि का भीषण कड़ुआ पापजाल कट जाता है, जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार की राशि फटती है ॥२॥

पहले सामान्य बात कह कर फिर विशेष से समता दिखाना कि जैसे सूर्य्य के उदय से घना अँधेरा विदीर्ण हो जाता है 'उदाहरण अलंकार' है और अनुप्रास भी है।

जोग जाग जप बिराग, तप सुतीर्थ अटत। बाँधबे को भव-गयन्द, रेनु की रजु बटत ॥ ३ ॥

योग, यज्ञ, जप, वैराग्य और तपस्या करता है और सुन्दर तीर्थों में घूमता है। संसार रूपी हाथी को बाँधने के लिये (उपर्युक्त सुकर्म रूपी) धूल की रस्सी बटता है। ॥३॥

धूल की रस्सी पूरना असम्भव है उससे हाथी का बाँधा जाना असाध्य है। यह 'असम्भव प्रमाण अलंकार' है और व्यङ्गार्थ में दृष्टान्त का भाव है कि जैसे धूल की रस्सी से कुञ्जर नहीं बँध सकता उसी तरह योग यज्ञादि से संसार नहीं छूट सकता, उसे छुड़ाने का एक मात्र उपाय राम-नाम का स्मरण है।

परिहरि सुरमनि सुनाम, गुञ्जा लखि लटत। लालच लघु तेरो लखि, तुलसी तोहि हटत ॥ ४ ॥

चिन्तामणि रूपी सुन्दर नाम छोड़ कर घुँघची देख कर लट्टू होता है। तेरी यह तुच्छ लालच लख कर तुलसी तुझे मना करता है ॥४॥

योग, यज्ञ, जप, वैराग्य और तप करना तथा श्रेष्ठ तीर्थों में घूमना यह छोटा लालच है: क्योंकि इससे संसार रूपी मतवाला हाथी क़ाबू में नहीं आता, इसलिये तुलसी तुझको मना करता है कि इन लघु लालचों को त्याग कर केवल राम नाम का स्मरण कर। वाच्यार्थ ही व्यङ्गार्थ होने से असुन्दर गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१३०)

राम राम राम राम, राम राम जपत। मङ्गल मुद उदित होत, कलिमल छल छपत ॥ १ ॥

राम राम राम राम राम राम जपने से मङ्गल और आनन्द का उदय होता है तथा पाप और छल छिप जाते हैं ॥१॥

यहाँ 'राम' शब्द कई बार आया है इसमें आदर की विप्सा है। एक राम नाम के जाप से आनन्द-मङ्गल का उदय होना और पाप-कपट का नसाना 'प्रथम व्याघात अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

कहु के लहे फल रसाल, ववुर बीज बपत। हारहि जनि जनम जाय, गालगूल गपत ॥ २ ॥

भला कह तो सही! बबुर का बीज बोने से किसने आम का फल पाया है? व्यर्थ अंड-बंड बातें बक कर जन्म न गँवावे ॥२॥

काल करम गुन सुभाव सब के सिर तपत। राम नाम महिमा की, चरचा चले चपत ॥ ३ ॥

काल, कर्म, गुण और स्वभाव सब के सिर तपते हैं; किन्तु राम नाम के महिमा की चर्चा चलने से वे छिप जाते हैं ॥३॥

साधन बिनु सिद्धि सकल, बिकल लोग लपत। कलिजुग वर वनिज विपुल, नाम नगर खपत ॥ ४ ॥

विना सिद्धि के साधनों की ओर सब लोग (सिद्धि के लिये) व्याकुलता से लपकते हैं (पर विफल होकर दुःखी होते हैं)। कलियुग में यह बहुत बड़ा श्रेष्ठ व्यापार नाम रूपी नगर में खपता है ॥ ४ ॥

यहाँ कहना तो यह है कि कलियुग में राम नाम के स्मरण से सब सिद्धियाँ सुलभ होती हैं और साधकों को किसी प्रकार की व्याकुलता नहीं होती; परन्तु सीधे न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है। स, ल, व और न अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है। नाम-नगर में रूपक है।

नाम सौं प्रतीति प्रीति, हृदय सुथिर थपत । पावन किय रावन-रिपु, तुलसिहु से अपत ॥ ५ ॥

नाम से विश्वास और प्रीति अच्छी तरह हृदय में स्थापन करने से रावण के शत्रु (रामचन्द्रजी) ने तुलसी के समान अधम को भी पवित्र किया ॥५॥

(१३१)

प्रेम राम चरन-कमल, जनम लाहु परम । राम नाम लेत होत, सुफल सकल धरम ॥१॥

रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में प्रेम होना जन्म लेने का अत्युत्तम लाभ है । राम नाम का स्मरण करने से समस्त धर्म सफल होते हैं ॥१॥

जोग मख बिबेक बिरति, वेद बिदित करम । करिबे कहँ कटु कठोर, सुनत मधुर नरम ॥ २ ॥

योग, यज्ञ, ज्ञान और वैराग्य आदि शुभ-कर्म जो वेद में प्रसिद्ध हैं वे करने में कड़ुए कठोर और सुनने में मीठे मुलायम हैं ॥२॥

य और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है ।

तुलसी सुनि जानि बूझि, भूलहि जनि भरम । प्रभु को तू होहि जाहि, सबही की सरम ॥ ३ ॥

तुलसी ! तू सुन कर जान कर और समझ कर इस धोखे में मत भूल। प्रभु रामचन्द्रजी का दास हो जिन्हें सभी बातों की शरम (लाज) है ॥३॥

अपने सद्विचार से दूसरों को ज्ञान सिखाना 'चतुर्थ निदर्शना अलंकार' है ।

(१३२)

प्रीतम की प्रीति रहित, जीव जाय जियत । जेहि सुख सुख मानि लेत, सुख सो समुझ कियत ॥ १ ॥

प्रियतम (रामचन्द्रजी) की प्रीति के विना जीव व्यर्थ जीता है, जिस (विषय) सुख को सुख मान लेता है वह सुख समझ, कितना है ? ॥१॥

जिसको सुख मान कर निमग्न हो रहा है वह क्षणिक है और नरक में पहुँचानेवाला है, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है । अनुप्रास, पुनरुक्तिप्रकाश और यमक अलंकार का सन्देहसङ्कर है ।

जहँ जहँ जेहि जोनि जनम, महि पताल बियत । तहँ तहँ तू बिषय सुखहि, चहत लहत नियत ॥ २ ॥

धरती, पाताल और आकाश जहाँ जहाँ जिस योनि में हुआ, वहाँ वहाँ तू निश्चित विषयानन्द चाहता और पाता था ॥२॥

कत बिमोह लटो फटो, गगन मगन सियत । तुलसी प्रभु सुजस गाइ, क्यौं न सुधा पियत ॥ ३ ॥

काहे को भारी अज्ञान वश फटे आकाश को सीने में निमग्न होकर खिन्न होता है ? तुलसीदासजी कहते हैं—प्रभु रामचन्द्रजी का सुन्दर यश गान करके क्यों नहीं अमृत पान करता ? ॥ ३ ॥

यहाँ कहना तो यह है कि मूर्खता में पड़ कर तू विषयों में प्रेम करके सुख चाहता है, उसमें जीव के लिये सुख नहीं है । इसको सीधे न कह कर केवल प्रतिबिम्ब मात्र घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है । उपमान-अमृत का गुण रामयश-उपमेय में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है । अनुप्रास भी है ।

(१३३)

फिरि फिरि हित प्रिय पुनीत, सत्य बचन कहत । सुनि मन गुनि समुझि क्यौं न, सुगम सुमग गहत ॥ १ ॥

मैं बार बार हितकारी, प्रिय, पवित्र और सत्य वचन कहता हूँ । तू सुन कर और मन में समझ बूझ कर सुन्दर सीधा रास्ता क्यों नहीं पकड़ता ? ॥१॥

छोट बड़ो, खोट खरो, जग जो जहँ रहत । अपने अपने क भलो, कहहु जो न चहत ॥ २ ॥

छोटे, बड़े, खोटे और खरे संसार में जो जहाँ रहते हैं, कहो—जो अपनी और अपने सम्बन्धियों की भलाई न चाहता हो ऐसा कौन है ? (कोई नहीं) ॥२॥

बिधि लगि लघु कीट अवधि, सुख सुखि दुख दहत । पसु लौं पसुपाल ईस, बाँधि छोरि नहत ॥ ३ ॥

ब्रह्मा से लेकर छोटे कीड़े पर्यन्त (जीवमात्र) सुख से सुखी और दुःख से सन्तप्त होते हैं । ईश्वर (सब जीवों को) पशु और पशु-पालक की तरह बाँधता है, छोरता है और नाँधता है ॥ ३ ॥

सुख से सुखी और दुःख से दुखी होना यथायोग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है। पशुओं को पशुपालक बाँधता भी है, छोरता भी है और हल आदि में जोतता भी है। उसी प्रकार ईश्वर जीव को बन्धन से बँधुआ बनाता है, आत्मज्ञान होने पर माया के बन्धन से मुक्त करता है और विषयासक्त देख कर संसार रूपी हल में जोतता है। उदाहरण और उपमा का सन्देहसङ्कर है।

बिषय मुद निहार भार, सिर ज्यौँ काँध बहत। यौँ हीँ जिय जानि मानि, सठ तू सासति सहत ॥ ४ ॥

विषय को आनन्द रूप देखता है वह ऐसा है जैसे सिर का बोझा काँधे पर ढोया जावे। अरे मूर्ख! तू इसी तरह जी में जान कर और मान कर दुर्दशा सहता है ॥ ४ ॥

विषयों में सुख नहीं है उसमें तू इसी तरह सुख मानता है जैसे बोझा ढोनेवाला मनुष्य सिर का बोझा कन्धे पर लेकर चलता है और उससे अपने को आराम मानता है; किन्तु जब तक बोझा शरीर पर लदा है तब तक आराम नहीं हो सकता 'उदाहरण अलंकार' है।

पायेउ केहि घृत बिचारु, हरिन-बारि महत। तुलसी तकु ताहि सरन, जा तेँ सब लहत ॥ ५ ॥

विचार तो सही—मृगजल को महने से किसने घी पाया है? (कोई नहीं)। तुलसीदासजी कहते हैं—तू उन्हीं की शरण का आश्रय ले जिससे सब (आनन्द) पाते हैं ॥५॥

यहाँ कहना तो यह है कि विषय में लग कर किसी ने मोक्ष नहीं पाई; परन्तु सीधे न कह कर केवल उसका प्रतिबिम्ब मात्र घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है। वक्रोक्ति और आत्मतुष्टिप्रमाण की संसृष्टि है।

(१३४)

बार बार देव द्वार, परि पुकार करत। आरति नति दीन कहे, सङ्कट प्रभु हरत ॥ १ ॥

हे देव! मैं बार बार आप के दरवाज़े पर पड़ कर पुकार करता हूँ। प्रभो! आप नम्र दीनजनों के कहने पर दुःख और कष्ट हरते हैं ॥ १ ॥

लोकपाल सोक बिकल, रावन डर डरत। का सुनि सकुचे कृपाल नर सरीर धरत ॥ २ ॥

इन्द्रादिक लोकपाल रावण के डर से डरते हुए शोक से विकल थे। हे कृपालु! कौन सी (उनकी सराहनीय उपासना को) सुन कर मनुष्य-देह धारण करने के लिये आप सकोच में पड़ गये? ॥ २ ॥

कौसिक मुनि-तीय जनक, सोच अनल जरत । साधन केहि सीतल भये, सो न समुझि परत ॥ ३ ॥

विश्वामित्र, मुनिपत्नी (अहल्या) और राजा जनक शोक की आग में जलते थे । उन पर किस साधन से आप प्रसन्न हुए यह नहीं समझ पड़ता है ॥३॥

यहाँ अनेक उपमेय-विश्वामित्र, अहल्या और जनक का एक ही धर्म शोकाग्नि में जलना कथन 'प्रथम तुल्ययोगिता अलंकार' है ।

केवट खग सबरि सहज, चरन-कमल न रत । सनमुख तव होत नाथ, कुतरु सुफल फरत ॥ ४ ॥

धीवर, पक्षी, शबरी आदि चरण-कमलों में स्वाभाविक अनुरक्त नहीं थे । हे नाथ ! आप के सामने होते ही कुवृक्ष भी सुन्दर फल फलते हैं ॥४॥

बन्धु बैर कपि बिभीषन, गुरु गलानि गरत । सेवा केहि रीझि राम, कियेउ सरिस भरत ॥ ५ ॥

भाई के विरोध से सुग्रीव और विभीषण भारी ग्लानि में गलते थे । हे रामचन्द्रजी ! किस सेवा से प्रसन्न होकर उन्हें भरतजी के समान किया ॥५॥

सेवक भये पवन-पूत, साहेब अनुहरत । जा को लिय नाम राम, सबहि सुढर ढरत ॥ ६ ॥

स्वामी के योग्य पवनकुमार सेवक हुए जिनका नाम लेने से रामचन्द्रजी सब पर अच्छी तरह प्रसन्न होते हैं ॥६॥

जाने बिनु राम रीति, पचि पचि जग मरत । परिहरि छल सरन गये, तुलसिहु से तरत ॥ ७ ॥

रामचन्द्रजी की रीति बिना जाने बार बार संसार में पूर्णरूप से लग कर तू मरता है । छल छोड़ कर शरण जाने से तुलसी के समान (अधम भी संसार समुद्र से) पार हो जाते हैं ॥७॥

(१३५)

राग सूहो-बिलावल ।

राम-सनेही सोँ तैँ न सनेह कियो । अगम जो अमरनिहूँ सो तनु तोहि दियो ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी के समान स्नेह करनेवाले स्वामी से तू ने स्नेह नहीं किया, जिन्होंने, जो शरीर देवताओं को दुर्लभ है वह (मनुष्य) देह तुझ को दिया है ॥१॥

हरिगीतिका-छन्द ।

दिय सुकुल जनम सरीर सुन्दर, हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पंडित परम-पद पावत पुरारि मुरारि को ॥
यह भरतखंड समीप सुरसरि, थल भलो सङ्गति भली।
तेरी कुमति कायर कलपबल्ली चहति बिष फल-फली ॥ १ ॥

श्रेष्ठ कुल में जन्म और सुन्दर शरीर दिया जो चारों फल का कारण है। जिस को पा कर पण्डित लोग शिवजी और विष्णु भगवान के उत्तम पद को पाते हैं। यह भरतखण्ड उत्तम भूमि और गङ्गाजी के समीप अच्छी सङ्गति है। रे कायर! तेरी कुबुद्धि से कल्पलता विष का फल फलना चाहती है? ॥१॥

यहाँ कहना तो यह है कि ऐसी पवित्र भूमि, गङ्गाजी के समीप, सुन्दर ब्राह्मण का शरीर और सज्जनों के सङ्ग में भी विषयों की कामना से नरकगामी होना चाहता है, परन्तु इसे सीधे न कह कर केवल प्रतिबिम्ब मात्र घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है।

अजहुँ समुझ चित देइ सुनु परमारथ। है हित सो जगहू जाहि तेँ स्वारथ ॥ २ ॥

अब भी मन लगा कर सुने और सार वस्तु को समझे। संसार का वही हितू है जिससे अपना मतलब होता है ॥२॥

हरिगीतिका-छन्द ।

स्वारथहि प्रिय स्वारथ सु काते, कवन बेद बखानई।
मन देखु खल अहि खेल परिहरि, सो प्रभुहि पहिचानई ॥
पितु मातु गुरु स्वामी अपनपौ, तिय तनय सेवक सखा।
प्रिय लगत जाके प्रेम तेँ, बिनु हेतु हित नहिँ तेँ लखा ॥२॥

स्वार्थ ही सब को प्रिय है, पर सुन्दर स्वार्थ किससे है और वेद कौन से स्वार्थ को बखानते हैं? अरे दुष्ट! मन में देख (विषय विहार) साँप का खेल है जो उसे त्यागता है वही प्रभु रामचन्द्रजी को पहचानता है। पिता, माता, गुरु, स्वामी, स्त्री, पुत्र, सेवक और मित्र

आदि जहाँ तक आत्मीयता है जिसके प्रेम से सब प्यारे लगते हैं उन अकारण हितैषी को तू ने नहीं पहचाना ॥२॥

दूरि न सो हितू हेरु हियेही है। छलहि छाड़ि सुमिरे छोह कियेही है ॥ ३ ॥

वह हितकारी दूर नहीं देख हृदय में ही है। छल छोड़ कर स्मरण करने से कृपा किये बैठे हैं ॥३॥

हरिगीतिका-छन्द ।

किय छोह छाया कमल कर की, भगत पर भज तेहि भजे।
जगदीस जीवन जीव को जो, साज सब सब को सजै ॥
पुनि हरिहि हरिता विधिहि विधिता, सिवहि सिवता जो दई।
सो जानकीपति मधुर-मूरति, मोद-मय मङ्गल-मई ॥ ३ ॥

अपने भक्तों पर स्नेह के साथ कर-कमलों की छाया किये रहते हैं और जो उन्हें भजता है वे उसका भजन करते हैं। जगत के ईश्वर, जीव के जीवन जो सब का सब तरह साज सजते हैं। फिर जिन्होंने विष्णु को पालन की, ब्रह्मा को रचना की और शिव को संहार की शक्ति दी है, वे ही आनन्द रूप मङ्गल से परिपूर्ण मधुर मूर्त्ति जानकीनाथ (रामचन्द्रजी) हैं ॥३॥

इस छन्द में यमक, पुनरुक्तिप्रकाश, अनुप्रास और विधि अलंकार का सन्देहसङ्कर है।

ठाकुर अतिहि बड़ो सील सरल सुठि। ध्यान अगम सिवहू भेँटेउ केवट उठि ॥ ४ ॥

अत्यन्त शीलवान, सीधे और बड़े मालिक हैं जो शिवजी को भी ध्यान में दुर्गम हैं वे उठ कर केवट से मिले! ॥४॥

हरिगीतिका-छन्द ।

भरि अङ्क भेँटेउ सजल नयन सनेह सिथिल सरीर सौं।
सुर सिद्ध मुनि कवि कहत कोउ न, प्रेम प्रिय रघुबीर सौं ॥
खग सबरि निसिचर भालु कपि किय, आपु से बन्दित बड़े।
ता पर तिन्हकि सेवा सुमिरि जिय, जात जनु सकुचनि गड़े ॥४॥

शिथिल शरीर से स्नेह के जल नेत्रों में भरे अङ्क भर कर मिले। देवता सिद्ध, मुनि और कवि कहते हैं कि रघुनाथजी के समान किसी को प्रेम प्यारा नहीं है। जटायु, शवरी, राक्षस, भालू और वानरों को अपने से बढ़ कर वन्दनीय किया, तिस पर उनकी सेवा मन में याद करके मानों सङ्कोच में गड़ जाते हैं (कि सेवा के अनुसार मैं ने इनका कोई उपकार नहीं किया) ॥४॥

सङ्कोच में गड़ जाना, इस वाक्य में रूढ़ि लक्षणा है। सकोच कोई ऐसी वस्तु नहीं है जिसमें कोई गड़ सकता हो, पर वचन लोक प्रसिद्ध होने से 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

स्वामी को सुभाउ कहेउँ जब उर आनिहै। सोच सकल मिटिहै राम भलो मानिहैं ॥ ५ ॥

मैं ने स्वामी का स्वभाव कहा जब उसको हृदय में ले आवेगा तो समस्त सोच मिट जायगा और रामचन्द्रजी अच्छा मानेंगे अर्थात् तुझ पर प्रसन्न होंगे ॥५॥

हरिगीतिका-छन्द ।

भल मानिहइँ रघुनाथ हाथ जो,-जोरि माथो नाइहै।
ततकाल तुलसीदास जीवन, जनम को फल पाइहै ॥
जपि नाम करहि प्रनाम कहि गुन,-ग्राम रामहिँ धरि हिये।
बिचरहि अवनि अवनीस चरन सरोज मन मधुकर किये ॥५॥

जो हाथ जोड़ कर मस्तक नवावेगा तो रघुनाथजी भला मानेंगे, तुलसीदासजी कहते हैं जीवन और जन्म के फल को तू पावेगा। रामचन्द्रजी का नाम जप प्रणाम कर गुण-समूह गावे और रूप हृदय में ध्यान कर, पृथ्वी के स्वामी के चरण-कमलों में अपने मन को भ्रमर बनाये हुए धरती पर आनन्द पूर्वक विहार कर ॥५॥

(१३६)

जिय जब तेँ हरि तेँ बिलगानेउ। तब तेँ देह गेह निज जानेउ ॥
माया बस स्वरूप बिसरायेउ। तेहि भ्रम तेँ नाना दुख पायेउ ॥ १ ॥

यह जीव जब से भगवान से अलग हुआ तब से शरीर ही को अपना घर समझ लिया है। माया के अधीन होकर अपना चैतन्य रूप भुला दिया, इसी भ्रम से नाना प्रकार के दुःख मिले हैं ॥१॥

हरिगीतिका-छन्द ।

पायउ जो दारुन दुसह दुख सुख लेस नहिँ सपनेहुँ मिल्यो ।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पन्थ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जन्म जरा बिपति मतिमन्द हरि जानेउ नहीँ ।
श्रीराम बिनु बिस्राम मूढ़ बिचारि लखु पायेउ कहीँ ॥ १ ॥

जो कठिन भीषण दुःख पाया, लेशमात्र सपने में भी सुख नहीं मिला । तू बार बार हठ करके उसी रास्ते में चला जिसमें अनेक प्रकार का संसारी शूल और शोक हुआ । बहुतेरी योनियों में जन्म लेकर बुढ़ाई की आपदा सहन किया, परन्तु रे नीचबुद्धि ! भगवान को नहीं जाना । अरे मूर्ख ! विचार करके देख, श्रीरामचन्द्रजी के बिना कहीं विश्राम मिला ? ॥१॥

'हठि' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है । अनुप्रास और वक्रोक्ति की संसृष्टि है ।

आनदसिन्धु मध्य तव बासा । बिनु जाने कस मरसि पियासा ॥
मृग भ्रम बारि सत्य जिय जानी । तहँ तू मगन भयउ सुख मानी ॥२॥

आनन्द-सागर के बीच में तेरा निवास है, बिना जाने क्यों प्यास से मरता है । मृगजल को भ्रम से जी में सच जान कर वहाँ तू सुख से डूबा हुआ है ॥२॥

जैसे मृगजल असत्य है उसी तरह उसमें डूबना मिथ्या है । यह मिथ्याध्यवसित अलंकार की ध्वनि है ।

हरिगीतिका-छन्द ।

तहँ मगन मज्जसि पान करि त्रयकाल जल नाहीँ जहाँ ।
निज सहज अनुभव-रूप तव खल, भूलि अब आयउ तहाँ ॥
निर्मल निरञ्जन निर्बिकार उदार सुख तैँ परिहरयो ।
निःकाज राज बिहाइ नृप इव, स्वप्न कारागृह परयो ॥२॥

जहाँ तीनों काल में जल नहीं है वहाँ तू प्रसन्न होकर स्नान और पान करता है । अपना स्वाभाविक आत्मस्वरूप भूल कर अब रे दुष्ट ! वहाँ (मिथ्याजल के समुद्र में) आ पड़ा है । स्वच्छ, निर्मोह और निर्दोष श्रेष्ठ सुख तू ने त्याग दिया और बिना प्रयोजन राजा के समान राज्य छोड़ कर सपने में जेलखाने आ पड़ा है ॥२॥

उपमानप्रमाण अलंकार और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

तैं निज कर्म-डोरि दिढ़ कीन्ही । अपने करन्हि गाँठि गहि दीन्ही ॥
तातैं परबस परेउ अभागे । ता फल गरभ-बास दुख आगे ॥३॥

तू ने अपने कर्मों की मजबूत डोरी बनाई और अपने ही हाथों से कस कर गाँठ दी। अरे अभागे ! इसी से पराधीनता (माया के वश में) पड़ा है उसका फल आगे गर्भ-वास का दुःख है ॥३॥

हरिगीतिका-छन्द ।

आगे अनेक समूह संसृति, उदर-गत जानेउ सोऊ ।
सिर हेठ ऊपर चरन सङ्कट, बात नहिं पूछइ कोऊ ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि, कर्दमावृत सोवई ।
कोमल सरीर गँभीर बेदन, सीस धुनि धुनि रोवई ॥३॥

आगे अनेक प्रकार संसारी दुःखों की राशि पेट में आकर तू ने उसे भी जाना। नीचे सिर ऊपर पाँव किये सङ्कट सहा कोई बात नहीं पूछनेवाल था। रक्त, विष्ठा, मूत्र, मल, कीड़े और कीचड़ में घिरा हुआ आँख मूँदे अचेत रहता था। कोमल शरीर पर गहरी पीड़ा से सिर पीट पीट कर रोता था ॥३॥

गर्भ-वास का जैसा रूप है वैसा ही वर्णन करने में 'स्वभावोक्ति अलंकार' है।

तैं निज कर्म-जाल जहँ घेरो । श्रीहरि सङ्ग तजेउ नहिं तेरो ॥ बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो । परम कृपाल ज्ञान तोहि दीन्हो ॥४॥

जहाँ तू अपने कर्म-बन्धनों से घिरा था श्रीभगवान ने वहाँ भी तेरा साथ नहीं छोड़ा। प्रभु ने बहुत तरह पालन किया और अत्यन्त दयालु होकर तुझे ज्ञान (पूर्व जन्म के किये कर्मों की समझ) दिया ॥४॥

हरिगीतिका-छन्द ।

तोहि दियेउ ज्ञान बिबेक जन्म अनेक की तब सुधि भई ।
तेहि ईस की हौं सरन जा की, बिषम-माया गुन-मई ॥
जेहि किये जीव निकाय बस रस,-हीन दिन दिन अति नई ।
सो करहु बेगि सँभार श्रीपति, बिपति महँ जेहि मति दई ॥४॥

जब उन्होंने ज्ञान दिया तब उस विवेक से अनेक जन्म की सुध हुई । (तू विनती करने लगा कि) मैं उस ईश्वर की शरण में हूँ जिनकी माया विषम और गुण-मयी है । जिसने असंख्यों जीवों को अपने वश में करके दुःख का रूप बना दिया है और दिनोदिन अत्यन्त नवीन होती जाती है । वे लक्ष्मीकान्त मेरी शीघ्र रक्षा कीजिये जिन्होंने इस विपत्ति में बुद्धि दी है ॥४॥

यहाँ ज्ञान और विवेक दोनों पर्यायवाची शब्द हैं; पुनरुक्ति का आभास है पर अर्थ भिन्न होने से पुनरुक्ति नहीं है । एक का अर्थ है विचार और दूसरे की समझदारी 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है । 'दिन' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश' है ।

पुनि बहु बिधि गलानि जिय मानी । अब जग जाइ भजउँ चक्रपानी ॥
एसेहि करि बिचार चुप साधी । प्रसव पवन प्रेरेउ अपराधी ॥५॥

फिर बहुत तरह जी में ग्लानि मान कर तू ने प्रार्थना की कि अब जगत में जाकर चक्र-पाणि (विष्णु भगवान) को भजूँगा । ऐसा ही विचार करके चुप साधा, अरे अपराधी ! तब प्रभु ने गर्भ से बाहर करने के लिये वायु को आज्ञा दी ॥५॥

हरिगीतिका-छन्द ।

प्रेरेउ जो प्रसव प्रचंड मारुत, कष्ट नाना तैं सह्यो ।
सो ज्ञान ध्यान बिराग अनुभव, जातना-पावक दह्यो ॥
अति खेद ब्याकुल अल्प बल छन,-एक बोल न आवई ।
तव तीव्र कष्ट न जान कोउ सब,-लोग हरषित गावई ॥५॥

जन्म के समय जब प्रचण्ड वायु ने बाहर ठेलना आरम्भ किया तब तू ने नाना कष्ट सहे । वह ज्ञान, ध्यान, वैराग्य और सच्ची समझदारी सासति रूपी अग्नि में जल गई । अत्यन्त खेद से व्याकुल हो गया निर्बलता के कारण एक क्षण बोल न सका, तेरे तीक्ष्ण कष्ट को किसी ने नहीं समझा सब लोग प्रसन्न होकर गाने लगे ॥५॥

बाल-दसा जेते दुख पाये । अति असीस नहिँ जाहिँ गनाये ॥
छुधा ब्याधि बाधा भइ भारी । बेदन नहिँ जानइ महँतारी ॥६॥

बाल्यावस्था में जितने दुःख पाये वे अत्यन्त अनिष्ट गिनाये नहीं जा सकते । भूख और रोगों की बहुत बड़ी पीड़ा हुई उस कष्ट को माता नहीं जान सकी ॥६॥

हरिगीतिका-छन्द ।

जननी न जानइ पीर सो केहि भाँति सिसु रोदन करै ।
सो करइ बिबिध उपाय जा तैं, अधिक तव छाती जरै ॥

कौमार सैसव अति किशोर अपार अघ को कहि सकै ।
ब्यतिरेक तोहि निर्दय महा खल, आन कहु को सहि सकै ॥६॥

उस पीड़ा को माता नहीं जानती कि बालक किस कारण रोता है, वह अनेक उपाय करती है। जिससे अधिकांश तेरी छाती जलती है। लड़कपन, कुमार और किशोरावस्था के अत्यन्त अपार पापों को कौन कह सकता है? रे निर्दय महादुष्ट! कह तो सही, तेरे सिवा इस दुःख को दूसरा कौन सह सकता है? ॥६॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ प्रगट होना कि कोई नहीं सह सकता 'वक्रोक्ति अलंकार' है।

जोबन जुबति सङ्ग रँग रात्यो । तब तू महा-मोह मद मात्यो ॥
ता तेँ तजी धरम मरजादा । बिसरे ते सब प्रथम बिषादा ॥ ७ ॥

युवावस्था में नवयौवना बाला के साथ प्रेम रस में रँग गया तब तू महा मोह रूपी मदिरा के नशे में मतवाला हुआ, इससे धर्म की मर्यादा त्याग दी वे पिछले दुःख सब भूल गये ॥७॥

ज, र, म और त अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

हरिगीतिका-छन्द ।

बिसरे बिषाद निकाय सङ्कट, समुझि नहिँ फाटत हियो ।
फिरि गर्भगत आवर्त संसृति,-चक्र जेहि सोइ सोइ कियो ॥
कृमि भस्म बिट परिनाम तनु तेहि, लागि जग बैरी भयो ॥
पर दार परधन द्रोह पर संसार बाढ़इ नित नयो ॥७॥

वह बहुत बड़ा सङ्कट भूल गया, उसको समझ कर तेरा हृदय नहीं फट जाता। फिर जिससे गर्भ में आकर संसार-समुद्र के चक्कर में घूमना पड़े वही वही तू ने किया। जो शरीर अन्त में कीड़ा, राख अथवा विष्ठा होगा उसके लिये जगत का शत्रु बना! पराई स्त्री और पराये धन के लिये दूसरों से नित्य नया द्रोह तथा छलबाज़ी बढ़ती गई ॥७॥

देखतही आई बिरधाई । जो तैँ सपनेहुँ नाहिँ बुलाई ॥
ता के गुन कछु कहे न जाहीं । सो अब प्रगट देखु तनु माहीं ॥८॥

देखते ही देखते बुढ़ाई आ गई जिसको तू ने सपने में भी नहीं बुलाया। उसके गुण कुछ कहे नहीं जाते, वह अब अपने शरीर में प्रत्यक्ष देख ॥८॥

हरिगीतिका-छन्द ।

सो प्रगट तनु जर्जर जरा बस, ब्याधि सूल सतावई ।
सिर कम्प इन्द्रिय-सक्ति प्रतिहत, बचन काहु न भावई ॥
गृहपालहू तेँ अति निरादर, खान पान न पावई ।
ऐसिहु दसा न बिराग तहँ, तृष्ना-तरङ्ग बढ़ावई ॥८॥

उस सड़ियल वृद्धावस्था के अधीन शरीर हुआ कि रोगों की पीड़ा सताने लगी। सिर काँपता, इन्द्रियों की शक्ति नष्ट हो जाती और वचन किसी को अच्छा नहीं लगता। घर के मालिक से भी बड़ा अनादर होता और अन्न जल (समय पर) नहीं पाता। ऐसी दशा में भी वैराग्य नहीं, तृष्णा की लहरें बढ़ाता है ॥८॥

कहि को सकइ महा भव तेरे । जनम एक के कछुक कहे रे ॥
खानि चारि सन्तत अवगाही । अजहुँ न करु बिचार मन माहीं ॥९॥

तेरे महा संसार (बारम्बार जन्म मरण) को कौन कह सकता है? मैं ने थोड़ा सा वृत्तान्त एक जन्म का कहा है। तू चारों (अण्डज, पिण्डज, उद्भिद, जरायुज) खानियों को निरन्तर थहाता है और अब भी मन में विचार नहीं करता? ॥९॥

हरिगीतिका-छन्द ।

अजहूँ बिचार बिकार तजि भजु, राम जन-सुख-दायकं ॥
भव-सिन्धु दुस्तर जलरथं भजु, चक्र-धर सुर-नायकं ॥
बिनु हेतु करुनाकर उदार अपार माया तारनं ।
कैवल्यपति जगपति रमापति, प्रानपति गति-कारनं ॥९॥

अब भी विचार कर अवगुणों को छोड़ दासों के सुख देनेवाले रामचन्द्रजी का भजन कर। जो संसार रूपी दुर्गम समुद्र के लिये जहाज रूप, देवताओं के मालिक और हाथ में सुदर्शन चक्र धारण करनेवाले हैं, उनकी सेवा कर। अकारण दया करनेवाले, उदार और अपार माया से उद्धार देनेवाले हैं। मोक्ष के स्वामी, जगत के मालिक, लक्ष्मीकान्त, प्राणेश्वर और मोक्ष के कारण हैं ॥९॥

रूपक, अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

रघुपति भगति सुलभ सुखकारी। सो त्रय ताप सोक भय हारी॥
बिनु सतसङ्ग भगति नहिँ होई। ते तब मिलहिँ द्रवहिँ जब सोई॥१०॥

रघुनाथजी की भक्ति (करने में) सहल और सुख उत्पन्न करनेवाली है, वह तीनों ताप, शोक और भय हरनेवाली है। बिना सतसङ्ग के भक्ति नहीं होती, वे सन्त तब मिलते हैं जब वे ही (रघुनाथजी) दया करते हैं॥१०॥

हरिगीतिका-छन्द।

जब द्रवहिँ दीनदयाल राघव साधु सङ्गति पाइये।
जेहि दरस परस समागमादिक, पाप रासि नसाइये॥
जिन्ह के मिले दुख सुख समान असानतादिक गुन भये।
मद मोह लोभ विषाद क्रोध सुबोध तँ सहजहिँ गये॥१०॥

जब दीनदयाल रघुनाथजी दया करते हैं तब सज्जनों की सङ्गति मिलती है, जिसके दर्शन, स्पर्श और समागम आदि से पाप की राशि नष्ट होती है। जिनके मिलने से दुःख सुख बराबर और निर्मान आदि दोष गुण हो जाते हैं। मद, मोह, लोभ, खेद और क्रोध शुद्ध ज्ञान उत्पन्न होने से सहज ही भाग जाते हैं॥१०॥

सेवत साधु द्वैत भय भागै। श्रीरघुबीर-चरन लय लागै॥
देह जनित बिकार सब त्यागै। तब फिरि निज सरूप अनुरागै॥११॥

साधुओं की सेवा करने से भेद-बुद्धि का डर चला जाता है और श्रीरघुनाथजी के चरणों में लय लगती है। जब शरीर से उत्पन्न सब विकारों का त्याग होता है तब जीव फिर अपने रूप (आत्मज्ञान) का प्रेमी बनता है॥११॥

हरिगीतिका-छन्द।

अनुराग सो निज रूप जो जग तँ बिलच्छन देखिये।
सन्तोष सम सीतल सदा दम, देहवन्त न लेखिये॥
निर्मल निरामय एकरस तेहि, हरष सोक न ब्यापई।
त्रयलोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई॥११॥

वह आत्मज्ञान का प्रेम जो संसार से विलक्षण दिखाई देता है, जिसको प्राप्त हो उसे शरीरधारी न समझना चाहिये वह सन्तोष, समता, शीतलता और सदा इन्द्रियों को वश में रखनेवाला होता है। स्वच्छ, नीरोग, जन्म मृत्यु से रहित उसको हर्ष शोक नहीं व्यापता वह सदा तीनों लोकों में पवित्र माना जाता है जिसकी ऐसी दशा हुई है ॥११॥

जौं तेहि पन्थ चलइ मन लाई। तौ हरि काहे न होहिँ सहाई॥
जो मारग स्रुति साधु दिखावैँ। तेहि मग चलत सबइ सुख पावैँ ॥१२॥

यदि उस रास्ते में मन लगा कर चले तो भगवान काहे न सहायक होंगे। जो मार्ग वेद और सन्तजन दिखाते हैं, उस रास्ते में चलने से सभी सुख पाते हैं ॥१२॥

हरिगीतिका-छन्द ।

पावइ सदा सुख हरि कृपा संसार आसा तजि रहै।
सपनेहुँ नहीं दुख द्वैत दरसन, बात कोटिक को कहै॥
द्विज देव गुरु हरि सन्त बिनु, संसार पार न पाइये।
यह जानि तुलसीदास त्रास हरन रमापति गाइये॥ १२॥

जो संसार की आशा त्याग देगा वह भगवान की कृपा से सदा सुख पावेगा। उसे सपने में भी दुःख नहीं और दुर्भाव का दर्शन न होगा करोड़ों बात कौन कहे? ब्राह्मण, देवता, गुरु, विष्णु भगवान और सन्तों के अनुग्रह बिना संसार से पार नहीं मिलता। यह समझ कर तुलसीदास त्रास हरनेवाले लक्ष्मीनाथ का गुण गान करता है ॥१२॥

(१३७)

राग-बिलावल ।

जौं पै कृपा रघुपति कृपालु की, बैर और के कहा सरै।
होइ न बाँको बार भगत को, जौं कोउ कोटि उपाउ करै ॥ १॥

यदि कृपालु रघुनाथजी की कृपा है तो दूसरे के वैरत्व से क्या हो सकता है? जो कोई करोड़ों उपाय करे तो भी भक्तों का बाल बाँका नहीं हो सकता ॥ १ ॥

तकइ नीच जो मीच साधु की, सो पाँवर तेहि मीच मरै।
बेद बिदित प्रहलाद-कथा सुनि, को न भगति-पथ पाउ धरै ॥२॥

जो नीच साधु की मृत्यु निहारेगा वह अधम उसी मौत से मरेगा। वेद में प्रसिद्ध प्रह्लाद की कथा को सुन कर भक्ति-मार्ग में कौन नहीं पाँव धरेगा? ॥ २ ॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत अर्थ प्रगट होना कि सब कोई भक्ति-मार्ग में पैर रक्खेगा 'वक्रोक्ति अलंकार' है और उपमान प्रमाण की संसृष्टि है।

गज उधारि हरि थपेउ बिभीषन, ध्रुव अविचल कबहूँ न टरै।
अम्बरीष को साप सुरति करि, अजहुँ महामुनि ग्लानि गरै॥३॥

भगवान ने हाथी का उद्धार करके विभीषण को बसाया और ध्रुव को अचल कर दिया जो अपने स्थान से कभी नहीं टलते। राजा अम्बरीष के शाप की याद करके बड़े बड़े मुनि अब भी ग्लानि से सकुचा जाते हैं॥ ३॥

यहाँ भी उपमानप्रमाण अलंकार है। हाथी, ध्रुव, अम्बरीष शब्दों को विनयकोश में देखो, वहाँ सब का विस्तृत इतिहास मिलेगा।

सो न कहा जो कियेउ सुजोधन, अबुध आपने मान जरै।
प्रभु प्रसाद सौभाग्य विजय-जस, पांडवनै बरिआइ बरै॥ ४॥

जो कृष्णभगवान ने कहा उसे दुर्योधन ने नहीं किया, वह बुद्धिहीन अपने अभिमान ही में जलता रहा। प्रभु की कृपा से विजय यश का सौभाग्य जोरावरी से पाण्डवों ही के गले लगा॥ ४॥

जो जो कूप खनैगो पर को, सो सठ फिरि तेहि कूप परै।
सपनेहुँ सुख न सन्त-द्रोही कहँ, सुरतरु सो विष फरनि फरै॥५॥

जो जो दूसरे के लिये कुआँ खोदेगा वह दुष्ट फिर कर उसी कुएँ में गिरेगा। सन्तद्रोही को सपने में भी सुख नहीं मिलता, उस के लिये कल्पवृक्ष विष के फलों को फलता है॥५॥

कल्पतरु का विष का फल फलना, इस विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है।

है काके दुइ सीस ईस के, जो हठि जन की सीम चरै।
तुलसिदास रघुबीर बाहु बल, सदा अभय काहू न डरै॥ ६॥

दूसरा मस्तक किस को है जो हठ करके ईश्वर-भक्तों की मर्यादा को नष्ट करेगा? रघुनाथजी के बाहुबल से तुलसीदास किसी को नहीं डरता सदा निर्भय रहता है॥६॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा यह प्रगट होना कि भक्तों की मर्यादा कोई नहीं मिटा सकता 'वक्रोक्ति अलंकार' है।

(१३८)

कबहुँ सो कर-सरोज रघुनायक, धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत, बारक बिबस नाम टेरे॥ १॥

हे नाथ रघुनाथजी ! कभी उन कर-कमलों को मेरे सिर पर रखियेगा जिन हाथों से बेबसी में एक बार नाम लेकर पुकारने से दुःखीजनों को निर्भय किये हैं ॥१॥

जेहि कर-कमल कठोर सम्भु-धनु, भञ्जि जनक संसय मेंट्यो ।
जेहि कर-कमल उठाइ वन्धु ज्यौं, परम प्रीति केवट भेंट्यो ॥ २॥

जिन कर-कमलों से कठिन शिव-धनुष को तोड़ कर राजा जनक के सन्देह को मिटाया और जिन कर-कमलों से केवट को उठा कर अत्यन्त प्रीति से भाई की तरह मिले ॥२॥

जिन कमल-हाथों से उठा कर केवट से मिले, इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे अत्यन्त प्रीति के साथ भाई भरतजी से मिले थे 'उदाहरण अलंकार' है। कर-उपमेय द्वारा की जानेवाली क्रिया कमल-उपमान द्वारा होना जो वास्तव में कर द्वारा होना चाहिये, 'परिणाम अलंकार' है। दोनों की संसृष्टि है।

जेहि कर-कमल कृपाल गीध कहँ, पिंड देइ निज धाम दियो ।
जेहि कर वालि बिदारि दास हित, कपि-कुल-पति सुग्रीव कियो ॥३॥

हे कृपानिधान ! जिन कर-कमलों से जटायु गिद्ध को पिण्डा देकर अपना धाम (वैकुण्ठवास) दिया और जिस हाथ से सुग्रीव दास की भलाई के लिये वाली को मार कर उसको वानर कुल का राजा बना दिया ॥३॥

आयउ सरन सभीत बिभीषन, जेहि कर-कमल तिलक कीन्हौं ।
जेहि कर गहि सर चाप असुर हति, अभय-दान देवन्ह दीन्हौं ॥४॥

भयभीत विभीषण शरण आया जान कर जिन कर-कमलों से उसे राजतिलक किया और जिन हाथों से धनुष-बाण लेकर दैत्यों का नाश करके देवताओं को अभय-दान दिया ॥४॥

सीतल सुखद छाँह जेहि कर की, मेटति पाप ताप माया ।
निसि बासर तेहि कर-सरोज की, चाहत तुलसिदास छाया ॥५॥

जिन हाथों की परछाहीं शीतल सुखदाई है पाप, सन्ताप और माया को नष्ट करती है उन्हीं कर-कमलों की छाँह रातोदिन तुलसीदास चाहता है ॥५॥

यहाँ पाप, ताप, माया अनेक उपमानों का एक ही धर्म कर-छाँह द्वारा मिटना वर्णन 'द्वितीय तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(१३९)

दीनदयाल दुरित दारिद दुख, दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है ।
देव दुआर पुकारत आरत, सब की सब सुख-हानि भई है ॥१॥

हे दीनदयाल देव ! दुनियाँ दुस्सह पाप, दरिद्रता, दुःख और तीनों तापों से जलती है। सब के सब सुखों की हानि हो गई है अर्थात् कोई सुखी नहीं है, इसी से मैं दीनता वश आप के दरवाज़े पर पुकारता हूँ ॥१॥

जब कोई सुखी नहीं है तब किसके पास दीनता सुनाने जाऊँ, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग' है।

प्रभु के वचन बेद-बुध-सम्मत, मम-मूरति महिदेव-मई है।
तिन्ह की मति रिस राग मोह मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥

वेद तथा विद्वानों का मत और आप का कथन है कि ब्राह्मणों का शरीर मेरा ही अङ्ग है। उन (ब्राह्मणों) की बुद्धि को क्रोध, ईर्ष्या, अज्ञान, घमण्ड और लालची लोभ ने निगल लिया है अर्थात् वे मत्सरता के वश में हुए हैं ॥२॥

शब्दप्रमाण अलंकार और अनुप्रास की संसृष्टि है।

राज-समाज कुसाज कोटि कटु, कल्पत कलुष कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमित पति, हेतुबाद हठि हेरि हई है ॥३॥

राजमण्डली में करोड़ों अनिष्ट बुरे सामान, नवीन कुचाल और पापों की रचना होती है। नीति, विश्वास, प्रीति, प्रतिष्ठा और बड़प्पन को हठ से खोज कर नास्तिकता ने नाश कर डाला ॥३॥

ज, क, त, प और ह अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है।

आस्रम बरन धरम बिरहित जग, लोक बेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखंड पाप-रत, अपने अपने रङ्ग रई है ॥ ४ ॥

आश्रम और वर्ण धर्म रहित हो गये और संसार से लोक तथा वेद की मर्यादा चली गई है। प्रजा (जन-समूह) धर्मत्यागी, वेद विरुद्ध आचार और पाप में तत्पर अपने अपने रङ्ग में रँगी है ॥४॥

सान्ति सत्य सुभ रीति गई घटि, बढ़ी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल बिलसत हुलसति खलई है ॥५॥

सहनशीलता और सचाई की अच्छी रीति घट गई, कुचाल छलबाजी और बनावट (ऊपरी तड़क भड़क) बढ़ा हुआ है। साधु दुखी हो रहे हैं और साधुता सोच में पड़ी है, दुष्ट प्रसन्न हैं और दुष्टता खुश हो रही है ॥५॥

स, क और त अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। साधु के दुखी होने पर साधुता का दुखी होना और खलों के सुखी होने पर खलता का सुखी होना, कारण के समान कार्य कथन 'द्वितीय सम अलंकार' है।

परमारथ स्वारथ साधन भये, अफल सकल नहिं सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर, बिबस बिकल जामति न बई है ॥६॥

धार्मिक कृत्य (जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थाटन आदि) स्वार्थ-साधन हुए हैं, वे सब फलहीन वाञ्छित-लाभ और बरकत नहीं है। धरती रूपी कामधेनु कलिकाल रूपी कसाई के अधीन होकर विकल है, उसमें बीज बोने पर जामते नहीं। (तब स्वयम् फल देने की कौन सी चर्चा है) ॥६॥

धरती में कामधेनु और कलि में कसाई का आरोपण इसलिये किया गया कि गैया कसाई के अधीन होकर दुखी होती है। यह परम्परित के ढङ्ग में 'समअभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

कलि करनी बरनिये कहाँ लौं, करत फिरत बिनु टहल टई है।
ता पर दाँत पीसि कर मींजत, को जानइ चित कहा ठई है ॥७॥

कलियुग की करतूत कहाँ तक वर्णन करूँ वह बिना कौड़ी की सेवा करता फिरता है तिस पर दाँत पीस कर हाथ मलता है, कौन जाने मन में क्या ठान रक्खा है ॥७॥

त्यौं त्यौं नीच चढ़त सिर ऊपर, ज्यौं ज्यौं सील बस ढील दई है।
सरुख बरजि तरजिये तरजनी, कुम्हिलइहै कुम्हड़े की जई है ॥८॥

नीच त्यों त्यों सिर पर चढ़ता है ज्यों ज्यों शील वश आप (दण्ड देने में) ढिलाई करते हैं। मन से मना करके तर्जनी उँगली दिखा कर डाँटिये तो वह कुम्हड़े की बतिया है मुरझा जायगा ॥८॥

त्यों त्यों और ज्यों ज्यों रुचिरता के लिये दो दो बार आये 'पुनरुक्तिप्रकाश' है। उपमान कुम्हड़े की बतिया का गुण उपमेय कलि में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

दीजे दाद देखि नातो बलि, मही मोद मङ्गल रितई है।
भरे भाग अनुराग लोग कहैं, राम अवधि चितवनि चितई है ॥९॥

मैं आप की बलि जाता हूँ, (स्वामी सेवक के) नाते को देख कर मुझे न्याय दीजिये। इसने धरती को आनन्द-मङ्गल से खाली कर दिया है। लोग प्रेम देख कर (मुझे पूरा भाग्यवान) कहते हैं कि रामचन्द्रजी ने चितवन के हद से इसको देखा है ॥९॥

द, म, भ, ग और च अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

बिनती सुनि सानन्द हेरि हँसि, करुना-बारि भूमि भिजई है।
राम राज भयो काज सगुन सुभ, राजा राम जगत-बिजई है ॥१०॥

विनती सुनकर प्रसन्नता-पूर्वक हँस कर देखा, दया रूपी जल से धरती को भिजो दिया है। राम-राज्य में कल्याणकारी कार्य का शकुन हुआ, (क्यों न हो जब कि) रामचन्द्रजी विश्व-विजयी सार्वभौम राजा हैं ॥१०॥

धर्मात्मा राजा के राज्य में मङ्गलकारी सुकाल का होना, यथायोग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है।

समरथ बड़ो सुजान सुसाहेब, सुकृत सेन हारत जितई है।
सुजन सुभाव सराहत सादर, अनायास सासति बितई है ॥११॥

बड़े सामर्थ्यवान सुजान श्रेष्ठ स्वामी ने पुण्य की सेना को हराते हुए जिता दिया है। सज्जन लोग आदर के साथ स्वभाव की बड़ाई करते हैं कि बिना परिश्रम दुर्दशा का अन्त किया है ॥११॥

'स' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है। प्रहर्षण की ध्वनि है।

उथपे थपन उजारि बसावन, गई बहोर बिरद सदई है।
तुलसी प्रभु आरत आरति-हर, अभय-बाँह केहि केहि न दई है ॥१२॥

स्थान भ्रष्ट को स्थान देना, उजड़े हुए को बसाना और खोई हुई वस्तु लौटाने की जिनकी सदा से नामवरी है। तुलसीदासजी कहते हैं—प्रभु रामचन्द्रजी दुखीजनों के दुःख को हर लेते हैं, उन्होंने किसको किसको निर्भयता का बल (अभय-बाँह) नहीं दिया है? अर्थात् जो शरण में गया उसको निर्भय कर दिया ॥१२॥

यहाँ लक्षणामूलक गूढ़ व्यङ्ग है कि तब दुःखित तुलसी को भी अभय करके सुखी करेंगे।

(१४०)

ते नर नरक-रूप जीवत जग, भव-भञ्जन पद बिमुख अभागी।
निसि-बासर रुचि पाप असुचि मन, खल मति मलिन निगम-पथ त्यागी ॥ १ ॥

वे मनुष्य अभागे और पाप के रूप होकर संसार में जीते हैं जो भव भय नाशक (रामचन्द्रजी) के चरणों से प्रतिकूल हैं। रातो दिन पाप की इच्छा से उन दुष्टों के मन अपवित्र, बुद्धि मैली हुई वेद-मार्ग को त्याग दिये हैं ॥१॥

दो असम वाक्यों में समता का भाव प्रदर्शन 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है। 'नर' शब्द में यमक और अनुप्रास भी है।

नहिँ सतसङ्ग भजन नहिँ हरि को, स्रवन न राम-कथा अनुरागी।
सुत बित दार भवन ममता निसि, सोवत अति न कबहुँ मति जागी ॥ २ ॥

न सत्सङ्ग, न भगवान का भजन और न कान रामचन्द्रजी की कथा के प्रेमी हुए। पुत्र, धन, स्त्री और घर के ममत्व रूपी रात्रि में जिनकी बुद्धि अत्यन्त सो रही है कभी जगी नहीं अर्थात् सचेत नहीं हुई ॥२॥

ममत्व पर रात्रि का आरोप करके अचेतनता में नींद का आरोपण करना 'सम अभेद रूपक अलंकार' है।

तुलसिदास हरि-नाम-सुधा तजि, सठ हठि पियत बिषय-बिष माँगी।
सूकर स्वान सृगाल सरिस जन, जनमत जगत जननि दुख लागी ॥३॥

तुलसीदासजी कहते हैं—भगवान का नाम रूपी अमृत छोड़ कर वे मूर्ख हठ से विषय रूपी विष माँग कर पीते हैं। सुअर, कुत्ता और गीदड़ के समान वे मनुष्य संसार में केवल माता को दुःख देने के लिये जन्म लेते हैं ॥३॥

सम अभेद रूपक और मालोपमा अलंकार की संसृष्टि है।

(१४१)

रामचन्द्र रघुनायक तुम्ह सौं, हौं बिनती केहि भाँति करौं।
अघ अनेक अवलोकि आपने, अनघ नाम अनुमानि डरौं ॥ १ ॥

हे रघुकुल के स्वामी रामचन्द्रजी ? किस तरह आप से विनती करूँ। अपने अपार पापों को देख कर और आप का नाम पाप-रहित विचार कर डरता हूँ ॥१॥

पहले साधारण बात कही कि—हे रामचन्द्रजी ! मैं किस प्रकार आप से विनय करूँ। फिर विशेष सिद्धान्त से समर्थन करना कि अपने पापों को देख कर आप की निष्पापता का विचार करता हूँ तब प्रार्थना करने की हिम्मत छूट जाती है 'अर्थान्तरन्यास अलंकार' है। र और अ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। व्यङ्गार्थ में प्रथम विषम अलंकार' है।

पर-दुख दुखी सुखी पर-सुख तें, सन्त-सील नहिं हृदय धरौं।
देखि आन की बिपति परम सुख, सुनि सम्पति बिनु आगि जरौं ॥२॥

पराये के दुःख से दुखी और दूसरे के सुख से सुखी होना सन्तों के शुद्ध आचरण को हृदय में नहीं धारण करता हूँ। (इसके विपरीत) दूसरों की विपत्ति देख कर बहुत प्रसन्न होता हूँ और ऐश्वर्य्य (उन्नति) सुन कर बिना आग के जलता हूँ ॥२॥

पर दुःख से दुखी और पर सुख से सुखी होना 'पदार्थावृत्ति दीपक अलंकार' है। बिना अग्नि के जलना 'प्रथम विभावना अलंकार' है। उल्लास और अनुप्रास की संसृष्टि तथा सन्देहसङ्कर है।

भगति बिराग ज्ञान साधन कहि, बहु बिधि डहँकत लोग फिरौं।
सिव सरबस सुखधाम नाम तव, बेँचि नरक-प्रद उदर भरौं ॥३॥

भक्ति, ज्ञान और वैराग्य के साधनों को बहुत तरह कह कर लोगों को धोखा देता फिरता हूँ। शिवजी का सर्वस्व सुख का धाम आप का नाम बेंच कर नरक का देनेवाला पेट भरता हूँ ॥३॥

जानतहूँ निज पाप जलधि जिय, जल सीकर सम सुनत लरौं।
रज सम पर अवगुन सुमेरु करि, गुन-गिरि सम रज तें निदरौं ॥४॥

अपने पापों को मन में समुद्रवत जानते हुए भी पानी को लघुविन्दु के समान सुनते लड़ता हूँ। धूलि के बराबर दूसरे के दोष को सुमेरु बनाता हूँ और पर्वत के सदृश गुण को रेणु के समान जान कर अनादर करता हूँ ॥४॥

नाना वेष बनाइ दिवस निसि, पर-वित जेहि तेहि जुगुति हरौं।
एकहु पल न कबहुँ अलोल चित, हित देइ पद-सरोज सुमिरौं ॥५॥

तरह तरह के वेश बनाकर दिन रात जिस किसी यत्न से पराये धन को हरता हूँ। एक क्षण भी कभी स्थिर चित्त से प्रीति-पूर्वक चरण-कमलों का स्मरण नहीं करता हूँ ॥५॥

जौं आचरन बिचारहु मेरो, कलप कोटि लगि अवटि मरौं।
तुलसिदास प्रभु कृपा-बिलोकनि, गो-पद ज्यौं भव-सिन्धु तरौं ॥६॥

यदि मेरे आचरण को विचारिये तो करोड़ों कल्प पर्यन्त (संसार रूपी कड़ाह में) चुर कर मरूँगा। तुलसीदासजी कहते हैं—हे स्वामिन्! आप की दया भरी चितवन से संसार रूपी समुद्र को गाय के खुर की तरह पार कर जाऊँगा ॥६॥

रूपक, उपमा और उदाहरण की संसृष्टि है।

(१४२)

सकुचत हौं अति राम कृपा-निधि, क्यौं करि बिनय सुनावौं।
सकल धरम बिपरीत करत केहि,-भाँति नाथ मन भावौं ॥ १ ॥

हे कृपानिधान रामचन्द्रजी! मैं बहुत लज्जित हूँ कैसे विनती करके सुनाऊँ। सारा धर्म उलटा करता हूँ फिर स्वामी के मन में किस तरह अच्छा लगूँगा ॥१॥

मैं पापात्मा हूँ और आप को पुण्यात्मा प्यारे हैं, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर होने से तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

जानतहूँ हरि रूप चराचर, मैं हठि नयन न लावौं।
अञ्जन केस सिखा जुबती तहँ, लोचन-सलभ पठावौं ॥ २ ॥

भगवान जड़ चेतन के रूप हैं, यह जानते हुए भी मैं हठ कर इस ओर आँख नहीं लगाता। जहाँ अग्नि की ज्वाला रूपी युवती के अञ्जन और बाल हैं, वहाँ पाँखी रूप नेत्रों को पठाता हूँ ॥२॥

एक भगवान को चराचर मय कहना 'तृतीय विशेष अलंकार' है। अंजन और केशों पर अग्नि की ज्वाला का आरोप और नेत्रों में पाँखी का आरोपण इसलिये किया गया कि वह ज्वाला के समीप जाकर जल मरती है 'परम्परितरूपक' है।

स्रवनन्हि को फल कथा तिहारी, यह समुझउँ समझावौं।
तिन्ह स्रवनन्हि पर दोष निरन्तर, सुनि सुनि भरि भरि तावौं ॥३॥

कानों का फल आप की कथा सुनना है, यह समझता हूँ और दूसरों को समझाता हूँ। उन्हीं कानों से लगातार पराये के दोषों को सुन सुन कर (हृदय रूपी वखार में) भर भर कर बन्द करता हूँ ॥३॥

यहाँ सुनि सुनि और भरि भरि शब्द रुचिरता के लिये दो दो बार आये हैं 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है।

जेहि रसना गुन गाइ तिहारे, बिनु प्रयास सुख पावौं।
तेहि मुख पर अपवाद भेक ज्यौं, रटि रटि जनम नसावौं ॥४॥

जिस जिह्वा से आप के गुण गाकर विना परिश्रम सुख पाता हूँ, उसी मुख से मेढक की तरह पराये की निन्दा रट रट कर जन्म नष्ट करता हूँ ॥४॥

उदाहरण और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

करहु हृदय अति बिमल बसहिं हरि, कहि कहि सबहि सिखावौं।
हौं निज उर अभिमान मोह मद, खल-मंडली बसावौं ॥ ५ ॥

सब को यह कह कह कर सिखाता हूँ कि हृदय को निर्मल बनाओ जिसमें भगवान निवास करें। मैं अपने हृदय में अभिमान मोह और मद आदि दुष्टों की मण्डली बसाता हूँ ॥ ५ ॥

जो तनु धरि हरि-पद साधहिं जन, सो बिनु काज गँवावौं।
हाटक घट भरि धरेउ सुधा गृह, तजि नभ-कूप खनावौं ॥ ६ ॥

जो शरीर धर कर मनुष्य भगवान के चरणों की उपासना करते हैं उसको विना प्रयोजन के खो रहा हूँ। सोने के घड़े में भर कर घर में अमृत रक्खा है उसे त्याग कर आकाश में कुँआ खुदवाता हूँ ॥६॥

यहाँ मुख्य कथन तो यह है कि मनुष्य देह पा कर ईश्वर भजन न करके विषयों के सेवन से सुख की आशा करता हूँ, उसमें दुःख के सिवा सुख नहीं है। इसे सीधे न कह कर घुमा

कर कहना 'ललित अलंकार' है। मनुष्य-देह और सुवर्ण का घड़ा, राम नाम और अमृत, सुख प्राप्ति की इच्छा और प्यास, विषय सेवन और आकाश में कूप खोदना परस्पर उपमेय उपमान हैं। व्यङ्गार्थ में दृष्टान्त है कि जैसे आसमान के कुएँ से प्यास नहीं बुझ सकती वैसे विषयों के सेवन से जीव को सुख नहीं मिलता।

मन क्रम बचन लाइ कीन्हे अघ, ते करि जतन दुरावौं।
पर प्रेरित इरषा बस कबहुँक, किय कछु सुभ सो जनावौं ॥ ७ ॥

मन, कर्म और वचन से लग कर जो पाप किये उसे यत्न करके छिपाता हूँ। दूसरों के कहने से ईर्ष्या-वश कभी कुछ अच्छा काम किया वह कह कर ज़ाहिर करता हूँ ॥७॥

बिप्र-द्रोह जनु बाँट परेउ हठि, सब सौं बैर बढ़ावौं।
ताहू पर निज मति बिलास सब, सन्तन्ह माँझ गनावौं ॥ ८ ॥

यों तो हठ कर सब से विरोध ही बढ़ाता हूँ, किन्तु ब्राह्मण का बैर मानों हिस्से में पड़ा है। इतने पर भी अपनी बुद्धि का विलास (आनन्द) सब सन्तों में गिनाता हूँ ॥८॥

अपनी बुद्धि की तुच्छता दिखाना उत्प्रेक्षा का विषय है। विप्र-द्रोह कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसका बाँट हो सकता है, यह कवि की कल्पनामात्र 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

निगम सेष सारद निहोरि जौं, अपने दोष कहावौं।
तौ न सिराहिं कल्प सत लगि प्रभु, कहा एक मुख गावौं ॥ ९ ॥

वेद, शेषनाग और सरस्वती से यदि विनती करके अपने अवगुणों को कहवाऊँ तो हे प्रभो! सैकड़ों कल्प पर्यन्त न समाप्त होगा, फिर एक मुँह से कैसे कह सकता हूँ ॥९॥

अपना दोष एक मुख से कैसे गान करूँ, यह उपमेय वाक्य है। यदि वेद, शेष, सरस्वती का निहोरा करके कहवाऊँ तो भी न चुकेगा, यह उपमान वाक्य है। दोनों वाक्यों में सम्भावना और वक्रोक्ति-पूर्वक दोष कथन को अशक्तता प्रगट करना एक ही धर्म 'प्रतिवस्तूपमा अलंकार' है।

जौं करनी आपनी बिचारउँ, तौ कि सरन हौं आवौं।
मृदुल सुभाउ सील रघुपति को, सो बल मनहिं दिखावौं ॥१०॥

यदि अपनी करनी को विचारूँ तो क्या मैं आप की शरण में आ सकता हूँ? (कदापि नहीं)। रघुनाथजी के कोमल स्वभाव और शील का बल मन को दिखाता हूँ (कि वे पतित-पावन हैं, मुझ से अधम का उद्धार करेंगे) ॥ १० ॥

यहाँ कण्ठध्वनि से विपरीत अर्थ प्रगट होना कि करतब समझने पर शरण नहीं आ सकता. 'वक्रोक्ति अलंकार' है।

तुलसिदास प्रभु सो गुन नहिं जेहि, सपनेहुँ तुम्हहिं रिझावौं।
नाथ कृपा भव-सिन्धु धेनु-पद, सम सो जानि सिरावौं ॥ ११ ॥

हे प्रभो ! तुलसीदास में वह गुण नहीं है जिससे सपने में भी आप को प्रसन्न कर सके। स्वामी की कृपा के भरोसे संसार रूपी समुद्र को गैया के खुर के समान जान कर शीतल प्रसन्न) होता हूँ ॥११॥

पण्डित रामगुलामजी द्विवेदी की प्रति में 'सम सुजानि सिर नावौं' पाठ है। वहाँ अर्थ होगा कि—"गैया के खुर के समान जान कर आप को सिर नवाता हूँ"

(१४३)

सुनहु राम रघुबीर गोसाँई, मन अनीति रत मेरो।
चरन-सरोज बिसारि तिहारे, निसि दिन फिरत अनेरो ॥ १ ॥

हे रघुवीर स्वामिन् रामचन्द्रजी ! सुनिये, मेरा मन दुराचर में लगा है। आप के चरण-कमलों को भुला कर रातोदिन व्यर्थ ही घूमा करता है ॥१॥

मानत नहीं निगम अनुसासन, त्रास न काहू केरो।
भूलेउ सूल करम कोल्हुन्ह तिल,ज्यौं बहु बारन्हि पेरो ॥ २ ॥

वेद की आज्ञा नहीं मानता और न किसी को डरता है। कर्म रूपी कोल्हू में तिल की तरह बहुत वार पेरा गया; किन्तु उस पीड़ा को भूल गया है ॥२॥

रूपक और उदाहरण की संसृष्टि है, अनुप्रास भी है।

जहँ सतसङ्ग कथा माधव की, सपनेहुँ करत न फेरो।
लोभ मोह मद काम क्रोध रत, इन्ह सौं नेह घनेरो ॥ ३ ॥

जहाँ सत्सङ्ग और भगवान की कथा होती है वहाँ सपने में भी फेरा नहीं करता। लोभ, मोह, मद, काम और क्रोध में तत्पर इन्हीं से गहरा स्नेह रखता है ॥३॥

पर-गुन सुनत दाह पर-दूषन, सुनत हरष बहुतेरो।
आप पाप को नगर बसावत, सहि न सकत पर खेरो ॥ ४ ॥

पराये के गुण सुनते ही जलता है और दूसरों के दोष को सुन कर बहुत ही प्रसन्न होता है। आप तो पापों का नगर बसाता है और दूसरों की पुरहाई (छोटा गाँव) नहीं सह सकता ॥४॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि स्वयम् बड़े बड़े पापों को करता हूँ; किन्तु दूसरों के अत्यल्प पापों को नहीं सह सकता अर्थात् उसका ढिंढोरा पीटता हूँ। इसे सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है।

साधन फल स्रुति सार नाम तव, भव-सरिता कहँ बेरो।
सो पर कर काकिनी लागि सठ, बेँचि होत हठि चेरो ॥ ५ ॥

आप का नाम शुभ-साधनों का फल, वेद-तत्व और संसार रूपी नदी के लिये नौका रूप है। उसको (यह मन) मूर्ख कौड़ी के लिये दूसरों के हाथ बेंच कर हठ से गुलाम बनता है ॥५॥

राम-नाम का उत्तरोत्तर उत्कर्ष वर्णन में 'सार अलंकार' है। नदी और नौका में पूर्णरूप एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

कबहुँ कहूँ सङ्गति सुभाव तेँ, जाउँ सुमारग नेरो।
तब करि क्रोध सङ्ग कुमनोरथ, देत कठिन भटभेरो ॥ ६ ॥

कभी कहीं सङ्ग के प्रभाव से अच्छे मार्ग के समीप जाता हूँ, तब बुरे मनोरथ रूपी साथी क्रोध करके कड़ा धक्का देकर ढकेलते हैं ॥६॥

इक हौँ दीन मलीन हीन-मति, बिपति-जाल अति घेरो।
ता पर सहि न जाइ करुनानिधि, मन को दुसह दरेरो ॥ ७ ॥

हे दयानिधे ! एक तो मैं यों ही दुःखी, अपवित्र, बुद्धि हीन और आपदाओं के समूह से घिरा हूँ। उस पर मन का असहनीय धक्का नहीं सहा जाता है ॥७॥

हारि परेउँ करि जतन बिबिध बिधि, ता तेँ कहत सबेरो।
तुलसिदास यह त्रास मिटइ जब,-करहु हृदय महँ डेरो ॥ ८ ॥

अनेक प्रकार का यत्न करके मैं हार गया हूँ, इससे सबेरे (आयु रहते) कहता हूँ कि तुलसीदास का यह भय तब मिटेगा। जब आप हृदय में निवास करेंगे ॥८॥

जब आप हृदय में बसेंगे तब तुलसीदास का भय मिटेगा 'सम्भावना अलंकार' है। पं० रामगुलामजी की प्रति में 'तुलसिदास की त्रास मिटै जब' पाठ है।

(१४४)

सो धौँ को जो नाम लाज तेँ, नहिँ राखेउ रघुबीर।
कारुनीक बिनु कारनही हरि, हरी सकल भव-भीर ॥ १ ॥

न जाने वह कौन है जिसको रक्षा नाम के लाज से रघुनाथजी ने नहीं की। भगवान दया के रूप हैं बिना प्रयोजन ही सब के संसारी-भय को हरण किया है ॥१॥

हरि और हरी शब्दों में यमक और परिकराङ्कुर अलंकार की संसृष्टि है।

बेद बिदित जग बिदित अजामिल, बिप्रबन्धु अघ-धाम । घोर जमालय जात निवारेउ, सुत हित सुमिरत नाम ॥ २ ॥

वेद में विख्यात जगत्प्रसिद्ध पाप का घर अधम ब्राह्मण अजामिल पुत्र के निमित्त (नारायण) नाम स्मरण किया, उसको भीषण यमपुरी जाते हुए बचा लिया ॥२॥

पसु पाँवर अभिमान-सिन्धु गज, ग्रसेउ आइ जब ग्राह । सुमिरत सकृत सपदि आयउ प्रभु, हरेउ दुसह उर दाह ॥ ३ ॥

नीच पशु अभिमान के समुद्र हाथी को जब मगर ने आकर पकड़ लिया । तब उसने एक बार स्मरण किया, प्रभु ने उसके हृदय का असहनीय सन्ताप आ कर दूर किया ॥३॥

ब्याध निषाद गिद्ध गनिकादिक, अगनित अवगुन-मूल । नाम ओट तैं राम सबन्हि की, दूर करी सब सूल ॥ ४ ॥

व्याधा, मल्लाह, गिद्ध और गणिका आदि अपार अवगुणों के मूल की समस्त पीड़ा को नाम के ओट से रामचन्द्रजी ने दूर कर दिया ॥४॥

केहि आचरन घाटि हौं तिन्ह तैं, रघुकुल-भूषन-भूप । सीदत तुलसिदास निसि बासर, परेउ भीम तम-कूप ॥ ५ ॥

हे राजाओं के भूषण रघुनाथजी ! मैं उन (पापियों) से किस आचरण में कम हूँ । तुलसीदास भयानक अन्धकूप में पड़ा रातोदिन दुःखी हो रहा है ॥५॥

जब पापियों के आप उद्धारक हैं और मैं पापी हूँ तब क्या कारण है कि तुलसीदास अन्धकूप में पड़ा सदा खिन्न होता है; किन्तु आप दया नहीं करते हैं । यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है ।

(१४५)

राग-बिलावल

कृपासिन्धु जन दीन दुआरे, दाद न पावत काहे । जब जहँ तुम्हहिं पुकारत आरत, तब तिन्ह के दुख दाहे ॥ १ ॥

हे दयासिन्धु ! आप के द्वार पर यह दीन इन्साफ़ क्यों नहीं पाता है ? जब जहाँ दीनों ने आप की पुकार की, तब वहाँ उनके दुःख नाश किये ॥१॥

द, ज और त अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है ।

गज प्रहलाद पंडुसुत कपि सब के रिपु-सङ्कट मेँट्यो ।
प्रनत बन्धु-भय बिकल बिभीषन, उठि सो भरत ज्योँ भेँट्यो ॥२॥

हाथी, प्रह्लाद, दैत्य, राजा पाण्डु के पुत्र (युधिष्ठिर आदि पाँचों भाई) और सुग्रीव सब के शत्रु जनित सङ्कट को आपने मिटाया। भाई के डर से व्याकुल शरणागत विभीषण से उठ कर भरतजी के समान मिले ॥ २ ॥

शरणागत दीन विभीषण से उठ कर मिले। इस साधारण बात को विशेष से समता दिखाना कि जैसे भरत से मिले थे 'उदाहरण अलंकार' है।

मैँ तुम्हरो लेइ नाम ग्राम एक, उर आपने बसावौँ ।
भजन बिबेक बिराग लोग भल, करम करम करि ल्यावौँ ॥ ३ ॥

मैं आप का नाम लेकर अपने हृदयस्थल में एक गाँव (रामपुर) बसाना चाहता हूँ। उस में भजन, ज्ञान और वैराग्य रूपी भले लोगों को (टिकाने की इच्छा से) धीरे धीरे ले आता हूँ ॥३॥

सुनि रिस भरे कुटिल कामादिक, करहिँ जोर बरिआई ।
तिन्हहिँ उजारि नारि अरि धन पुर, राखहिँ राम गोसाँई ॥ ४ ॥

यह सुन कर क्रोध से भरे काम आदि दुष्ट ज़बर्दस्ती ज़ोर करते हैं, उन्हें (ज्ञानादि को) उजाड़ कर—हे स्वामिन् रामचन्द्रजी! स्त्री, शत्रु और धन (बुरे लोगों को लाकर) गाँव में टिकाते हैं ॥ ४ ॥

सम सेवा छल दान दंड हौँ, रचि उपाय पचि हारयौँ ।
बिनु कारन को कलह बड़ो दुख, प्रभु सौँ प्रगटि पुकारयौँ ॥ ५ ॥

सौम्यता, टहल, कपट, दान और दमन में पूर्णरूप से लग कर उपाय करके मैं हार गया। बिना प्रयोजन के झगड़े से बड़ा दुःख हो रहा है, इससे स्वामी से जाहिर करके सहायता के लिये गोहार मचाई है ॥५॥

सुर स्वारथी अनीस अलायक, निठुर दया चित नाहीँ ।
जाउँ कहाँ को बिपति निवारक, भव-तारक जग माहीँ ॥ ६ ॥

अन्य देवता अपने मतलबी असमर्थ, निकम्मे और कठोर हृदय उनके चित्त में दया नहीं है। कहाँ जाऊँ, जगत में ऐसा कौन है जो विपत्ति से छुड़ा कर संसार रूपी समुद्र से पार करता हो? (कोई नहीं है) ॥६॥

यहाँ समस्त देवताओं को अयोग्य ठहराने में एक मात्र रघुनाथजी की श्रेष्ठता व्यञ्जित करने की ध्वनि है।

तुलसी जदपि पोच तउ तुम्हरो, और न काहू केरो। दीजे भगति-बाँह बेरक बलि, सुबस बसइ यह खेरो ॥ ७ ॥

तुलसी यद्यपि अधम है तो भी दूसरे का नहीं; वह आप का है। वलि जाता हूँ। अपनी भक्ति रूपी झण्डे का बल दीजिये जिससे यह छोटा सा गाँव स्वाधीन होकर बसे ॥७॥

भक्ति-बल और झण्डे में पूर्णरूप से एकरूपता 'सम अभेद रूपक अलंकार' है। प्रतापी राजा की रक्षा में चोर ठगों की नहीं चलती। भक्ति का झण्डा देख कर वे डर जाँयगे और किसी तरह का अत्याचार न कर सकेंगे। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के समान तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है। पं० रामगुलामजी की प्रति में 'दीजे भक्ति बाँह बैरष ज्यों सुबस बसइ अब खेरो' पाठ है।

(१४६)

हौं सब बिधि राम रावरो, चाहत भयो चेरो। ठौर ठौर साहिबी होत है, ख्याल कालकलि केरो ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी! मैं सब प्रकार से आप का दास होना चाहता हूँ। कलिकाल की सम्मति से जगह जगह मलिकई होती है ॥१॥

काल करम इन्द्रिय-बिषय, गाहक गन घेरो। हौं न कबूलत बाँधि के, मोल करत करेरो ॥ २ ॥

काल, कर्म और इन्द्रियों के विषय रूपी बहुत से खरीदारों ने घेर रक्खा है। मैं इनकी गुलामी नहीं क़बूलता हूँ इससे मुझे बाँध कर कड़ा मोल करते हैं अर्थात् कहते हैं कि तुझे झखमार कर मेरी सेवा करनी पड़ेगी ॥ २ ॥

बन्दि छोर तव नाम है, बिरदैत बड़ेरो। मैं कहेउँ तब छल प्रीति कै, माँगेउ उर डेरो ॥ ३ ॥

बँधुओं को छुड़ाने (बन्धन मुक्त करने) में आप के नाम की बड़ी नामवरी है। मैं ने कहा कि मैं रामचन्द्रजी का गुलाम हूँ, तब कपट का प्रेम कर के हृदय में ठहरने को स्थान माँगा अर्थात दिखौआ मित्र बन हृदय में वे सब आ टिके हैं ॥३॥

नाम ओट अबलगि बचेउँ, मलजुग जग जेरो। अब गरीब न जमोगिये, पाइबो न हेरो ॥ ४ ॥

पाप के युग (कलियुग) ने जगत को हैरानी भोगनेवाला बना रक्खा है, अब तक मैं नाम की आड़ में बचता आया हूँ। अब इस ग़रीब की जमोगा-सरेखी न कीजिये नहीं तो यह (दुष्ट

कलिकाल) देख न सकेगा अर्थात् यदि आप कह देंगे कि तुलसी मेरा दास नहीं है तो मुझे मिथ्यावादी अनाथ समझ कर न जाने कौन सी दुर्दशा करेगा ॥ ४ ॥

जेहि कौतुक बक स्वान को, प्रभु न्याव निबेरो। तेहि कौतुक कहिये कृपाल, तुलसी है मेरो ॥ ५ ॥

हे कृपालु स्वामिन्? जिस खेल से आपने बकुले और कुत्ते का न्याय निपटाया उसी कुतूहल से कह दीजिये तुलसी मेरा (दास) है ॥ ५ ॥

आप के ऐसा कह देने पर कलियुग निराश होकर मेरा पीछा सहज में ही छोड़ देगा। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१४७)

कृपासिन्धु ता तेँ रहउँ, निसि दिन मन मारे। महाराज लाज आपुही, निज जाँघ उघारे ॥ १ ॥

हे कृपासिन्धु महाराज! मैं रातोदिन इसलिये मन मारे रहता हूँ कि अपनी जाँघ उघारने से अपने ही को लाज होती है ॥ १ ॥

मिले रहइँ मारेउ चहइँ, कामादि सँघाती। मो बिनु रहइँ न मेरियइ, जारइँ छल छाती ॥ २ ॥

काम आदि साथी मिले रहते हैं और मारना भी चाहते हैं। मेरे बिना रह नहीं सकते; तो भी कपट से मेरी ही छाती जलाते हैं ॥ २ ॥

काम, क्रोध, लोभ आदि प्रत्यक्ष में तो मित्र से जान पड़ते हैं; किन्तु परोक्ष में शत्रु की भाँति धोखेबाज़ी का काम करके छाती जलाते हैं। जिस (जीव) के बिना ये शरीर में रह नहीं सकते उसी के साथ सदा धूर्त्तता करते रहते हैं। इनकी कृतघ्नता अवर्णनीय है यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

बसत हिये हित जानि मैं, सब की रुचि पाली। कियेउ कथिक को दंड हौँ जड़-कर्म कुचाली ॥ ३ ॥

हृदय में बसनेवाले हितकारी जान कर मैं ने सब की रुचि पालन की; किन्तु ये कुमार्गी मूर्खता का काम करनेवाले मुझे कथक का डण्डा बना रक्खा है ॥ ३ ॥

कथक लोग बालकों को राग सिखाने के लिये डंडे में घुघुरू लगाते हैं और उससे ताल का सङ्केत करते हैं अर्थात् वह डंडा स्थिर नहीं रहने पाता—छन ऊपर छन नीचे धावत, जैसे नट को बटा।

देखी सुनी न आज लौँ, अपनायत ऐसी। करहिँ सबइ सिर मेरेही, फिरि परइ अनैसी ॥ ४ ॥

ऐसी आत्मीयता आज तक देखी सुनी नहीं गई कि कुकार्य्य करें वे सब और उसका अनिष्ट फल घूम कर मेरे ही सिर पड़े ॥ ४ ॥

कारण कहीं और कार्य्य कहीं अर्थात् कुचाल करें काम आदि और उसका बुरा फल मुझे भोगना पड़े 'प्रथम असङ्गति अलङ्कार' है।

बड़े अलेखी लखि परइँ, परिहरे न जाहीं । असमञ्जस मैं मगन हौं, लीजे गहि बाँही ॥ ५ ॥

बड़े अत्याचारी लख पड़ते हैं, त्यागने पर भी नहीं जाते। मैं अण्डस में डूबा हूँ, मेरी बाँह पकड़ लीजिये ॥ ५ ॥

बारक बलि अवलोकिये, कौतुक जन जी को । अनायास मिटि जायगो, सङ्कट तुलसी को ॥ ६ ॥

बलि जाता हूँ? एक बार खेल से दास के हृदय की ओर देखिये तो विना परिश्रम तुलसी का सङ्कट मिट जायगा ॥ ६ ॥

(१४८)

कहउँ कवन मुँह लाइ के, रघुबीर गोसाँई । सकुचत समुझत आपनी, सब साँइ-दोहाई ॥ १ ॥

हे स्वामिन् रघुनाथजी? कौन मुँह लगा कर आप से कहूँ। अपनी सब स्वामिद्रोहता समझ कर लज्जित हो रहा हूँ ॥ १ ॥

सेवत बस सुमिरत सखा, सरनागत सौंहाँ । गुन गन सीतानाथ के, चित करत न हौं हौं ॥ २ ॥

सेवा करने से वश में, स्मरण करने से मित्र होनेवाले और शरणागतों के अनुकूल रहनेवाले सीतानाथ के गुणों की ओर मैं चित्त नहीं करता हूँ ॥ २ ॥

कृपासिन्धु बन्धु दीन के, आरत हितकारी । प्रनतपाल बिरदावली, सुनि जानि बिसारी ॥ ३ ॥

कृपासिन्धु दीनों के सहायक बन्धु दुःखी जनों के हितकारी और शरणागतों के रक्षक (रघुनाथजी) की नामवरी सुन कर तथा जान कर भुला दिया ॥ ३ ॥

सेइ न धेइ न सुमिरि कै, पद-प्रीति सुधारी । पाइ सुसाहेब राम सौं, भरि पेट बिगारी ॥ ४ ॥

न सेवा, न ध्यान और न स्मरण करके चरणों में प्रीति ही ठीक ठीक की। रामचन्द्रजी के समान श्रेष्ठ स्वामी पा कर पेट भर कर बिगाड़ किया ॥ ४ ॥

नाथ गरीब-नेवाज हैं, मैं गही न गरीबी। तुलसी प्रभु निज ओर तें, बनि परइ सो कीबी ॥ ५ ॥

हे नाथ ! आप ग़रीबनिवाज हैं मैं ने ग़रीबी नहीं पकड़ी। प्रभो ! अपनी ओर से जो बन पड़े वह तुलसी के लिये कीजिये ॥ ५ ॥

(१४९)

कहाँ जाउँ कासौं कहउँ, और ठौर न मेरे। जनम गँवायउँ तेरेही, द्वार किङ्कर तेरे ॥ १ ॥

कहाँ जाऊँ और किस से कहूँ, मेरे लिये दूसरी जगह नहीं है। आप ही के दरवाज़े पर आप का दास होकर जन्म बिताया ॥१॥

मैं तो बिगारी नाथ सो,-स्वारथ के लीन्हे। तोहि कृपानिधि क्यौं बनइ, मेरी सी कीन्हे ॥२॥

हे नाथ ! मैं ने तो बिगाड़ा वह अपने मतलब के लिये, किन्तु हे कृपानिधे ! आप को मेरे समान करने से कैसे बनेगा ? ॥२॥

मैं जीव हूँ अज्ञानता वश विषय कामनाओं में फँस कर बिगाड़ करता हूँ। आप ज्ञान स्वरूप चेतन परमात्मा जीवों के उपकारी हैं, फिर अपना स्वभाव कैसे त्याग सकते हैं ? यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

दिन-दुरदिन दिन-दुरदसा, दिन-दुख दिन-दूषन। जौ लौं तू न बिलोकिहै, रघुबंस-बिभूषन ॥ ३ ॥

हे रघुकुल के भूषण ! जब तक आप दयादृष्टि से न निहारेंगे तब तक नित्य बुरे दिन, नित्य सासति, नित्य दुःख और नित्य ही बुराई है ॥३॥

द और न अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। 'दिन' शब्द कई बार आया 'पुनरुक्ति-प्रकाश' है। अपने अज्ञ स्वभाव का विश्वास प्रकट करने में 'आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार' है। तीनों की संसृष्टि है।

दई पीठि बिनु दीठि मैं, तू बिस्व-बिलोचन। तो सौं तुहीं न दूसरो, नत-सोच-बिमोचन ॥ ४ ॥

मैं ने बिना निगाह के पीछा दिया; परन्तु आप संसार के नेत्र (सब देखनेवाले) हैं। नम्र जनों के शोक को छुड़ानेवाले आप के समान आप ही हैं, दूसरा नहीं है ॥४॥

उपमान के अभाव के कारण उपमेय रामचन्द्रजी को उपमान बनाना 'अनन्वयोपमा अलंकार' है । अनुप्रास भी है ।

पराधीन देव दीन हौं, स्वाधीन गोसाँई । बोलनहारे सौं करइ, बलि बिनय कि झाँई ॥ ५ ॥

हे देव ! मैं (जीव माया के वश) पराधीन हूँ और आप स्वतन्त्र स्वर्ग के मालिक (परमेश्वर) हैं । बलि जाता हूँ ! क्या जड़ परछाहीं चेतन बोलनेवाले प्राणी से विनती कर सकती है ? (कदापि नहीं) ॥५॥

यहाँ कहना तो यह है कि मैं जड़ जीव हूँ और आप चैतन्य घन परमात्मा हैं, फिर मैं किस तरह विनती करके आप को प्रसन्न कर सकता हूँ । इसे सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है । कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीति अर्थ प्रगट होना कि जड़ परछाहीं चैतन्य जोव से प्रार्थना नहीं कर सकती 'वक्रोक्ति अलंकार' है । द और व अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास भी है ।

आपु देखि मोहि देखिये, जन जानिय साँचो । बड़ी ओट राम नाम की, जेहि लई सो बाँचो ॥ ६ ॥

अपनी ओर देख कर फिर मुझे देखिये और सच्चा सेवक समझिये । हे रामचन्द्रजी ! आप के नाम की बड़ी आड़ जिसने लिया वह बच गया ॥६॥

यहाँ लक्षणामूलक अगूढ़ व्यङ्ग है कि मैं ने राम नाम की ओट ली है, नाम की महिमा विचार कर मुझे सच्चा दास मान कर शरण में रखिये ।

रहनि रीति राम रावरी, नित हिय हुलसी है । ज्यों भावइ त्यों करु कृपा, तेरो तुलसी है ॥ ७ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आप के स्वभाव और व्यवहार नित्य ही मेरे हृदय को आनन्दित करते हैं । जैसे अच्छा लगे वैसे कृपा कीजिये, तुलसी आप का (दास) है ॥ ७ ॥

(१५०)

रामभद्र मोहि आपनो, सोच है अरु नाहीं । जीव सकल सन्ताप के,-भाजन जग माहीं ॥ १ ॥

हे कल्याण मूर्त्ति रामचन्द्रजी ! मुझे अपना सोच है और नहीं भी है जब कि जगत के समस्त जीव दुःख के पात्र हैं ॥१॥

मुझे अपना सोच है और नहीं भी है, इस सामान्य विरोधी वर्णन को विशेष सिद्धान्त से समर्थन करना कि जगत के प्राणी मात्र सन्ताप के भाजन हैं फिर मेरा सन्तप्त होना कुछ आश्चर्य नहीं 'अर्थान्तरन्यास अलंकार' है ।

नातो बड़े समर्थ सौं, एक ओर किधौं हूँ। तोकौं मो से अति घने, मो कौं एकइ तूँ ॥ २ ॥

बड़े समर्थ स्वामी से (सेवक का) नाता, अथवा एक ओर मैं (अधम दास) हूँ। मेरे समान आप के समीप बहुतेरे हैं; किन्तु मेरे लिये (श्रेष्ठ स्वामी) एक आप ही हैं ॥२॥

व्यङ्गार्थ में प्रथम विषम अलंकार की ध्वनि है कि कहाँ आप इतने बड़े समर्थ स्वामी और कहाँ मैं अधम सेवक हूँ।

बड़ि गलानि हिय हानि है, सरबज्ञ सुसाँई। कूर कुसेवक कहत हैं, सेवक की नाँई ॥३॥

मेरे मन में इसका बड़ा खेद और घाटा है कि सर्वज्ञ श्रेष्ठ स्वामी से कुमार्गी अधम सेवक अच्छे सेवकों की तरह बातें कहता है ॥ ३ ॥

यहाँ अनमेल वर्णन में 'प्रथम विषम अलंकार' है।

भलो पोच राम को कहइँ, मोहि सब नर-नारी। बिगरे सेवक स्वान सौं, साहेब सिर गारी ॥ ४ ॥

मुझे सब स्त्री-पुरुष भला या बुरा रामचन्द्रजी का दास कहते हैं। सेवक और कुत्ते के अपराध से मालिक के सिर गाली आती है ॥ ४ ॥

काम बिगाड़े सेवक और कुत्ता, गाली पावे निरपराध मालिक—कारण कहीं और कार्य्य कहीं 'प्रथम असङ्गति अलंकार' है मेरे दोष से स्वामी को दूषण लगने का दुःख व्यञ्जित करने में गुणीभूत व्यङ्ग है।

असमञ्जस मन को मिटइ, सो उपाउ न सूझै। दीनबन्धु कीजे सोई, बनि परइ जो बूझै ॥ ५ ॥

जिससे मन का असमंजस दूर हो वह उपाय नहीं सूझता है। हे दीनबन्धु ! जो आप को समझ पड़े और हो सके वही कीजिये ॥५॥

बिरदावली बिलोकिये, तिन्ह मैं कोउ हौं हौं। तुलसी प्रभु को परिहरेउ, सरनागत सौंहौं ॥ ६ ॥

अपनी नामवरी देखिये उसमें मैं भी कोई हूँ, हे प्रभो ! दास न सही तो सन्मुख शरण आया हुआ तुलसी आप के द्वारा त्यागा जीव है ॥६॥

यहाँ सम्बन्ध सूचित करने की व्यञ्जना है कि दास का सम्मान नहीं प्राप्त है; किन्तु आप से तिरस्कृत होने का नाता तो अवश्य है। तुलसी आप को छोड़ कर अब अन्यत्र नहीं जा सकता। यह गूढ़ व्यङ्ग है।

(१५१)

जौं पै चेराई राम की, करते न लजातो। तौं तू दाम कुदाम ज्यौं, कर कर न बिकातो ॥ १ ॥

यदि तू रामचन्द्रजी की सेवकाई करने में न लजाता तो मूल्यवान सिक्का हो जाता, खोटी धातु की तरह हाथों हाथ न विकता ॥१॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि यदि तू रामचन्द्रजी की सेवा करने में न लजाता तो रामभक्त कहलाता और काम क्रोधादि के वश में होकर जगह जगह दुर्दशा न भोगता। इस बात को सीधे न कह कर प्रतिविम्ब मात्र घुमा कर कहना 'ललित अलङ्कार' है। उदाहरण और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

जपत जीह रघुनाथ को, नाम नहिँ अलसातो। बाजीगर के सूम ज्यौं, खल खेह न खातो ॥ २ ॥

रघुनाथजी का नाम जीभ से जपने में आलस्य न करता तो—रे दुष्ट! बाज़ीगर के सूम की तरह तू धूल न खाता ॥२॥

मदारी तमाशा करते समय पैसा न देनेवालों पर कटाक्ष करके काठ वा कपड़े के पुतले को सूम कह कर उसके मुख पर धूल डालता है। उसी तरह यदि तू जीभ से राम नाम जपता तो घमण्डी धनिकों के द्वार पर ठोकरें न खाता 'उदाहरण अलङ्कार' है। ज, न और ख अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

जौं तू मन मेरे कहे, राम काम कमातो। सीतापति सनमुख सुखी, सब ठाउँ समातो ॥ ३ ॥

हे मन! यदि तू मेरे कहने से रामचन्द्रजी से सरोकार (सम्बन्ध स्थापन) की कमाई करता तो सीतानाथ के सन्मुख होकर सुखी होता और सब जगह अर्थात् लोक-परलोक में स्थान पाता ॥३॥

राम सुहाते तोहि जौं, तू सबहि सुहातो। काल करम कुलि कारनी, कोऊ न कौंहातो ॥ ४ ॥

यदि तुझे रामचन्द्रजी अच्छे लगते तो तू सब को सुहानेवाला होता। काल, कर्म और समस्त भेद उत्पन्न करनेवाले (गुण स्वभाव आदि) कोई न अप्रसन्न होते ॥४॥

स और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। सम्भावना की ध्वनि है।

राम नाम अनुरागही, जिय जौं रतियातो। स्वारथ परमारथ पथी, तोहि सब पतियातो ॥ ५ ॥

यदि राम नाम के प्रेम ही से मन प्रीतिमान होता तो स्वार्थ और परमार्थ के यात्री सब तेरा विश्वास मानते ॥५॥

स्वार्थ-लोक के साथी प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य और बड़ाई आदि, परमार्थ-परलोक के सङ्गी ज्ञान, वैराग्य, उपासना और सद्विचार आदि राम नाम की प्रीति से तुझ में विश्वास कर सहायक होते। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

सेइ साधु सुनि समुझि के, पर-पीर पिरातो। जनम कोटि को काँदलो,-हृद-हृदय थिरातो ॥ ६ ॥

साधुओं की सेवा कर उनके स्वभाव को सुन कर और समझ कर पराये दुःख से दुखी होता तो करोड़ों जन्म का गोहँड़िल (गन्दा) हृदय रूपी कुण्ड (छोटी और गहरी तलैया) थिरा जाता ॥६॥

भव मग अगम अनन्त है, बिनु स्रमहिँ सिरातो। महिमा उलटे नाम की, मुनि कियेउ किरातो ॥ ७ ॥

संसार का मार्ग दुर्गम और अपार है वह बिना परिश्रम ही समाप्त हो जाता। उलटे नाम की महिमा ने किरात को मुनि बना दिया ॥७॥

उलटे नाम के जाप से किरात वाल्मीकि मुनि हो गये, फिर सीधे राम नाम जपने का फल कैसे कहा जा सकता है? यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

अमर अगम तनु पाइ सो, जड़ जाय न जातो। होतो मङ्गल-मूल तुव, अनुकूल बिधातो ॥ ८ ॥

अरे मूर्ख! देवताओं को दुर्लभ शरीर पाकर वह व्यर्थ न जाता। तू मङ्गल का मूल होता और विधाता दाहिने होते ॥८॥

जौं मन प्रीति प्रतीति सौं, राम नामहिँ रातो। तुलसी राम प्रसाद तैं, तिहुँ ताप न तातो ॥ ९ ॥

हे मन! यदि तू प्रीति और विश्वास से रामचन्द्रजी के नाम ही से प्रेम करता तो रामचन्द्रजी की कृपा से तुलसी तीनों तापों से न जलता ॥९॥

यहाँ जगत के लोगों को विशेष सूचना देने के अर्थ गोस्वामीजी अपने मन से कहते हैं जिसमें वे सब सुन कर समझ लें 'गूढ़ोक्ति अलङ्कार' है।

(१५२)

राम भलाई आपनी, भल कियेउ न काको। जुग जुग जानकिनाथ को, जग जागत साको ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी ने अपनी भलाई से किसका भला नहीं किया? युग युगान्तर से जगत में जानकीनाथ के पुरुषार्थ की महिमा प्रख्यात है ॥१॥

'युग' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश और ज अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है ।

ब्रह्मादिक बिनती करी, कहि दुख बसुधा को । रबिकुल-कैरव-चन्द भो आनन्द सुधा को ॥ २ ॥

ब्रह्मा आदि देवता पृथ्वी के दुःख को कह कर विनती की । सूर्य्यकुल रूपी कुमुद वन के चन्द्रमा (आपने) आनन्द रूपी अमृत को बरसा कर उन्हें शीतल किया ॥२॥

सूर्य्यकुल पर कुमोदिनी पुष्प का आरोप, रामचन्द्रजी पर चन्द्रमा और आनन्द में अमृत का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है ।

कौसिक गरत तुषार ज्यौँ, तकि तेज तिया को । प्रभु अनहित हित को दियेउ, फल कोप किया को ॥ ३ ॥

स्त्री (ताड़का) के तेज को देख कर विश्वामित्रजी पाले की तरह गलते थे । प्रभु रामचन्द्रजी ने उस अपकारिणी पर क्रोध करने का अच्छा ही फल दिया ॥३॥

उदाहरण और चतुर्थ तुल्ययोगिता अलंकार की संसृष्टि है ।

हरेउ पाप आप जाइ के, सन्ताप सिला को । सोच मगन काढ़े सही, साहेब मिथिला को ॥ ४ ॥

स्वयम् जा कर शिला (अहल्या) के दुःख को हर लिया । मिथिलेश्वर शोक सागर में डूब रहे थे, उन्हें निकाल कर स्वस्थ किये ॥४॥

रोष-रासि भृगुपति धनी,-अहमिति ममता को । चितवत भाजन करि लियेउ, उपसम समता को ॥ ५ ॥

क्रोध के राशि, अहंकार और ममत्व के धनी परशुरामजी को देखते ही शान्ति और सौम्यता का पात्र बना लिया ॥५॥

मुदित मानि आयसु चले, बन मातु पिता को । धरम धुरन्धर धीर धुर, गुन सील जिता को ॥ ६ ॥

माता-पिता की आज्ञा मान कर प्रसन्नता से वन को चले । ऐसा धर्मधुरन्धर धीरज का धुरा, गुण और शील का विजयी कौन है? (कोई नहीं) ॥६॥

अनुप्रास और वक्रोक्ति की संसृष्टि है ।

गुह गरीब गत ज्ञातिहू, जेहि जिउ न भखा को । पायेउ पावन प्रेम तैं, सनमान सखा को ॥ ७ ॥

ग़रीब गुहा जाति से भी रहित (नीच) जिसने कौन से जीव को भक्षण नहीं किया था, पवित्र प्रेम से उसने मित्र का सन्मान पाया ॥७॥

सदगति सबरी गीध की, सादर करता को। सोच सींव सुग्रीव के, सङ्कट हरता को ॥ ८ ॥

आदर के साथ शवरी और गिद्ध की अच्छी गति (मोक्ष) करनेवाला कौन है? सुग्रीव के शोक और सङ्कट की सीमा का हरनेवाला कौन है? ॥८॥

राखि बिभीषन कों सकइ, अस कालगहा को। आज बिराजत राज होइ दसकंठ जहाँ को ॥ ९ ॥

ऐसा किसको काल पकड़े था जो (रावण से वैर खरीद कर) विभीषण को अपनी शरण में रख सकता। आज वही विभीषण जहाँ का रावण राजा था वहाँ राजा होकर विराजमान है ॥९॥

बालिस बासी अवध को, बूझिये न खाको। ते पाँवर पहुँचे तहाँ, जहँ मुनि मन थाको ॥ १० ॥

अयोध्या का रहनेवाला मूर्ख धोबी समझिये तो खाक भी न था, वे नीच वहाँ पहुँचे जहाँ पहुँचने में मुनियों का मन थक जाता है ॥१०॥

गति न लहइ राम नाम सौं, अस बिधि सिरजा को। सुमिरत कहत प्रचारि कैं, बल्लभ-गिरजा को ॥ ११ ॥

ब्रह्मा ने ऐसा कौन जीव उत्पन्न किया है जो राम नाम से मोक्ष न पावेगा? पार्वतीजी के प्यारे शिवजी ललकार कर कहते हैं और आप स्मरण करते हैं ॥११॥

अकनि अजामिल की कथा, सानन्द न भा को। नाम लेत कलिकालहू, हरिपुरहि न गा को ॥ १२ ॥

अजामिल की कथा सुन कर कौन आनन्द युक्त नहीं हुआ? कलिकाल में भी नाम लेने से कौन नहीं भगवान के लोक को गया? ॥१२॥

राम नाम महिमा करइ, कामभूरुह आको। साखी बेद पुरान हैं, तुलसी तनु ताको ॥ १३ ॥

रामनाम की महिमा मदार को कल्पवृक्ष बनाती है। वेद और पुराण गवाह हैं, तुलसी की ओर देखिये (क्या का क्या हो गया) ॥१३॥

वेद पुराणों की साक्षी में शब्दप्रमाण और तुलसी के तरफ़ देखिये 'प्रत्यक्षप्रमाण अलंकार' है।

(१५३)

मेरे रावरियै गति है, रघुपति बलिजाउँ। निडर नीच निरगुन निरधन कहँ, जग दूसरो न ठाकुर ठाउँ ॥ १ ॥

हे रघुनाथजी ! बलि जाता हूँ, मुझे आप ही का सहारा है। मेरे बराबर निर्भय, नीच, निर्गुणी और दरिद्री को संसार में जगह नहीं है और न दूसरा कोई मालिक ही है ॥१॥

हैं घर घर भव भरे मुसाहिब, सूझत सबहि आपनो दाउँ। बानर-बन्धु बिभीषन हित बिनु, कोसलपाल कहूँ न समाउँ ॥२॥

जगत में घर घर मालिक भरे हैं उन सब को अपना ही घात सूझता है। हे कोशलेश भगवान वानरों के सहायक बन्धु ! मैं विभीषण के मित्र के बिना कहीं समा नहीं सकता ॥२॥

'घर' शब्द में पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार है और अनुप्रास भी है।

प्रनतारति भञ्जन जन रञ्जन, सरनागत पवि-पञ्जर नाउँ। कीजै दास दासतुलसी अब, कृपासिन्धु बिनु मोल बिकाउँ ॥ ३ ॥

दीनों के दुःख नाशक, सेवकों को प्रसन्न करने वाले और नाम शरणागतों के लिये वज्र का पींजड़ा है। हे कृपासिन्धु ! तुलसीदास को अब अपना दास बनाइये, मैं बिना मोल ही आप के हाथ बिकता हूँ ॥३॥

यहाँ 'दास' शब्द दो बार आया; किन्तु अर्थ भिन्न होने से 'यमक अलंकार' है।

(१५४)

देव दूसरो कौन दीन को दयालु। सील-निधान सुजान-सिरोमनि, सरनागत प्रिय प्रनतपालु ॥ १ ॥

दीनदयालु, शीलनिधि, चतुर-शिरोमणि, शरणागतों पर प्रेम और भक्तों की रक्षा करनेवाला दूसरा कौन देवता है ? ॥१॥

कण्ठध्वनि से काकु द्वारा विपरीत-अर्थ प्रगट होना कि आप के समान दूसरा कोई देवता नहीं है 'वक्रोक्ति अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

को समरथ सरबज्ञ सकल प्रभु, सिव सनेह मानस मरालु। को साहेब किय मीत प्रीति बस, खग निसिचर कपि भील भालु ॥२॥

समर्थ, सर्वज्ञ, सब के स्वामी और शिवजी के स्नेह रूपी मानसरोवर में हंस रूप होकर कौन निवास करता है ? किस मालिक ने प्रीति के वश पक्षी, राक्षस, बन्दर, किरात और भालू को मित्र बनाया था ? ॥२॥

यहाँ भी वक्रोक्ति द्वारा यह प्रगट किया गया है कि ऐसी अचरज भरी करनी आप ही ने की है। स, म, त और भ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

नाथ हाथ माया प्रपञ्च सब, जीव दोष गुन करम काल ।
तुलसिदास भल पोच रावरो, नेकु निरखि कीजै निहाल ॥ ३ ॥

हे नाथ! माया का प्रपञ्च, जीव के दोष, गुण, कर्म और काल सब आप के हाथ में हैं। भला या बुरा तुलसीदास आप का (दास) है, तनिक इसकी ओर निहार कर पूर्णकाम कीजिये ॥-॥

(१५५)

राग-सारङ्ग ।

बिस्वास एक राम नाम को । मानत नहिं प्रतीति अनत ऐसो सुभाउ मन बाम को ॥ १ ॥

एक राम नाम का विश्वास छोड़ कर मेरे टेढ़े मन की ऐसी टेव पड़ गई है कि और कहीं भरोसा नहीं मानता ॥१॥

पढ़िबो परेउ न छठी छ-मत रिग,-जजुर अथरबन साम को ।
व्रत तीरथ तप सुनि सहमत पचि,-मरइ करइ तनु छाम को ॥२॥

छओं शास्त्र, ऋग, यजुर, अथर्वण और साम वेदों का पढ़ना मेरे भाग्य ही में नहीं पड़ा (लिखा) था। उपवास, तीर्थयात्रा और तप की कठिनता सुन कर सहम जाता हूँ कि उसमें पूर्णरूप से लग कर कौन मरे और शरीर को दुर्बल करे ॥२॥

करम-जाल कलिकाल कठिन आधीन सुसाधित दाम को ।
ज्ञान बिराग जाग जप तप भय, लोभ मोह मद काम को ॥ ३ ॥

कलिकाल में कर्म-समूह का करना कठिन है, फिर उसका अच्छी तरह सम्पादित होना द्रव्य के आधीन है। ज्ञान वैराग्य, यज्ञ, जप और तप में लोभ, मोह, मद, काम आदि का डर रहता है ॥३॥

सब दिन सब लायक गायक भये, रघुनायक गुन-ग्राम को ।
बैठे नाम कामतरु तर डर, कवन घोर घन घाम को ॥ ४ ॥

रघुनाथजी के गुण-ग्राम को गान करके सब दिन से (प्राणी मात्र) सब योग्य हुए हैं। नाम रूपी कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए को भयङ्कर घाम का कौन सा डर है? ॥४॥

राम नाम में कल्पवृक्ष का आरोप और संसार के सन्ताप में भीषण धूप का आरोपण कर पूर्णरूप से एकरूपता प्रगट करना 'सम अभेदरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

को जानइ को जइहै जमपुर, को सुरपुर पर-धाम को।
तुलसिहि बहुत भलो लागत जग, जीवन राम-गुलाम को ॥ ५ ॥

कौन जाने कौन यमपुरी जायगा, कौन स्वर्ग और कौन वैकुण्ठ में पधारेगा। तुलसी को रामचन्द्रजी का दास होकर जगत में जीना बहुत अच्छा लगता है ॥५॥

(१५६)

कलि नाम कामतरु राम को। दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोष घोर घन घाम को ॥ १ ॥

कलिकाल में रामचन्द्रजी का नाम कल्पवृक्ष रूप है। दरिद्रता रूपी दुर्भिक्ष के दुःख को और दोषरूपी भीषण ताप का नाश करनेवाला है ॥१॥

दरिद्रता में दुर्भिक्ष के कष्टों का आरोप और पातकों में विकराल घाम का आरोप करके राम-नाम में कल्पवृक्ष का आरोपण इसलिये किया कि वह वाञ्छित फल दाता है और वृक्ष की छाया में कठिन धूप से बचाव होता है। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

नाम लेत दाहिनो होत मन, बाम बिधाता बाम को।
कहत मुनीस महेस महातम, उलटे सीधे नाम को ॥ २ ॥

जिन कुटिलों पर विधाता का मन विपरीत है, राम नाम कहते ही वह अनुकूल हो जाता है। मुनीश्वर (वाल्मीकि) और शिवजी उलटे सीधे नाम के महत्व को कहते हैं ॥२॥

मुनीश और शिवजी का नाम लेकर उसी क्रम से उलटा सीधा कहना अर्थात् वाल्मीकि मरा मरा जप कर ब्रह्मर्षि हुए और शिवजी राम राम कह कर भीषण विष को पान कर पचा गये 'यथासंख्य अलंकार' है।

भलो लोक परलोक तासु, जाको बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नाम तें, सोच न कूच मुकाम को ॥ ३ ॥

उसका लोक और परलोक में भला है जिसको इस सुन्दर रत्न का भरोसा है। नाम ही के नाते तुलसी को जगत जानता है इससे संसार से चले जाने और रहने का कोई सोच नहीं है ॥३॥

जब जगत में राम नाम से नाता प्रसिद्ध हो गया, तब यह अनित्य शरीर रहे वा चला जाय इसकी चिन्ता नहीं। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१५७)

सेइये सुसाहेब राम सों । सुखद सुसील सुजान सूर सुचि सुन्दर कोटिक काम सो ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी सरीखे श्रेष्ठ स्वामी की सेवा करनी चाहिये वे सुख देनेवाले, अच्छे शीलवान्, चतुर, शूरवीर, पवित्र और करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर हैं ॥१॥

स और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। करोड़ों मदन के बराबर शोभन कहने में व्यतिरेक की ध्वनि है।

सारद सेष साधु महिमा कहैं, गुन गन गायक साम सो । सुमिरि सप्रेम नाम जासौं रति, चाहत चन्द्र-ललाम सो ॥ २ ॥

जिनकी महिमा, सरस्वती, शेष और सज्जन लोग कहते हैं तथा जिनके गुणों को सामवेद के समान गवैया गाते हैं। प्रेम के साथ नाम स्मरण करके जिससे चन्द्रभूषण (शिवजी) प्रीति चाहते हैं ॥२॥ स, ग और च अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

गमन बिदेस कलेस लेस नहिं, सकुचत सकृत प्रनाम सो । साखी ताको बिदित बिभीषन, बैठो अबिचल धाम सो ॥ ३ ॥

(राम नाम के प्रभाव से) विदेश यात्रा में लेशमात्र कष्ट नहीं होता, जो एक बार प्रणाम करने से सकुचते हैं (कि मैं ने इसकी कोई भलाई नहीं की)। इसका विख्यात साक्षी विभीषण है जो अचल स्थान में बैठा है ॥३॥

टहल सहल जन महल महल, जागत चारौं जुग जाम सो । देखत दोष न खीझत रीझत, सुनि सेवक गुन-ग्राम सो ॥ ४ ॥

जिनकी सेवा सहल है, भक्तों के घर घर चारों युग और आठों पहर में विख्यात है। आँख से देखते हुए सेवकों के दोष को चिढ़ते नहीं और सुने हुए गुणों से प्रसन्न होते हैं ॥४॥ अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

जा के भजे तिलोक तिलक भे, त्रिजगजोनि तन तामसो । तुलसी ऐसे प्रभुहि भजइ नहिँ, ताहि बिधाता बाम सो ॥ ५ ॥

जिनका भजन करने से तिर्यकयोनि तामसी शरीरवाले (पशु, पक्षी, राक्षस आदि) त्रैलोक-शिरोमणि हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे स्वामी रामचन्द्रजी को जो नहीं भजता उस पर विधाता टेढ़े हैं ॥५॥

(१५८)

राग-नट ।

कैसे देउँ नाथहि खोरि । काम-लोलुप भ्रमत मन हरि, भगति परिहरि तोरि ॥ १ ॥

स्वामी को कैसे दोष देऊँ । हे भगवान् ! मेरा मन आप की भक्ति छोड़ कर विषय की कामनाओं का अत्यन्त लालची होकर भटकता फिरता है ॥१॥

बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि । देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि ॥ २ ॥

पुजाने पर बड़ी प्रीति और पूजने पर थोड़ी भी नहीं है । शिक्षा देता हूँ; किन्तु सिखाना मानता नहीं ऐसी मेरे मन की मूर्खता है ॥२॥

किये सहित सनेह जे अघ, हृदय राखे चोरि । सङ्ग बस किय सुभ सुनाये, सकल लोक निहोरि ॥ ३ ॥

जिन पापों को स्नेह के सहित किये उन्हें हृदय में चुरा रखता हूँ । सङ्ग वश कोई अच्छा काम किया तो उसे सारी दुनियाँ को विनती करके सुनाता हूँ ॥३॥

करउँ जो कछु धरउँ सचि पचि, सुकृत सिला बटोरि । पइठि उर बरबस दयानिधि, दम्भ लेत अँजोरि ॥ ४ ॥

जो कुछ सुकृत (पुण्य) तन्मय हो शीलावृत्ति की तरह बटोर कर सञ्चित करके रखता हूँ । हे दयानिधे ! उसको घमण्ड रूपी डाकू उँजाला करके ज़ोरावरी से हृदय में पैठ कर लूट लेता है ॥४॥

कहने का मुख्य प्रयोजन यह है कि जो कुछ नाम मात्र पुण्य करता हूँ उसको बड़े अभिमान से कहता फिरता हूँ । अपने मुख कहने से सुकृत नष्ट हो जाता है । इस बात को सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलङ्कार' है । अनुप्रास भी है । सीलाकर्म वह कहलाता है कि— किसान ने खेत से फ़सल काट ली, बीननेवाले बीन चुके और पक्षी-गण अपना भाग चुग गये हों । उस खेत से दराज और गड़हों में से एक एक दाना बीन कर कुछ अन्न इकट्ठा किया जावे । पूर्व में प्रायः वाणप्रस्थ आश्रमी इसी प्रकार अन्न जुटा कर अपना निर्वाह करते थे ।

लोभ मनहिं नचाव कपि ज्यों, गरे आसा डोरि । बात कहउँ बनाइ बुध ज्यों, बर बिराग निचोरि ॥ ५ ॥

लोभ रूपी मदारी गले में आशा रूपी डोरी लगा कर मन को बन्दर की तरह नचाता है; परन्तु बनावट की बात उत्तम वैराग्य निचोड़ कर विद्वानों जैसी कहता हूँ ॥५॥

रूपक और उदाहरण अलङ्कार की संसृष्टि है।

इतो पै तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि । निलजता पर रीझि रघुवर, देहु तुलसिहि छोरि ॥ ६ ॥

इतने पर भी आप का दास कहलाता हूँ, लाज को घोल कर पी डाला है। हे रघुनाथजी! इस निर्लज्जता पर प्रसन्न होकर तुलसी को संसार-बन्धन से मुक्त कर दीजिये ॥६॥

'लाज' मिश्री या शकर नहीं है जो घोल कर पान की जा सकती हो, किन्तु इस प्रकार की कहावत जगत में प्रसिद्ध है कि अमुक मनुष्य ने लज्जा को घोल कर पी डाला। इसका अर्थ लाज छोड़ देना या निर्लज्ज होना ग्रहण होता है। मुख्यार्थ से भिन्न अर्थ प्रगट होना रूढ़ि लक्षणा है। तुलसी के बराबर निर्लज्ज कोई न होगा यह व्यङ्गार्थ वचन ही से प्रगट होता है, वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१५९)

है प्रभु मेरोई सब दोस । सीलसिन्धु कृपाल नाथ अनाथ आरत पोस ॥ १ ॥

हे प्रभो! सब मेरा ही दोष है। आप शील के सागर, दयालु, अनाथों के नाथ और दुःखी-जनों के पालक हैं ॥१॥

वेष वचन विराग मन अघ,-अवगुनन्हि को कोस । राम प्रीति प्रतीति पोलो, कपट करतब ठोस ॥ २ ॥

वेश और वचन वैराग्यवान का है, किन्तु मन पाप तथा अवगुणों का भण्डार है। रामचन्द्रजी की प्रीति और विश्वास से पोपला (ख़ाली) है, पर कपट के कामों में मज़बूत है ॥२॥

राग रङ्ग कुसङ्गही सौं, साधुसङ्गति रोस । चहत केहरि जसहि सेइ सृगाल ज्यौं खरगोस ॥ ३ ॥

बुरे साथियों ही की प्रीति से प्रसन्नता और साधुओं की सङ्गति से क्रोध रखता हूँ। जैसे खरहा सियार की सेवा करके सिंह के यश को चाहता है ॥३॥

साधुसङ्ग से रुष्ट हो कुसङ्गियों से प्रेम करके मैं सुकीर्त्ति चाहता हूँ। इस सामान्य बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे सिंह की कीर्त्ति चाहनेवाला ख़रगोश गीदड़ की सेवा करता है 'उदाहरण अलंकार' है। गीदड़ डरपोंक वह अपनी ही रक्षा सिंह से नहीं कर सकता तो उसका सेवक किस तरह सिंह की कीर्त्ति पा सकता है। यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

सम्भु सिखवत रसनहूँ नित, राम नामहिं घोस। दम्भहू कलि नाम कुम्भज, सोच सागर सोस ॥ ४ ॥

शिवजी भी सिखाते हैं कि नित्य जिह्वा से रामचन्द्रजी का नाम उच्चारण करो। कलियुग में पाखण्ड से भी (मुख से लिया हुआ राम) नाम शोक रूपी समुद्र को सुखाने के लिये अगस्त्य रूप है ॥ ४ ॥

अगस्त्यमुनि ने समुद्र को सोख लिया था। सोच पर सागर का आरोप करके राम नाम में मुनि का आरोपण करना परम्परित के ढङ्ग में 'सम अभेद रूपक अलंकार है।

मोद मङ्गल मूल अति अनुकूल निज निरजोस। राम नाम प्रभाव सुनि तुलसिहि परम सन्तोस ॥ ५ ॥

यह ठीक निश्चय है (राम नाम का जाप करने से) आनन्द और मङ्गल के मूल अधिक पक्ष में रहते हैं। राम नाम की महिमा सुन कर तुलसी को हद से ज़्यादा सन्तोष है ॥ ५ ॥

यहाँ चमत्कार में व्यङ्गार्थ और वाच्यार्थ बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है कि जब कलि में राम नाम आनन्द मङ्गल का मूल है और मैं उसी राम नाम का स्मरण करता हूँ, तब निस्सन्देह हमारे लिये मङ्गल ही मङ्गल है।

(१६०)

मैं हरि पतितपावन सुने। मैं पतित तुम्ह पतितपावन, दोउ बानक बने ॥ १ ॥

हे हरे! मैं ने सुना है कि आप पापियों को पवित्र करते हैं। मैं पतित हूँ और आप पतितपावन हैं, दोनों ओर की अच्छी नामवरी है ॥ १ ॥

यथायोग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है। पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

ब्याध गनिका गज अजामिल, साखि निगमन्हि भने। और अधम अनेक तारे, जात का पहिं गने ॥ २ ॥

व्याधा, वेश्या, हाथी और अजामिल (आदि पापियों के तारने की) गवाही वेदों ने की है। और भी असंख्यों पापात्माओं का आपने उद्धार किया वह किससे गिना जा सकता है? (कोई नहीं गणना कर सकता) ॥ २ ॥

शब्दप्रमाण और वक्रोक्ति अलंकार की संसृष्टि है।

जानि नाम अजान लीन्हे, नरक जमपुर मने। दासतुलसी सरन आयउ, राखि ले आपने ॥ ३ ॥

जान कर अथवा अनजाने जिसने नाम लिया उसका नरकवास और यमलोक का जाना बन्द हो गया। तुलसीदास आप की शरण आया है इसको अपनी रक्षा में रख लीजिये ॥ ३ ॥

जान कर और बिना जाने जिसने नाम लिया वह दुर्दशा से छूट ही गया। हित अनहित दोनों में राम नाम का एक ही धर्म कहना 'चतुर्थ तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(१६१)

राग-मलार ।

तो सौं प्रभु जौपै कहूँ कोउ होतो । तौ सहि निपट निरादर निसि दिन, रटि लटि अस घटि को तो ॥ १ ॥

आप के समान यदि कहीं कोई मालिक होता तो नितान्त अपमान सह कर ऐसा कौन था जो रातोदिन (आप ही का नाम) रट कर खिन्न होता ॥ १ ॥

कृपा सुधा जलदानि मानिबो, कहउँ सो साँच निसोतो । स्वाति सनेह सलिल सुख चाहत, चित चातक को पोतो ॥ २ ॥

कृपा रूपी अमृत को मेघ मान कर यह निरा सत्य कहता हूँ कि मेरा चित्त रूपी चातक का बच्चा आप के प्रेम रूपी स्वाती नक्षत्र का सुख रूपी जल चाहता है ॥ २ ॥

कृपा पर अमृत का आरोप, रामचन्द्रजी में मेघ का, स्नेह में स्वाती नक्षत्र का, सुख में जल का और अपने चित्त पर पपीहा का आरोपण करना 'परम्परित रूपक अलंकार' है। व्यङ्गार्थ में उदाहरण का भाव है कि जैसे चातक का बच्चा एक मात्र स्वाती के जल से तृप्त होता है वैसे मेरा मन आप के स्नेह-सुख से प्रसन्नता को प्राप्त होता है। स और च अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

काल करम बस मन कुमनोरथ, कबहुँ कबहुँ कछु भोतो । ज्यौं मुद मय बसि मीन बारि तजि, उछरि भभरि लेइ गोतो ॥३॥

काल और कर्म के अधीन होकर कभी कभी मन में कुछ बुरे मनोरथ हुए थे अर्थात अन्य देवी देवताओं की उपासना में चित्त गया था। जैसे आनन्द रूप जल में रह कर मछली उसे त्याग कर भयभीत हो बाहर उछलती है और फिर पानी में डुबकी लेती है ॥३॥

काल-कर्म वश मन अपने स्वभावानुसार कभी कभी कुमनोरथों में गया था। इस सामान्य बात की समता विशेष से दिखाना कि जैसे अगाध जल में सुख से विहरनेवाली मछली अनायास भय से बाहर उछलती है; किन्तु जल के सिवा उसे अन्यत्र सुख कहाँ ? फिर उसी में गोता लेती है 'उदाहरण अलंकार' है। 'कबहुँ' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्ति-प्रकाश' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जितो दुराव दासतुलसी उर, क्यौं कहि आवत ओतो।
तेरे राज राय दसरथ के, लयउँ बयो बिनु जोतो ॥ ४ ॥

जितना छिपाव तुलसीदास के हृदय में है उतना कैसे कहने में आ सकता है ? हे राजा दशरथ के प्यारे ! आप के राज्य में विना जोते बोये मैं ने नाज की कटाई की है ॥४॥

यहाँ असली कथन ते यह है कि आप के अनुग्रह से विना जप तप योग व्रतादि के मुझे रामभक्त कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और संसार में सुख से जीवन व्यतीत करता हूँ ; किन्तु इसे सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है ।

(१६२)

राग-रामकली ।

ऐसो को उदार जग माहीं । बिनु सेवा जो द्रवइ दीन पर,
राम सरिस कोउ नाहीं ॥ १ ॥

ऐसा कौन जगत में उदार है जो विना सेवा के दीनों पर दया करता हो ? रामचन्द्रजी के समान कोई नहीं है ॥१॥

जो गति जोग बिराग जतन करि, नहिं पावत मुनि-ज्ञानी।
सो गति दई गीध सबरी कहँ, प्रभु न अधिक करि मानी ॥२॥

जिस गति को योग, वैराग्य आदि यत्न करके ज्ञानीमुनि नहीं पाते, उस मोक्ष को प्रभु रामचन्द्रजी ने गिद्ध और शबरी को दी उसको अधिक करके नहीं समझा अर्थात् मन में सकुचते थे कि इनको मैं ने कुछ न दिया ॥२॥

दो असम वाक्यों के समता में 'प्रथम निदर्शना अलंकार' है ।

जो सम्पति दससीस अरपि के, रावन सिव पहँ लीन्ही।
सोइ सम्पदा बिभीषन कहँ अति, सकुच सहित हरि दीन्ही ॥३॥

रावण ने दसों सिर अर्पण करके जो सम्पदा शिवजी से ली थी, वही सम्पत्ति विभीषण को भगवान ने बहुत शरमाते हुए दिया ॥३॥

सकोच इस बात का कि रावण के पीछे लङ्का का यही अधिकारी है, फिर मैं ने इसको क्या दिया ? वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

तुलसिदास सब भाँति सकल सुख, जौं चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम काम सब पूरन, करहिं कृपानिधि तेरो ॥ ४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि—हे मेरे मन! यदि तू सब तरह का सारा सुख चाहता है तो रामचन्द्रजी का भजन कर, वे दया के समुद्र हैं तेरी समस्त कामनायें पूरी करेंगे ॥४॥

जौ ऐसें होइ तौ होइ यों 'सम्भावना अलंकार' है।

(१६३)

एकइ दानि-सिरोमनि साँचो। जेहि जाचेउँ सो जाचकता, बस, फिरि बहु नाच न नाँचो ॥ १ ॥

एक ही सच्चे दानी—शिरोमणि हैं, जिसने उनसे याचना की फिर वह मङ्गनता के अधीन होकर बहुत नाच नहीं नाचा अर्थात् अयाच्य हो गया ॥१॥

सब स्वारथी असुर सुर नर मुनि, कोउ न देत बिनु पाये। कोसलपाल कृपाल कलपतरु, द्रवत सकृत सिर नाये ॥ २ ॥

दैत्य, देवता, मनुष्य और मुनि सब अपने मतलब के यार हैं, बिना पाये कोई नहीं देता। कल्पवृक्ष रूप दयालु कोशलेन्द्र भगवान एक बार प्रणाम करने से ही दया करते हैं ॥२॥

यहाँ उपमान देवता दैत्यादि से उपमेय में अधिक गुण वर्णन करना 'व्यतिरेक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

हरिहु अवर अवतार आपने, राखी बेद बड़ाई। लेइ चिउरा निधि दई सुदामहिँ, जद्यपि बाल-मिताई ॥ ३ ॥

भगवान ने भी अपने दूसरे अवतारों में वेद की बड़ाई रक्खी है। यद्यपि सुदामा से लड़कपन की मित्रता थी तो भी चिवरा लेकर उन्हें गृहादि सम्पत्ति का भण्डार दिया ॥३॥

कपि सबरी सुग्रीव बिभीषन, को नहिँ कियेउ अजाची। अब तुलसिहि दुख देत दयानिधि, दारुन आस पिसाची ॥४॥

बन्दर हनूमान, शबरी, सुग्रीव और विभीषण आदि किसको आपने अयाच्य (सम्पन्न) नहीं किया? हे दयानिधान! अब तुलसी को आशा रूपी भीषण पिशाचिनी दुःख देती है (इसको निवारण कीजिये) ॥४॥

पूर्वार्द्ध में उपमानप्रमाण और वक्रोक्ति की संसृष्टि है। आशा और भयानक पिशाचिनी में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार' है। जब आपने बहुतों के दारिद्र रूपी पिशाच नसाये तब इस पिशाचिनी का दमन करना कठिन नहीं है। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१६४)

राग-सोरठ ।

जानत प्रीति रीति रघुराई । नाते सब हाते करि राखत, राम सनेह सगाई ॥ १ ॥

प्रीति की रीति रघुनाथजी जानते हैं । रामचन्द्रजी प्रेम की नतैती के सामने दूसरे सब नातों को नाश कर रखते हैं अर्थात् स्नेह के नाते के बराबर दूसरे नाते को कुछ नहीं समझते ॥१॥

नेह निबाहि देह तजि दसरथ, कीरति अचल चलाई । ऐसेहु पितु तें अधिक गीध पर, ममता गुन गरुआई ॥ २ ॥

शरीर त्याग कर दशरथजी ने स्नेह निवाहा और अविचल कीर्त्ति जगत में चलाई । ऐसे पिता से भी बढ़ कर गिद्ध पर अपनता के प्रभाव का भारीपन दिखाया ॥२॥

रघुनाथजी प्रीति की रीति जानते हैं । इस बात को उपमानों से पुष्ट करना 'उपमान-प्रमाणअलंकार' है । अर्थान्तरन्यास अलंकार का सन्देहसङ्कर है ।

तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि, प्रान प्रिया बिसराई । रन परे बन्धु बिभीषनही को, सोच हृदय अधिकाई ॥ ३ ॥

स्त्री-वियोगी मित्र सुग्रीव को देख कर प्राणप्यारी (सीताजी) को भुला दिया । रणभूमि में भाई लक्ष्मण अचेत होकर गिर पड़े; उस समय हृदय में विभीषण ही का बड़ा सोच हुआ ॥३॥

गीतावली में गोसाँईजी ने लिखा है, जब लक्ष्मणजी को शक्ति लगी तब रामचन्द्रजी विलाप करते हुए सुग्रीव से कहते हैं कि—"गिरि कानन जइहैं साखामृग, हौं मरि अनुज सँघाती । होइहै कहा बिभीषन की गति, रहेउ सोच भरि छाती" अर्थात् बन्दर पर्वत और वनों में चले जाँयगे, मैं मृतक होकर लघुबन्धु का साथ दूँगा । विभीषण की क्या दशा होगी ? इस सोच से हृदय भर गया है ।

घर गुरु गृह प्रिय-सदन सासुरे, भइ जब जहँ पहुनाई । तब तहँ कहि सबरी के फलन की, रुचि माधुरी न पाई ॥ ४ ॥

अपने घर, गुरु मन्दिर, मित्रों के भवन और ससुराल में जब जहाँ मेहमानी हुई, तब वहाँ शबरी के फलों की चाह और मधुरता नहीं मिली अर्थात् उसकी बड़ाई करते रहे ॥४॥

सहज सरूप कथा मुनि बरनत, रहत सकुचि सिर नाई ।
केवट मीत कहे सुख मानत, बानर-बन्धु बड़ाई ॥ ५ ॥

स्वाभाविक यथातथ्य कथा मुनि लोग वर्णन करते थे उसको सुन कर सकुच से सिर नीचे कर लेते और मल्लाह मित्र कहने से प्रसन्न होते तथा वानर-बन्धु कहने में अपनी बड़ाई मानते थे ॥५॥

प्रेम कनौड़ो राम सरिस प्रभु, त्रिजग त्रिकाल न भाई ।
तेरो रिनी कहेउ कपि सौं अस, मानिहि को सेवकाई ॥ ६ ॥

भाइयो ! रामचन्द्रजी के समान प्रेम के दबइल स्वामी तीनों लोक और तीनों काल में नहीं हैं । भला ! ऐसी सेवकाई कौन मानेगा कि—बन्दर हनूमान से कहा मैं तेरा ऋणी हूँ ॥६॥

पंडित रामगुलामजी की प्रति में इस प्रकार पाठ है—"प्रेम कनौड़ो राम सों प्रभु त्रिभुवन तिहुँ काल न भाई । तेरो रिनी कह्यो हौं कपि सों ऐसी को मानिहै सेवकाई" ।

तुलसी राम सनेह सील लखि, जौं न भगति उर आई ।
तौ तोहि जनमि जाय जननी जड़, तन तरुनता गँवाई ॥ ७ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी के शील और स्नेह को देख कर यदि हृदय में रामभक्ति न आई तो तुझ को मूर्ख माता ने व्यर्थ ही पैदा करके शरीर की जवानी खो दिया ॥७॥

(१६५)

रघुवर रावरि इहइ बड़ाई । निदरि गनी आदर गरीब पर, करत कृपा अधिकाई ॥ १ ॥

हे रघुनाथजी ! आप की यही बड़ाई है कि धनवानों का अनादर करके ग़रीबों का आदर और उन पर बड़ी कृपा करते हैं ॥१॥

थके देव साधन करि सब सपनेहुँ नहिँ दियेउ दिखाई ।
केवट कुटिल भालु कपि कौनप, कियेउ सकल सग-भाई ॥ २ ॥

देवता सब उपाय करके हार गये उन्हें सपने में भी नहीं दिखाई दिये और केवट, भालू, बन्दर तथा राक्षस आदि समस्त टेढ़े जीवों को सहोदर भाई बनाये ॥२॥

मिलि मुनिवृन्द फिरे दंडकबन, सो चरचउ न चलाई ।
बारहि बार गीध सबरी की, बरनत प्रीति सुहाई ॥ ३ ॥

दण्डकारण्य में घूम कर मुनियों से मिले उसकी चर्चा भी न चलाई; परन्तु गिद्ध और शवरी की सुहावनी प्रीति बार बार बखान की ॥३॥

स्वान कहे तेँ कियेउ पुर बाहिर, जती गयन्द चढ़ाई। सिय निन्दक मतिमन्द प्रजा रज, निज-नय नगर बसाई ॥ ४ ॥

कुत्ते के कहने से सन्यासी को हाथी पर चढ़ा कर शहर से बाहर करवा दिये और सीताजी की निन्दा करनेवाला नीचबुद्धि धोबी प्रजा को अपनी नीति से नगर में बसाया अर्थात् देश निकाले का दण्ड नहीं दिया ॥४॥

अपनी नीति-हीन प्रजा जान कर दया करना । अथवा—"सिय-निन्दक अघ-ओघ नसाये। लोक विसोक बनाइ बसाये" के अनुसार वैकुण्ठवास दिया; किन्तु यहाँ तात्पर्य नगर में रहने देने का है क्योंकि कुत्ते की फ़र्याद से सन्यासी को नगर-निकाले का दण्ड दिया और सीताजी की निन्दा करनेवाले नीच धोबी को अपनी प्रजा समझ कर कुछ भी दण्डित न करके नगर में रहने दिया।

एहि दरबार दीन को आदर, रीति सदा चलि आई। दीन-दयाल दीन तुलसी की, काहु न सुरति कराई ॥ ५ ॥

इस दरबार में दीनों के आदर की रीति सदा से चली आती है। हे दीनदयाल ! दीन तुलसी की किसी ने याद नहीं करायी ॥५॥

यदि किसी ने सुधि दिलाई होती तो इस दीन की दीनता दूर हो जाती, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१६६)

ऐसे राम दीन-हितकारी। अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी ऐसे दीन हितकारी हैं, वे अत्यन्त कोमल स्वभाव, दया के स्थान हैं और विना प्रयोजन दूसरों की भलाई करते हैं ॥१॥

साधन हीन दीन निज-अघ बस, सिला भई मुनि नारी। गृह तेँ गवनि परासि पद-पावन, घोर साप तेँ तारी ॥ २ ॥

उपाय रहित, दुःख से भरी, अपने पाप के अधीन मुनि-पत्नी (अहल्या) पत्थर की चट्टान हुई थी। घर से चल कर अपने पवित्र चरणों का स्पर्श करके भीषण शाप से उसका उद्धार किया ॥२॥

पहले एक साधारण बात कह कर फिर उसको विशेष उदाहरणों से दृढ़ करना 'अर्थान्तर-न्यासन्यास अलङ्कार' है।

हिंसा-रत निषाद तामस बपु, पसु समान बनचारी। भेँटेउ हृदय लगाइ प्रेम-बस, नाहिँ कुल जाति बिचारी ॥ ३ ॥

जीवों की हत्या में तत्पर तामसी शरीर का मल्लाह पशु के समान जङ्गली था। उसको प्रेम के वश हृदय से लगा कर मिले, कुल और जाति का विचार नहीं किया (कि यह छूने योग्य नहीं है) ॥३॥

जद्यपि द्रोह कियेउ सुरपति-सुत, कहि न जाइ अति भारी। सकल लोक अवलोकि सोक-हत, सरन गये भय टारी ॥ ४ ॥

यद्यपि इन्द्र के पुत्र (जयन्त) ने बड़ा भारी वैर किया जो कहा नहीं जाता। वह शोक का मारा सारे लोकों को देख कर हार गया, अन्त में शरण जाने पर उसके भय को दूर किया ॥४॥

बिहँग-जोनि आमिष अहार पर, गीध कवन ब्रतधारी। जनक समान क्रिया ताकी निज,-कर करि बात सँवारी ॥ ५ ॥

पक्षी-योनि का मांसभक्षी गिद्ध कौन सा श्रेष्ठ व्रतधारी था? पिता के बराबर उसकी अन्त्येष्टिक्रिया अपने हाथ से करके बात सुधार दी ॥५॥

अधम जाति सबरी जोषित सठ, लोक बेद तेँ न्यारी। जानि प्रीति देइ दरस कृपानिधि, सोउ रघुनाथ उधारी ॥ ६ ॥

नीच जाति शबरी स्त्री दुष्टा और लोक वेद से बाहर अर्थात् छूने लायक नहीं, उस की प्रीति समझ कर कृपानिधान रघुनाथजी ने दर्शन देकर उसका भी उद्धार किया ॥६॥

कपि सुग्रीव बन्धु भय ब्याकुल, आयेउ सरन पुकारी। सहि न सके जन को दारुन दुख, हतेउ बालि सहि गारी ॥ ७ ॥

वानर सुग्रीव अपने भाई (वाली) के डर से व्याकुल हो शरण में आकर गोहार की। सेवक के भीषण दुःख को नहीं सह सके और गाली सह कर वाली को मारा ॥७॥

शूरवीर को छिप कर अस्त्र-प्रहार करना कलङ्क की बात है; किन्तु दास की रक्षा के लिये उसकी कुछ भी परवाह न की।

रिपु को अनुज बिभीषन निसिचर, कवन भजन अधिकारी। सरन गयउ आगे होइ लीन्हेउ, भेँटेउ भुजा पसारी ॥ ८ ॥

शत्रु का छोटा भाई विभीषण राक्षस कौन से भजन का अधिकारी था? वह शरण में गया, आगे से उठ कर लिया और बाँह फैला कर मिले ॥८॥

असुभ होइ जिन्ह के सुमिरन तें, बानर रीछ बिकारी। बेद बिदित पावन भये ते सब, महिमा नाथ तिहारी ॥ ९ ॥

दोषी बन्दर और भालू जिनके स्मरण से अमङ्गल होता है, वेद में विख्यात है वे सब पवित्र हुए हैं। हे नाथ! यह आप ही की महिमा है ॥९॥

कहँ लगि कहउँ दीन अगनित, जिन्ह की तुम्ह बिपति निवारी। कलिमल ग्रसित दासतुलसी पर, काहे कृपा बिसारी ॥ १० ॥

जिन जिन की विपत्ति आपने छुड़ाई है उन असंख्य दीनों की कथा मैं कहाँ तक कहूँ। पापों से ग्रसा हुआ तुलसीदास पर आपने क्यों कृपा भुला दी है? ॥१०॥

(१६७)

रघुपति भगति करत कठिनाई। कहत सुगम करनी अपार जानइ सो जेहि बनिआई ॥ १ ॥

रघुनाथजी की भक्ति करने में कठिनता है। कहने में सहज है; किन्तु करना दुर्गम है, वही जानता है जिसने की है ॥१॥

जो जेहि कला कुसल ताकहँ सो सुलभ सदा सुखकारी। सफरी सनमुख जल-प्रवाह सुरसरी बहइ गज भारी ॥ २ ॥

जो जिस हुनर में प्रवीण होता है वह उसके लिये सदा सहज और आनन्दकारी होता है। गङ्गाजी की जलधारा के सामने छोटी मछली आसानी से तैरती जाती है और इतना बड़ा हाथी बह जाता है ॥२॥

ज्यों सर्करा मिलइ सिकता महँ, बल तें नहिं बिलगावै। अति रसज्ञ सूछम पिपीलिका, बिनु प्रयासही पावै ॥ ३ ॥

जैसे चीनी बालू में मिल जाय उसको बल से कोई नहीं अलगा सकता। उसके रस को जाननेवाली अत्यन्त छोटी चींटी बिना परिश्रम ही पाती है अर्थात् बालू से चीनी अलग कर लेती है ॥३॥

सकल दृस्य निज उदर मेलि, सोवइ, निद्रा तजि जोगी। सोइ हरि-पद अनुभवइ परम-सुख अतिसय द्वैत बियोगी ॥ ४ ॥

समस्त दृश्य पदार्थों को अपने हृदय में मिला कर मोह की नींद त्याग कर योगीजन (ब्रह्मानन्द के सुख से) सोते हैं। वे ही भेद-भाव के अतिशय वियोगी और भगवान के चरणों के परमानन्द का यथार्थ ज्ञान रखते हैं ॥४॥

सोक मोह भय हरष दिवस निसि, देस काल तहँ नाहीं।
तुलसिदास एहि दसा हीन, संसय निर्मूल न जाहीं ॥ ५ ॥

वहाँ शोक, मोह, भय, हर्ष, दिन, रात, देश और काल नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस अवस्था के बिना (मिथ्या प्रपञ्च को सच मानने का) सन्देह निर्मूल होकर नहीं जाता ॥५॥

जब तक मिथ्या ज्ञान नहीं दूर होता तब तक भगवान की भक्ति नहीं सुलभ होती। यह अर्थान्तर संक्रमितवाच्य ध्वनि है।

(१६८)

जौपै राम-चरन-रति होती। तौ कत त्रिबिध सूल निसि बासर, सहते बिपति निसोती ॥ १ ॥

यदि रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति होती तो दिन रात तीनों तापों की पीड़ा और निरी विपत्ति काहे को सहते ॥१॥

जौं सन्तोष-सुधा निसि बासर, सपनेहुँ कबहुँक पावै। तौ कत विषय बिलोकि झूठ जल, मन कुरङ्ग ज्यौं धावै ॥ २ ॥

यदि सन्तोष रूपी अमृत रात दिन के बीच कभी सपने में भी पा जाय तो विषय रूपी मिथ्याजल को देख कर हरिण की तरह मन काहे को दौड़े ॥२॥

सन्तोष और अमृत, विषयानन्द और मृगजल, मन और हरिण में पूर्णरूप से एकरूपता का आरोप 'परम्परितरूपक अलङ्कार' है। उदाहरण की संसृष्टि है।

जौं श्रीपति महिमा बिचारि उर, भजते भाव बढ़ाये।
तौ कत द्वार द्वार कूकर ज्यौं, फिरते पेट खलाये ॥ ३ ॥

यदि लक्ष्मीकान्त की महिमा हृदय में विचार कर और स्नेह बढ़ा कर उन्हें भजते तो दरवाज़े दरवाज़े कुत्ते की तरह पेट खलाये हुए काहे को फिरते ॥३॥

यहाँ 'श्रीपति' शब्द में संलक्ष्यक्रम व्यङ्ग है कि लक्ष्मीनाथ की सेवा करने से लक्ष्मी के लिये घमण्डी धनियों के द्वार पर अनादर न सहना पड़ेगा।

जे लोलुप भये दास आस के, ते सबही के चेरे।
प्रभु बिस्वास आस जीती जिन्ह, ते सेवक हरि केरे ॥ ४ ॥

जो अत्यन्त लालच से आशा के दास हुए वे सभी के चाकर हैं। प्रभु रामचन्द्रजी के विश्वास से जिन्हों ने आशा को जीत लिया वे ही भगवान के भक्त हैं ॥४॥

जे, ते, वाचकों द्वारा दो असम वाक्यों में समता दिखाने का भाव 'प्रथम निदर्शना अलङ्कार' है।

नहिं एकहु आचरन भजन को, बिनय करत हौं ताते।
कीजै कृपा दासतुलसी पर, नाथ नाम के नाते ॥ ५ ॥

एक भी भजन का आचरण मुझ में नहीं है इसीसे विनती करता हूँ। स्वामिन्! तुलसीदास पर नाम के नाते कृपा कीजिये ॥५॥

मैं आप का नाम सदा मुख से उच्चारण करता हूँ यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१६९)

जौं मोहिं राम लागते मीठे। तौ नवरस षटरस रस अनरस, होइ जाते सब सीठे ॥ १ ॥

यदि मुझे रामचन्द्रजी प्यारे लगते तो शृङ्गारादि नवों रस और अम्ल आदि छओं रस के स्वाद नीरस सब सीठी (सार हीन खुज्झी) हो जाते ॥१॥

जो ऐसा होता तो ऐसा होता 'सम्भावना अलङ्कार' है। यहाँ अर्थान्तरसंक्रमितवाच्य ध्वनि है कि नौरस षटरस के स्वाद जब तक प्रिय लगते हैं तब तक राम-रस का भोगी मनुष्य नहीं समझा जा सकता।

बञ्चक बिषय बिबिध तनु धारि, अनुभवे सुने अरु दीठे।
यह जानतहूँ हिय अपने सपने न अघाइ उबीठे ॥ २ ॥

विषय ठग रूपी है, इसे अनेक शरीर धारण करके अनुभव किया सुना और देखा। यह जानते हुए भी अपने हृदय में उससे तृप्त होकर अनिच्छित नहीं हुए ॥२॥

तुलसिदास प्रभु सौं एकहि बल, बचन कहत अति ढीठे।
नाम की लाज मानि करुनाकर, केहि न दियेउ करि चीठे ॥३॥

हे प्रभो! तुलसीदास एक ही बल से अत्यन्त ढीठ होकर वचन कहता है। हे दयानिधान! नाम की लाज मान कर आपने किसको (संसार-बन्धन से मुक्त करने की) परवानगी नहीं दी? अर्थात् सभी के सङ्कट दूर किये ॥३॥

(१७०)

यौं मन कबहूँ तुम्हहिं न लागेउ। ज्यौं छल छाड़ि सुभाय निरन्तर, रहत बिषय अनुरागेउ ॥ १ ॥

आप से मेरा मन ऐसे कभी नहीं लगा जैसे छल छोड़ कर सहज ही सदा विषयों में अनुरक्त रहता है ॥१॥

इस तरह आप से मन कभी न लगा, इस साधारण बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे विषयों का सदा छल छोड़ कर स्वाभाविक अनुरागी रहता है 'उदाहरण अलङ्कार' है।

ज्यौं चितई पर नारि सुनें पातक प्रपञ्च घर घर के।
त्यौं न साधु सुरसरि तरङ्ग निरमल गुन-गन रघुबर के ॥ २ ॥

जिस प्रकार आँखें पराई स्त्री को देखती हैं और कान घर घर के पाप-छल को सुनते हैं, वैसे साधु तथा गङ्गाजी की तरङ्गों के दर्शन और रघुनाथजी के निर्मल गुणों में प्रीतिमान नहीं हुए ॥२॥

पहले जिस क्रम से पर-स्त्री देखना और पराया दोष सुनना कहा उसी क्रम से सन्त एवम् गङ्गाजी की लहरों के दर्शन तथा हरिगुण श्रवण कहना 'यथासंख्य अलंकार' है।

ज्यौं नासा सुगन्ध-रस बस रसना षट-रस रति मानी। राम प्रसाद माल जूठन लगि, त्यौं न ललकि ललचानी ॥३॥

जैसे नाक सुगन्ध के आनन्द के अधीन और जीभ छओं रस में प्रीति रखती है, वैसे रामचन्द्रजी के प्रसाद रूप माला और जूठन के लिये बड़ी अभिलाषा से नहीं तरसीं ॥३॥

चन्दन चन्दबदनि भूषन पट, ज्यौं चह पाँवर परसेउ। त्यौं रघुपति-पद-पदुम परस कहँ, तनु पातकी न तरसेउ ॥४॥

जैसे यह नीच (मन) चन्द्राननी नायिका के चन्दन, आभूषण और वस्त्रों को छूना चाहता है, वैसे रघुनाथजी के चरण-कमलों को छूने के लिये तनिक भी नहीं इच्छा की, अर्थात् अभाव का दुःख माना ॥४॥

ज्यौं सब भाँति कुदेव कुठाकुर, सेयेउ बचन हियेहूँ। त्यौं न राम सुकृतज्ञ जे सकुचत, सकृत प्रनाम कियेहूँ ॥५॥

जैसे सब तरह बुरे देवता और नीच मालिकों की सेवा वचन तथा मन से की, वैसे रामचन्द्रजी की नहीं जो सुन्दर कृतज्ञ एक ही बार प्रणाम करने से सकुचाते हैं कि इसका मैंने कोई उपकार नहीं किया ॥५॥

चञ्चल चरन लोभ लगि लोलुप, द्वार द्वार जग बागे।
राम-सीय आस्रमन्हि चलत त्यौं, भयेउ न स्रमित अभागे ॥६॥

(जैसे) लोभ में लग कर लालच से संसार में दरवाज़े दरवाज़े घूमने को पाँव उतावले रहते हैं, वैसे—अरे अभागे! राम-जानकी के आश्रमों में चलते हुए थकित नहीं हुए ॥६॥

सकल अङ्ग पद बिमुख नाथ, मुख नाम की ओट लई है। है तुलसिहि परतीति एक प्रभु-मूरति कृपामई है ॥७॥

हे नाथ! मैं सर्वाङ्ग से आप के चरणों से विमुख हूँ; किन्तु मुख से आप के नाम की ओट ले रक्खी है। तुलसी को एक ही भरोसा है कि स्वामी की मूर्त्ति दयामयी है ॥७॥

आप दया के रूप हैं, नाम के नाते इस बनावटी भक्त पर भी अवश्य दया करेंगे। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(१७१)

कीजे मो को जमजातना-मई। तुम्ह तौ राम सदा सुचि साहेब, मैं सठ पीठि दई ॥ १ ॥

मुझ को नरक की दुर्दशा मय कीजिये। हे रामचन्द्रजी! आप तो सदा पवित्र स्वामी हैं; किन्तु मैं ही मूर्खता से पीछा दिये हूँ ॥१॥

गर्भबास दस मास पालि पितु-मातु रूप हित कीन्हों। जड़हि बिबेक सुसील खलहि, अपराधिहि आदर दीन्हों ॥२॥

गर्भवास में दस महीने पिता-माता के रूप में पालन करके आपने उपकार किया। मूर्ख को ज्ञान, दुष्ट को सुन्दर शील और मुझ सरीखे पापी को आदर दिया ॥२॥

कपट करउँ अन्तरजामिहु सों, अघ ब्यापकहि दुरावौं। ऐसेहु कुमति कुसेवक पर, रघुपति न कियेउ मन बावौं ॥ ३ ॥

मैं अन्तर्य्यामी से भी छल करता हूँ और सर्वव्यापी प्रभु से पाप छिपाता हूँ। ऐसे कुबुद्धि नीच सेवक पर भी रघुनाथजी ने मन नहीं टेढ़ा किया ॥३॥

उदर भरउँ किङ्कर कहि बेचेउँ-बिषयन्हि हाथ हियो है। मो से बञ्चक को कृपालु छल छाड़ि के छोह कियो है ॥ ४ ॥

दास कहा कर पेट भरता हूँ और हृदय को विषयों के हाथ बेंच डाला है। मुझ से ठग को भी कृपालु रामचन्द्रजी ने छल छोड़ कर छोह किया है ॥४॥

पल पल के उपकार रावरे, जानि बूझि सुनि नीके। भिदेउ न कुलिसहु तें कठोर चित, कबहुँ प्रेम सिय पी के ॥ ५ ॥

आप के क्षण क्षण के उपकारों को अच्छी तरह सुन कर समझ कर और जान कर भी वज्र से कठोर चित्त में सीतानाथ की प्रीति नहीं चुभी ॥५॥

उपमान वज्र से उपमेय चित्त में अधिक कठोरता वर्णन 'व्यतिरेक अलंकार' है। 'पल' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश' है।

स्वामी की सेवक-हितता सब, कछु निज साँइ-दोहाई। मैं मति तुला तौलि देखेउँ भइ, मेरिहि दिसि गरुआई ॥६॥

स्वामी की सारी सेवक-हितकारिता और अपनी कुछ थोड़ी सी स्वामि-द्रोहता को मैं ने बुद्धि रूपी तराज़ू पर तौल कर देखा तो मेरी ही ओर का पलरा गरुआ हुआ ॥६॥

बुद्धि और तराज़ू में पूर्ण रूप से एकरूपता 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

एतेहु पर हित करत नाथ मम, करि आये अरु करिहैं। तुलसी अपनी ओर जानियत, प्रभुहि कनौड़ो भरिहैं ॥७॥

इतने पर भी स्वामी मेरा भला करते हैं, पूर्व में कर आये हैं और आगे भी करेंगे। जानता हूँ कि तुलसी के लिये अपनी ओर से स्वामी ही एहसानमन्द होकर कृतज्ञता पूरी करेंगे ॥७॥

अपने दृढ़ विश्वास से स्वामी के स्वभाव का भरोसा लाना आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार है।

(१७२)

कबहुँक हौं एहि रहनि रहौंगो। श्रीरघुनाथ कृपालु कृपा तें, सन्त सुभाव गहौंगो ॥१॥

कृपालु श्रीरघुनाथजी की कृपा से सन्तों का स्वभाव ग्रहण कर कभी मैं इस रीति से रहूँगा ॥१॥

जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सौं कछु न चहौंगो। पर हित निरत निरन्तर मन क्रम, बचन नेम निबहौंगो ॥२॥

जो कुछ मिले उससे सदा सन्तुष्ट रह कर किसी से कुछ न चाहूँगा। परोपकार में तत्पर हो निरन्तर मन, कर्म और वचन से प्रतिज्ञा पूरी करूँगा ॥२॥

परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो। बिगत मान सम सीतल मन पर गुन नहिं दोष कहौंगो ॥३॥

अत्यन्त असहनीय कर्कश वचनों को कान से सुन कर उसकी अग्नि (ईर्ष्या) से न जलूँगा। अभिमान रहित, शान्त और शीतल मन से पराये के गुण कहूँगा; किन्तु दोष नहीं ॥३॥

परिहरि देह जनित चिन्ता दुख,-सुख सम बुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु एहि पथ रहि, अबिचल हरिभगति लहौंगो ॥४॥

शरीर से उत्पन्न चिन्ता को त्याग कर दुःख और सुख समान बुद्धि से सहन करूँगा। हे प्रभो! मैं तुलसीदास इस रास्ते में रह कर निश्चल हरिभक्ति पाऊँगा ॥४॥

इस पद में मनोभिलाष वर्णन है।

(१७३)

नाहिँ न आवत आन भरोसो। एहि कलिकाल सकल साधन तरु, है स्रम फलनि फरोसो ॥१॥

(मन में) दूसरा भरोसा नहीं आता, इस कलिकाल में सब साधन रूपी वृक्ष परिश्रम रूपी फल फलते हैं ॥१॥

सम्पूर्ण साधनों में वृक्ष की पूर्णरूप से एकरूपता 'समअभेदरूपक अलंकार' है। सभी साधनाओं से परिश्रम के सिवा सिद्धि नहीं प्राप्त होती, यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

तप तीरथ उपवास दान मख, जो जेहि रुचइ करो सो।
पायेहि पै जानिबो करम फल, भरि भरि बेद परोसो ॥ २ ॥

तपस्या, तीर्थाटन, व्रत, दान और यज्ञ जिसको जो अच्छा लगे वह करे। वेदों ने खूब भर भर कर परोसा है अर्थात् उनके फलों की अनन्त महिमा गाई है; किन्तु कर्मों के फल मिलने ही से जाने जा सकते हैं ॥२॥

वेदों ने तप, तीर्थ, उपवास, दान और यज्ञ करने की बड़ी प्रशंसा की है कि अमुक साधन से प्राणी इन्द्रलोक पाता है; परन्तु जब तक इन्द्रलोक न मिल जाय तब तक कर्म फल कैसे सत्य माना जा सकता है। शरीर त्यागने पर कौन जाने क्या मिलेगा और क्या नहीं। यह वाच्यार्थ व्यङ्गार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है और पुनरुक्तिप्रकाश भी है।

आगम-बिधि जप जाग करत नर, सरत न काज खरो सो।
सुख सपनेहुँ न जोग सिधि साधन, रोग बियोग धरो सो ॥३॥

शास्त्र की विधि से मनुष्य जप और यज्ञ करते हैं; किन्तु तिनके के बराबर भी काम नहीं होता। योग के साधन में सुख की सिद्धि तो सपने में भी नहीं होती, उलटे उसमें रोग और वियोग रक्खा सा रहता है ॥३॥

कष्ट सहन करने से शरीर रोगी हो जाता है और एकान्तवासी होने से कुटुम्बी जनों का वियोग होता है।

काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि, ज्ञान बिराग हरो सो ।
बिगरत मन सन्यास लेत जल,-नावत आम घरो सो ॥ ४ ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ और अज्ञान मिल कर वे ज्ञान वैराग्य को हर लेते हैं। सन्यास लेने में मन कच्चे घड़े में पानी डालने के समान बिगड़ जाता है ॥४॥

बिना ज्ञान वैराग्य की दृढ़ता से सन्यास लेने पर मन बिगड़ जाता है, इस साधारण बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे कच्चे घड़े में पानी डालने से वह नष्ट हो जाता है 'उदाहरण अलंकार' है। उपमा का सन्देहसङ्कर है।

बहु मत सुनि बहु पन्थ पुरानन्हि, जहाँ तहाँ झगरो सो ।
गुरु कहे राम भजन नीको मोहि, लगत राजडगरो सो ॥५॥

बहुत मत और अनेक रास्ते के लिये पुराणों का जहाँ तहाँ झगड़ा सा सुन कर गुरुजी के कथनानुसार मुझे रामभजन ही राजमार्ग (शाही सड़क) के समान अच्छा लगता है ॥५॥

रामभजन-उपमेय, राजडगर-उपमान, सो-वाचक और सुगमता-धर्म 'पूर्णोपमा-अलंकार' है।

तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि,-फिरि पचि मरइ मरो सो ।
राम नाम बोहित भव-सागर, चाहइ तरन तरो सो ॥६॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना विश्वास और प्रीति के फिर फिर कर (अन्य साधनों में) लग कर जो मरना चाहै वह मरे। जो संसार रूपी समुद्र से पार होना चाहै वह राम नाम रूपी जहाज़ का सहारा ले ॥६॥

संसार पर समुद्र का आरोप करके राम-नाम पर जहाज़ का आरोपण इसलिये किया गया कि जहाज़ पर सवार होकर प्राणी महासागर को पार कर जाते हैं। यह 'परम्परितरूपक अलंकार' है। पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(१७४)

राग-सोरठी ।

जाके प्रिय न राम-बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥ १ ॥

जिन्हें राम-जानकी प्यारे नहीं हैं, यद्यपि वह परम स्नेही ही क्यों न हो तो भी उसको करोड़ों शत्रु के समान जान कर त्याग देना चाहिये ॥१॥

परम-स्नेही पिता, माता, गुरु, स्वामी आदि आदरणीय हैं; किन्तु राम विमुखी होने के दोष से उनका त्याग कथन करना 'तिरस्कार अलङ्कार' है ।

तजेउ पिता प्रहलाद विभीषन बन्धु भरत महँतारी ।
बलि गुरु तजेउ नाह ब्रजबनितन्ह, भे जग मङ्गलकारी ॥ २ ॥

प्रह्लाद ने पिता को, विभीषण ने भाई को और भरतजी ने माता को त्याग दिया । बलि ने गुरु को और ब्रजवनिता (गोपवधुओं) ने पति को त्याग दिया, वे सब संसार में मङ्गल-कारी हुए ॥ २ ॥

पंडित रामगुलामजी की प्रति में 'हरि हित गुरु बलि पति ब्रज बनितनि, भये मुद मंगलकारी' पाठ है ।

नातो नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अञ्जन कहा आँखि जेहि फूटइ, बहुतक कहउँ कहाँ लौं ॥ ३ ॥

रामचन्द्रजी के स्नेह के नाते जहाँ तक मित्र और सुन्दर सेवा करने योग्य हैं मानना चाहिये । वह अञ्जन कैसा जिससे आँख फूट जाय, बहुत कहाँ तक कहूँ ॥ ३ ॥

तुलसी सोइ आपनो सकल बिधि, पूज्य प्रान तेँ प्यारो ।
जासोँ होइ सनेह राम सोँ एतो मतो हमारो ॥ ४ ॥

तुलसीदासजी कहते हैं कि अपना तो सब तरह से वही पूज्य और प्राण से भी बढ़ कर प्यारा है जिससे रामचन्द्रजी से स्नेह हो, बस—हमारा यही सिद्धान्त है ॥ ४ ॥

(१७५)

जौपै रहनि राम सोँ नाहीँ । तौ नर खर कूकर सूकर सम, जाय जियत जग माहीँ ॥ १ ॥

यदि रामचन्द्रजी से प्रेम नहीं है तो मनुष्य गदहा, कुत्ता और सुअर के समान संसार में व्यर्थ जीता है ॥ १ ॥

काम क्रोध मद लोभ नींद भय, भूख प्यास सबही के ।
मनुज-देह सुर साधु सराहत, सो सनेह सिय पी के ॥ २ ॥

काम, क्रोध, मद, लोभ, निद्रा, डर, भूख और प्यास सभी शरीरधारियों को है । मनुष्य-देह की देवता और सज्जन सराहना करते हैं वह सीतानाथ के स्नेह के सम्बन्ध से ॥ २ ॥

सूर सुजान सपूत सुलच्छन, गनियत गुन गरुआई ।
बिनु हरिभजन इनारुन के फल, तजत नहीँ करुआई ॥ ३ ॥

उसी को शूरवीर, चतुर, सुपुत्र, सुन्दर लक्षणोंवाला और बड़े गुणवानों में गिनना चाहिये। विना हरिभजन के (कैसा ही सुघर क्यों न हो वह) इनारुन के फल की तरह कड़ुवापन छोड़नेवाला नहीं है ॥ ३ ॥

एक हरिभजन में अनेक उत्कृष्ट गुणों की समता 'तृतीय तुल्योगिता अलङ्कार' है। उत्तरार्द्ध में विनोक्ति और दृष्टान्त का सन्देहसङ्कर है। अनुप्रास भी है।

कीरति कुल करतूति भूति भलि, सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस, सालन साग अलोने ॥ ४ ॥

कीर्त्ति, कुल, करनी, ऐश्वर्य्य, शील और रूप वही अच्छा सुन्दर है। तुलसीदासजी कहते हैं प्रभु रामचन्द्रजी के प्रेम से रहित (सारी सुन्दरता कैसे फीकी लगती है) जैसे—विना नोन के कढ़ी और भाजी फीकी होती है ॥ ४ ॥

सब की शोभा राम प्रेम से है, उसके विना नहीं सोहते। इसकी विशेष से समता दिखाना 'उदाहरण अलङ्कार' है।

(१७६)

राखेउ राम से स्वामि सौं, नीच नेह न नातो। एते अनादर होतहू तोहि ते नहिँ हातो ॥ १ ॥

अरे नीच ! रामचन्द्रजी के समान स्वामी से तू ने स्नेह की नतैती नहीं रक्खी। इतना अनादर होते हुए भी उन्होंने तेरा नाश नहीं किया, अर्थात् इस चूक पर निपात करना ही उचित था; किन्तु दयालु स्वामी ने दया ही की ॥ १ ॥

जोरे नित नाते नये, नेह फोकट फीके। देह के दाहक भलेही, बने गाहक जी के ॥ २ ॥

नित्य स्नेह के सेतमेत के नीरस नाते जोड़े, जो देह के जलानेवाले और जान के ग्राहक भले ही हुए (उनसे सुख शान्ति कभी नहीं मिली) ॥२॥

अपने अपने को सबै, लोग चाहत नीको। मूल दूनहुँ को दयाल, दूलह प्रिय सी को ॥ ३ ॥

अपनी अपनी सब लोग भलाई चाहते हैं, (लोक-परलोक) दोनों की भलाई की जड़ दया के स्थान प्यारे जानकीवल्लभ (रामचन्द्रजी) हैं ॥३॥

जीवहु के जीवन नाथ, प्रानहुँ के प्यारे। सुखहू के सुख राम, सो तैँ निपट बिसारे ॥ ४ ॥

स्वामी जीव के भी जीवन और प्राणों के प्यारे हैं। सुख के सुख रामचन्द्रजी को तू ने सब तरह से भुला दिया ॥४॥

यहाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष कथन में 'सार अलंकार' है।

किये हूँ करैंगे औंसि, तो से खल को भलो। ऐसे सुसाहेब राम सौं, तू क्यों कुचाल चलो ॥ ५ ॥

तेरे समान दुष्ट की भलाई उन्हों ने की है और आगे भी अवश्य करेंगे। ऐसे अच्छे स्वामी रामचन्द्रजी से तू काहे को टेढ़ी चाल चलता है ॥५॥

तुलसी तेरी भलाई, जौपै अजहूँ सूझै। रौंड़उ राउत होत है, रन फिरि के जूझै ॥ ६ ॥

रे तुलसी! यदि अब भी सूझ पड़े तो तेरी भलाई होगी। युद्ध में लौट कर जूझने से कादर भी बहादुर होता है ॥६॥

यहाँ प्रस्तुत वर्णन तो यह है कि यदि अब भी रामचन्द्रजी की शरण में आ जाय तो ज्ञानी रामभक्त होकर जगत में आदर पावेगा; परन्तु इसे सीधे न कह कर दृष्टान्त की भाँति घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है।

(१७७)

जौं तुम्ह त्यागहु हौं नहिं त्यागौं। परिहरि पाँय काहि अनुरागौं ॥१॥

यदि आप मुझे त्याग देंगे तो भी मैं आप को न त्यागूँगा, आप के चरणों को छोड़ कर और किससे प्रेम करूँ ॥१॥

सुखद सुप्रभु तुम्ह सौं जग माहीं। स्रवन नयन मन गोचर नाहीं॥ हौं जड़ जीव ईस रघुराया। तुम्ह मायापति हौं बस माया ॥२॥

आप के समान सुन्दर सुखदायी स्वामी संसार में न कान से सुनता हूँ, न आँख से देखता हूँ और न मन में आता है। हे रघुनाथजी! मैं मूर्ख जीव हूँ आप ईश्वर हैं, आप मायाधीश हैं और मैं माया के अधीन हूँ ॥२॥

हौं तो कुजाचक स्वामि सुदाता। हौं कपूत तुम्ह हित पितु माता ॥ जौपै कहूँ कोउ बूझत बातो। तौ तुलसी बिनु मोल बिकातो ॥३॥

मैं तो नीच मङ्गन हूँ और आप अच्छे दानी राजा हैं, मैं कुपुत्र हूँ और आप हितकारी पिता माता हैं! यदि तुलसी का कोई बात भी पूछता तो बिना मोल के वह बिक जाता ॥३॥

यहाँ विवक्षितवाच्यध्वनि है कि तुलसी जैसे निठल्लू को आप के सिवा कोई भी पूछनेवाला नहीं है।

(१७८)

भयहु उदास राम मेरे आस रावरी । आरत स्वारथी सब कहैँ बात बावरी ॥ जीवन को दानी घन कहा ताहि चाहिये । नेम प्रेम के निबाहे चातक सराहिये ॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! आप का चित्त मेरी ओर से हट गया है; किन्तु मुझे आप ही की आशा है । दुःखी और स्वार्थी (खुदगर्ज़) सब पागलों की सी बातें कहते हैं । जल का देनेवाला मेघ उसको क्या चाहना है ? अर्थात् वह निःस्वार्थ जगत की भलाई के लिये जल बरसता है पपीहा को प्रेमी बनाने के लिये नहीं; किन्तु चातक की सराहना अपना नेम और प्रेम पूरा करने ही से होती है ॥१॥

यद्यपि आप जगत के उपकारी हैं तब मेरा भी उपकार ही करेंगे तो भी मैं आर्त्ति से स्वार्थ वश बावले की तरह सहायता के लिये विनती करता हूँ । आप मुझे मेघ जैसे न चाहें, पर मुझ चातक का नेम प्रेम निबाहना ही कर्त्तव्य है । उपमेय उपमान वाक्य की तरह बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलकना 'दृष्टान्त अलंकार' है ।

मीन ते न लाभ लेस पानी पुन्य पीन को । जल बिनु थल कहाँ मीचु बिन मीन को । बड़ेहि की ओट बलि बाँचि आये छोटे हैं । चलत खरे के सङ्ग जहाँ तहाँ खोटे हैं ॥ २ ॥

पवित्र पुष्टकारक जल को मछली से थोड़ा भी लाभ नहीं है, परन्तु मछली को बिना पानी के मृत्यु के सिवा दूसरी जगह कहाँ है ? बलि जाता हूँ ! बड़ों ही की आड़ में छोटे बचते आये हैं, खरे सिक्के के साथ जहाँ तहाँ खोटे भी चलते हैं ॥२॥

वक्रोक्ति और अर्थान्तरन्यास की संसृष्टि है ।

एही दरबार भलो दाहिनेहू बाम को । मो को सुखदायक भरोसो राम नाम को ॥ कहत नसानी होइहै हिये माहिँ नीकी है । जानत कृपानिधान तुलसी के जी की है ॥ ३ ॥

टेढ़े को भी सीधा व्यवहार करनेवाला यही अच्छा दरबार है और मुझ को राम नाम का भरोसा सुखदाई है । कहने में बिगड़ गई होगी, किन्तु हृदय में अच्छी (प्रीति) है, हे कृपानिधान ! आप तुलसी के मन की जानते हैं ॥३॥

कहत नसाइ होइ हिय नीकी । रीझत राम जानि जन जी की ॥

(१७९)

राग-बिलावल।

कहाँ जाउँ कासौं कहउँ कौन सुनै दीन की। त्रिभुवन तुहीं गति सब अङ्गहीन की ॥ १ ॥

कहाँ जाऊँ किससे कहूँ मुझ दीन की कौन सुनेगा? तीनों लोक में सब अङ्गों से हीन (अपाहिजों) को आप ही का सहारा है ॥१॥

जग जगदीस घर घरनि घनेरे हैं। निराधार को अधार गुन गन तेरे हैं॥ गजराज काज खगराज तजि धायो को। मो से दोस-कोस पोसे तो से माय जायो को ॥ २ ॥

संसार में घर घरों में बहुतेरे पृथ्वीनाथ हैं तो भी निराश्रितों के लिये आप ही की गुणावली आधार रूप है। हाथी के काम के लिये गरुड़ को छोड़ कर कौन दौड़ा था और मेरे समान दोषों के भण्डार का पालनेवाला आप के समान किस माता ने (पुत्र) उत्पन्न किया है? (कोई नहीं) ॥२॥

काकु से भिन्न अर्थ प्रगट होना 'वक्रोक्ति अलंकार' है। यमक, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास की संसृष्टि है।

मो से कूर कायर कपूत कौड़ी आधको। कियेउ बहु मोल तू करैया गीध स्राध को। तुलसी की तेरेही बनाये बलि बनैगी। प्रभु की बिलम्ब अम्ब दोष दुख जनैगी ॥ ३ ॥

मेरे बराबर कुमार्गी, कादर और आधी कौड़ी का कुपुत्र कौन होगा? उसको आपने बहुमूल्य बना दिया, क्योंकि आप गिद्ध का श्राद्ध करनेवाले हैं। बलि जाता हूँ! तुलसी की (बिगड़ी बात) आप ही के बनाने से बनेगी, आप की ढिलाई से हितैषिणी माता भी दोष और दुःख पैदा करेगी ॥३॥

आप गिद्ध को पिण्डदान देनेवाले हैं इसी से मुझे मूल्यवान बनाया, कारण के समान कार्य्य 'द्वितीय सम अलंकार' है। माता दुःख-दोष उत्पन्न करेगी, इस विरोधी वर्णन में विरोधाभास अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(१८०)

बारक बिलोकि बलि कीजै मोहि आपनो। राय दसरथ के तू उथपन थापनो ॥ १ ॥

हे राजा दशरथजी के प्यारे ! मैं तुम्हारी बलि जाता हूँ, एक बार निहार कर मुझे अपना कर लीजिये, आप उजड़े हुए को बसानेवाले हैं ॥१॥

साहेब सरनपाल सबल न दूसरो । तेरो नाम लेतही सुखेत होत ऊसरो ॥ बचन करम तेरे मेरे मन गड़े हैं । देखे सुने जाने मैं जहान जेते बड़े हैं ॥ २ ॥

आप के समान शरणागतों की रक्षा करनेवाला बलवान स्वामी दूसरा नहीं है, आप का नाम लेते ही ऊसर भी सुन्दर खेत हो जाता है । आप के वचन और कर्म मेरे मन में चुभे हैं, दुनियाँ में जितने बड़े हैं मैं ने सब को देखा, सुना और जाना है ॥२॥

यहाँ असली कहना तो यह है कि आप का नाम लेने से दुष्ट भी साधु हो जाते हैं; परन्तु इसको सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है । बड़े कहानेवाले जगत के कहने ही को बड़े हैं उनमें बड़प्पन नहीं 'वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग' है ।

कौन कियो सनमान समाधान सीला को । भृगुनाथ सारिखो जितैया कौन लीला को ॥ मातु पितु बन्धु हित लोक बेद पाल को । बोल को अचल नत करत निहाल को ॥ ३ ॥

पत्थर (अहल्या) का सम्मान-पूर्वक सन्देह दूर करके किसने ढाढ़स दिया ? परशुराम के समान उद्धत भट को खेल ही में कौन जीतनेवाला है ? माता, पिता और भाई के उपकारार्थ लोक-वेद की मर्यादा का किसने पालन किया ? वचनों का अविचल और दीनों को प्रसन्न करने वाला कौन है ? (आप के सिवा दूसरा कोई नहीं) ॥३॥

काकु से सर्वत्र आप ही ऐसे हैं, अर्थ प्रगट होना 'वक्रोक्ति अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सङ्ग्रही सनेह बस अधम असाध को । गीध सबरी को कहो करी है सराध को ॥ निराधार को अधार दीन को दयालु को । मीत कपि केवट रजनिचर भालु को । ॥ ४ ॥

कठिन अधर्मियों को स्नेह वश शरण में लेना और गिद्ध शबरी के श्राद्ध को कहिये किसने किया ? निरावलम्बियों के आधार और दीनों का दयालु कौन है ? बन्दर, मल्लाह, राक्षस और भालू का मित्र (आप के सिवा दूसरा) कौन है ? ॥४॥

रङ्क निरगुनी नीच जे जे तैं निवाजे हैं । महाराज सुजन समाज ते बिराजे हैं ॥ साँची बिरदावली न बढ़ि कहि गई है । सीलसिन्धु ढील तुलसी की बार भई है ॥ ५ ॥

जिन जिन दरिद्री, निर्गुणी और नीचों पर आपने दया की है, हे महाराज! वे सज्जन-मण्डली में विराजते हैं। यह आप की सच्ची नामवरी बढ़ा कर नहीं कही गई है, हे शील के सागर! तुलसी की बेर ढिलाई (न जाने क्यों) हुई है ॥५॥

(१८१)

राग-सोरठी ।

केहू भाँति कृपासिन्धु मेरी ओर हेरिये । मो को और ठौर न सुटेक एक तेरिये ॥ १ ॥

हे कृपासिन्धु! किसी तरह मेरी ओर निहारिये, मुझ को दूसरी जगह नहीं है एक आप ही का सुन्दर सहारा है ॥१॥

सहस सिला तें अति जड़ मति भई है । कासों कहउँ कवने गति पाहनहिँ दई है ॥ पद राग जाग चहउँ कौसिक ज्यों कियो है । कलिमल दल देखि भारी भीति भियो है ॥ २ ॥

पत्थर से हज़ारगुना बढ़ कर मेरी बुद्धि अत्यन्त जड़ हुई है। किससे कहूँ पत्थर को हिलने डोलने की शक्ति किसने दी है? मैं आप के चरनों की प्रीति रूपी यज्ञ करना चाहता हूँ, जैसे विश्वामित्रजी ने किया है; परन्तु पाप की सेना को देख कर भारी भय हो रहा है ॥२॥

उपमान पत्थर से उपमेय बुद्धि में अधिक कठोरता वर्णन 'व्यतिरेक अलंकार' है। पद-राग में यज्ञ का आरोप कर विश्वामित्रजी की समता दिखाना रूपक और उदाहरण की संसृष्टि है। अनुप्रास भी है।

करम कपीस बाली बली त्रास त्रसेउ हौं । चाहत अनाथनाथ तेरी बाँह बसेउ हौं ॥ महा मोह रावन बिभीषन ज्यों हयो है । त्राहि तुलसीस त्राहि तिहूँ ताप तयो है ॥ ३ ॥

मैं सुग्रीव कर्म रूपी बलवान बाली के डर से भयभीत हूँ, हे अनाथों के नाथ! आप की भुजाओं के बल पर बसना चाहता हूँ। महा मोह रूपी रावण विभीषण जैसा मुझे मारे है, हे स्वामिन्! तुलसी तीनों तापों से जलता है, मेरी रक्षा कीजिये मेरी रक्षा कीजिये ॥३॥

रूपक, उदाहरण, पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास की संसृष्टि है।

(१८२)

नाथ गुन-गाथ सुनि होत चित चाउ सो । राम रीझबे की जानो भगति न भाउ सो ॥ १ ॥

स्वामी के गुणों की कथा सुन कर उससे चित्त में लालसा होती है; किन्तु रामचन्द्रजी के प्रसन्न होने की भक्ति और वह भाव (प्रेम) नहीं जानता हूँ ॥१॥

करम सुभाउ काल ठाकुर न ठाउँ सो। सुधन न सुतन न सुमन सुआउ सो ॥ जाचौं जल जाहिं कहइ अमिय पिआउ सो। कहा कहउँ काहू सौं न बढ़त हियाउ सो ॥ २ ॥

कर्म, स्वभाव, काल, मालिक और स्थान अच्छे नहीं, सुन्दर धन नहीं, अच्छा शरीर नहीं, न मन श्रेष्ठ है और न वैसी बड़ी आयु है। जिससे पानी माँगता हूँ वह कहता है अमृत पिलाओ, क्या कहूँ किसी से वह (कहने की) हिम्मत नहीं बढ़ती है ॥२॥

बाप बलिजाउँ आप करिये उपाउ सो। तेरेही निहारे परइ हारेहू सुदाउ सो ॥ तेरेही सुझाये सूझइ असुझ सुझाउ सो। तेरेही बुझाये बूझइ अबुझ बुझाउ सो ॥ ३ ॥

हे पिताजी ! मैं बलि जाता हूँ आप वह उपाय कीजिये। आप ही के निहारने से हारे हुए का भी वह सुन्दर दाँव पड़ता है। आप ही के सुझाने से अन्धे को सूझता है वह सुझाइये और आप ही के समझाने से नासमझ को समझ पड़ता है उसे समझाइये ॥ ३ ॥

यहाँ पद और अर्थ दोनों की आवृत्ति बार बार होना 'पदार्थावृत्ति दीपक अलङ्कार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

नाम अवलम्ब अम्बु दीन मीनराउ सो। प्रभु सों बनाइ कहे जीह जरि जाउ सो ॥ सबइ भाँति बिगरी है एक सुबनाउ सो। तुलसी सुसाहेबहि दियेउ है जनाउ सो ॥ ४ ॥

नाम का आधार जल है और मैं दीन मीनराज (पहिना-मछली) के समान हूँ, स्वामी से बना कर कहने में वह जीभ जल जायगी। मेरी सब तरह से बिगड़ी है; किन्तु अच्छे सुधार की वह एक ही बात है कि तुलसी ने उसे श्रेष्ठ स्वामी को जना दिया है ॥ ४ ॥

रूपक और उपमा की संसृष्टि है। अनुप्रास भी है।

(१८३)

राग-असावरी ।

राम प्रीति की रीति आप नीके जनियत है। बड़े की बड़ाई करै छोटे की छोटाई दूरि, ऐसी बिरदावली सुबेद मानियत है ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आप प्रीति की रीति को भली भाँति जानते हैं। बड़े की बड़ाई करना और छोटे की छोटाई दूर करना आप की ऐसी अच्छी नामवरी वेद मानते हैं अर्थात् वेदों ने गाई है ॥ १ ॥

गीध को कियेउ सराध भीलनी के खाये फल, सोऊ साधु-सभा भली भाँति भनियत है। रावरे आदरे लोक वेदहू आदरी अति, जोग ज्ञानहूँ तेँ ताहि गरू गनियत है ॥ २ ॥

आपने गिद्ध का श्राद्ध किया और भिल्लिनी के फल खाये उसका साधुमण्डली में अच्छी तरह वर्णन किया है। आप के आदर देने से लोक और वेद में भी अत्यन्त आदरणीय, योग तथा ज्ञान से भी वह श्रेष्ठ गिना जाता है ॥ २ ॥

प्रभु की कृपा कृपाल कठिन कलिहु काल, महिमा समुझि उर माँहि अनियत है। तुलसी पराये वस भये रस अनरस, दीनवन्धु द्वारे हरि हठ ठनियत है ॥ ३ ॥

कृपालु स्वामी के कृपा की महिमा समझ कर कठिन कलिकाल में भी उसको हृदय में ले आता हूँ। पराधीन होने से तुलसी का आनन्द फीका (निरानन्द) हो जायगा, हे दीन-वन्धु भगवन्! इसी से आप के दरवाजे पर हठ ठानता हूँ ॥ ३ ॥

तुलसी कलि के वश होगा तो आप के चरणों का आनन्द जाता रहेगा, इस भय से स्वामी के समीप हठ करता हूँ कि प्रेम का नाता स्वीकार कीजिये। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है। अनुप्रास भी है।

(१८४)

राम नाम के जपे पै जाइ जिय की जरनि। कलिकाल अपर उपाय ते अपाय भये, जैसें तम नासवें को चित्र के तरनि ॥ १ ॥

राम-नाम के जपने से जी की जलन चली जाती है। कलिकाल में दूसरे उपाय वे लँगड़े हुए हैं जैसे अन्धकार नाश करने को तसवीर के सूर्य्य ॥ १ ॥

दूसरे उपाय कलि में पीछे हट गये हैं, इस बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे चित्र के सूर्य्य अन्धकार नाश करने में असमर्थ हैं 'उदाहरण अलङ्कार' है।

करम कलाप परिताप पाप साने सव, ज्यौं सुफूल फूलइ रूख फोकट फरनि। दम्भ लोभ लालच उपासना विनासि नीके, सुगति साधन भई उदर भरनि ॥ २ ॥

कर्म के व्यापार सब दुःख और पाप से मिले हैं जैसे सुन्दर फूल फूलनेवाला (सेमर) वृक्ष व्यर्थ (सार हीन) फल फलता है। पाखण्ड, लोभ और तृष्णा ने आराधना (देवपूजन) का अच्छी तरह से नाश कर डाला; क्योंकि मोक्ष की साधनाएँ पेट भरने की तदबीर हुई हैं ॥ २ ॥

उदाहरण और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जोग न समाधि निरुपाधि न बिराग ज्ञान, वचन बिसेष बेष कहूँ न करनि। कपट कुपथ कोटि कहनि रहनि खोटि, सकल सराहैं निज निज आचरनि ॥ ३ ॥

न योग, न समाधि, न ज्ञान और वैराग्य बाधा हीन हैं, वचन और वेष बड़े लम्बे चौड़े; किन्तु करनी कहीं कुछ नहीं। करोड़ों छल और कुमार्ग की कहावत तथा खोटी चालचलन पर भी सब अपने अपने आचरण की बड़ाई करते हैं ॥ ३ ॥

अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

मरत महेस उपदेस हैं कहा करत, सुरसरि तीर कासी धरम धरनि। राम नाम को प्रताप हर कहैं जपइँ आप, जुग जुग जानै जग बेदहू बरनि ॥ ४ ॥

गङ्गाजी के किनारे पुण्य-भूमि काशी में जीवों को मरते समय शिवजी क्या उपदेश करते हैं? राम नाम की महिमा को शङ्करजी कहते हैं और आप जपते हैं, युग युगान्तरों से संसार जानता है तथा वेद भी वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

मति राम नामही सौं रति राम नामही सौं, गति राम नामही की विपति हरनि। राम नाम सौं प्रतीति प्रीति राखे कबहुँक, तुलसी ढरैंगे राम आपनी ढरनि ॥ ५ ॥

राम नाम ही से बुद्धि, राम नाम ही से प्रीति और राम नाम ही की गति से विपत्ति नष्ट होती है। राम नाम से विश्वास और प्रेम रखने से तुलसीदासजी कहते हैं कि कभी न कभी रामचन्द्रजी अपनी स्वाभाविक दया से अवश्य ही दयालु होंगे ॥ ५ ॥

यहाँ राम-नाम में विप्सा और पुनरुक्तिप्रकाश का सन्देहसङ्कर है।

(१८५)

लाज न लागत दास कहावत। सो आचरन बिसारि सोच तजि जो हरि तुम्ह कहँ भावत ॥ १ ॥

दास कहाने में लाज नहीं लगती, हे हरे! जो आचरण आप को अच्छा लगता है उसको बेफ़िकरी के साथ भुला दिया है ॥१॥

सकल सङ्ग तजि भजत जाहि मुनि, जप तप जोग बनावत।
मो सम मन्द महा खल पाँवर, कवन जतन तेहि पावत ॥ २ ॥

सब साथ त्याग कर मुनि लोग जप, तप और योग करके जिनका भजन करते हैं। मेरे समान महामूर्ख, दुष्ट और नीच उसको किस उपाय से पा सकता है? ॥२॥

फल तो महा मुनियों के समान चाहता हूँ, किन्तु करनी दुष्टता भरी नीचों की करता हूँ 'विचित्र अलंकार' है।

हरि निरमल मल-ग्रसित हृदय असमञ्जस मोहि जनावत।
जेहि सर काक कङ्क बक सूकर, क्यों मराल तहँ आवत ॥ ३ ॥

भगवान निर्मल हैं और मेरा हृदय मलिनता से जकड़ा है, इसी से मुझे अण्डस जान पड़ता है कि जिस तालाब में कौआ, चिल्होर, बकुला और सुअर निवास करते हैं, वहाँ हंस कैसे आ सकता है? ॥३॥

काकु से विपरीत अर्थ भासित होना कि वहाँ हंस नहीं आ सकता 'वक्रोक्ति अलंकार' है। कहाँ शूकरादि के निवास की तलैया और कहाँ मानसरोवर-निवासी राजहंस, इस अनमेल में 'प्रथम विषम अलंकार' है।

जाकी सरन जाइ कोविद दारुन त्रय ताप बुझावत।
तहूँ गये मद मोह लोभ अति, सरगहु मिटत न सावत ॥ ४ ॥

जिनकी शरण में जाकर विद्वान भीषण तीनों ताप बुझाते हैं, वहाँ जाने पर भी अत्यन्त मद, मोह और लोभ बने हैं, स्वर्ग में भी ईर्षाद्वेष नहीं मिटता ॥४॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि रामचन्द्रजी के शरण जाने पर अर्थात् रामभक्त कहलाने पर भी मद मोह नहीं छूटते। इसे सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है।

भव-सरिता कहँ नाव सन्त यह, कहि औरन्हि समुझावत।
हौं तिन्ह सौं हरि परम बैर करि, तुम्ह सौं भलो मनावत ॥५॥

सन्त जन संसार रूपी नदी से पार उतारने के लिये नौका रूप हैं, यह कह कर दूसरों को समझाता हूँ। हे भगवन्! मैं उनसे अतिशय शत्रुता करके आप से अपनी भलाई चाहता हूँ ॥५॥

ईश्वर से भला चाहे तो सन्तों की सेवा करे; किन्तु उनसे वैर रख कर ईश्वर से कुशल की चाहना 'विचित्र अलंकार' है।

नाहिँन और ठौर मो कहँ ता तेँ हठि नातो लावत ।
राखु सरन उदार चूड़ामनि, तुलसिदास गुन गावत ॥ ६ ॥

मुझ को दूसरी जगह नहीं है इसी से हठ कर आप से नाता जोड़ता हूँ । हे दानियों के शिरोमणि ! तुलसीदास को शरण में रखिये, यह आप का गुण गान करता है ॥६॥

(१८६)

कवन जतन बिनती करिये । निज आचरन बिचारि हारि हिय, मानि जानि डरिये ॥ १ ॥

किस उपाय से विनती करूँ ? अपने आचरण को विचार कर हृदय में हार मान कर समझ कर डरता हूँ ॥१॥

जेहि साधन हरि द्रवहु जानि जन, सो हठि परिहरिये ।
जाते बिपति जाल निसि दिन दुख, तेहि पथ अनुसरिये ॥ २ ॥

हे हरे ! जिन साधनों से अपना दास समझ कर आप प्रसन्न होते हैं उसको मैं हठ से त्यागे हुए हूँ । जिससे विपत्ति का जाल रातो दिन दुःख प्राप्त हो उसी रास्ते में चलता हूँ ॥ २॥

जानतहूँ मन बचन करम पर-हित कीन्हे तरिये । सो बिपरीत देखि पर-सुख बिनु कारनहीं जरिये ॥ ३ ॥

यह जानते हुए कि मन, वचन और कर्म से परोपकार करने पर (संसार-सागर से) पार हो सकूँगा । उसके विरुद्ध दूसरे का सुख देख कर विना प्रयोजन ही जलता हूँ ॥३॥

स्रुति पुरान सबको मत यह, सतसङ्ग सुदिढ़ धरिये । निज अभिमान मोह इरिषा बस, तिन्हहिँ न आदरिये ॥ ४ ॥

वेद और पुराण सब का यह सिद्धान्त है कि सत्सङ्ग खूब दृढ़ता से पकड़ना चाहिये । अपने अहङ्कार, अज्ञान और ईर्ष्या के वश उनका आदर नहीं करता हूँ ॥४॥

सन्तत सोइ प्रिय मोहि सदा जा तेँ भव-निधि परिये ।
कहउँ अब नाथ कवन बल तेँ, संसार-सोक हरिये ॥ ५ ॥

सदा सर्वदा मुझे वही प्यारा है जिससे संसार-समुद्र में पड़ूँ । हे नाथ ! अब किस बल से कहूँ कि मेरा संसारी-शोक हर लीजिये ॥५॥

जब कब निज करुना सुभाव तें, द्रवहु तो निस्तरिये ।
तुलसिदास बिस्वास आन नाहिं, कत पचि पचि मरिये ॥ ६ ॥

जब कभी अपने करुणा स्वभाव से दया कीजियेगा तो छुटकारा मिल जायगा । तुलसीदास को दूसरा विश्वास नहीं है, काहे को (अन्यत्र) पूर्ण रूप से तन्मय हो होकर मरे ॥६॥

'पचि शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है ।

(१८७)

ताही ते आयउँ सरन सबेरे । ज्ञान बिराग भगति साधन किछु, सपनेहुँ नाहिंन मेरे ॥ १ ॥

मैं इसी से सवेरे (आयु रहते) आप की शरण आया हूँ । ज्ञान, वैराग्य और भक्ति का कुछ साधन सपने में भी मेरे में नहीं है ॥१॥

लोभ मोह मद क्रोध बोधरिपु, रहत रैन दिन घेरे ।
तिन्हहिं मिले मन भयउ कुपथ-रत, फिरइ तुम्हारेहि फेरे ॥ २ ॥

लोभ, मोह, मद, क्रोध और अज्ञान रातोदिन घेरे रहते हैं । उनसे मिल कर मन कुमार्ग में लगा है वह आप ही के फेरने से फिरेगा ॥२॥

दोष-निलय यह बिषय सोक-प्रद, कहत सन्त स्रुति टेरे ।
जानतहूँ अनुराग तहाँ अति, सो हरि तुम्हरेहि प्रेरे ॥ ३ ॥

यह विषय दोषों का स्थान और शोक का देनेवाला है, सन्त तथा वेद पुकार कर कहते हैं । जानते हुए भी उससे बड़ा प्रेम करता हूँ, हे हरे ! वह आप ही की प्रेरणा है ॥३॥

बिष पियूष सम करहु अगिनि हिम, तारि सकहु बिनु बेरे ।
तुम्ह सम ईस कृपालु परम हित, पुनि न पाइहउँ हेरे ॥ ४ ॥

आप विष को अमृत और अग्नि को पाले के समान कर सकते हैं, विना जहाज़ समुद्र के पार उतार सकते हैं । आप के समान परम हितैषी कृपालु स्वामी फिर ढूँढ़ने से न पाऊँगा ॥४॥

विरोधी वर्णन में 'विरोधाभास अलंकार' है; क्योंकि ईश्वर योग्यायोग्य सब करने में समर्थ है ।

अस जिय जानि रहउँ सब तजि, रघुबीर भरोसे तेरे ।
तुलसिदास यह बिपति बागुरा, तुम्ह सौं बनिहि निबेरे ॥ ५ ॥

हे रघुनाथजी ! ऐसा जी में जान कर सब तज कर आप के भरोसे रहता हूँ । तुलसी-दास का यह विपत्ति का फन्दा आप ही से छुड़ाते बनेगा ॥५॥

'आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार' है ।

(१८८)

मैं तोहि अब जानेउँ संसार । बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल, प्रगट कपट आगार ॥ १ ॥

रे संसार ! अब मैं तुझे जान गया कि तू कपट का स्थान प्रसिद्ध है; किन्तु भगवान के बल से मुझे बाँध नहीं सकता ॥१॥

देखतही कमनीय कछू नाहिंन पुनि किये बिचार । ज्यौं कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निसरइ सार ॥ २ ॥

तू देखने ही में सुन्दर है फिर विचार करने से कुछ नहीं है, जैसे केला-वृक्ष का बीच देखने से कभी सार (हीर) नहीं निकलता ॥२॥

संसार देखने में सुन्दर; किन्तु सार हीन है । इसकी विशेष से समता दिखानी कि जैसे केले का वृक्ष शोभन होता है पर उसके भीतर हीर नहीं रहता 'उदाहरण अलंकार' है ।

तेरे लिये जनम अनेक मैं, फिरत न पायउँ पार । महा मोह मृग-जल सरिता महँ, बोरेउ बारहि बार ॥ ३ ॥

तेरे लिये मैं अनेक जन्म (योनियों में घूमता) फिरा पर पार न पाया, महा अज्ञान रूपी मृगजल की नदी में तू ने मुझ को बार बार डुबोया ॥३॥

अज्ञान में मृगजल (झूठे जल की) नदी का पूर्णरूप से एकरूपता वर्णन 'समअभेद रूपक अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सुनु खल छल बल कोटि किये बस, होहिं न भगत उदार । सहित सहाय तहाँ बसु अब जेहि, हृदय न नन्दकुमार ॥ ४ ॥

रे दुष्ट ! सुन, करोड़ों छल बल करने से श्रेष्ठ भक्त तेरे वश में न होंगे । तू अब अपने सहायकों के सहित वहाँ निवास करे जिसके हृदय में नन्दकुमार न हों ॥४॥

नन्दकुमार की कलाबाज़ी के सामने तेरे छल बल एक न चलेंगे, उपहासास्पद होने के सिवा सफल मनोरथ न होगा । यह वाच्यसिद्धङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

तासौं करइ चातुरी जो नहिं, जानइ मरम तुम्हार । सो परिमरइ डरइ रजु अहि तें, बूझइ नहिं व्यवहार ॥ ५ ॥

तू उससे चालाकी करे जो तेरा भेद न जानता हो। रस्सी के साँप से वही डर कर मरेगा जो उसके व्यवहार को न समझेगा ॥५॥

असली कथन तो यह है कि जो भेद को न जानता होगा वही तेरे पञ्जे में फँसेगा, मैं नहीं फँस सकता। इसे सीधे न कह कर घुमाकर कहना 'ललित अलंकार' है।

निज हित सुनु सठ हठ न करहि जौं, चहहि कुसल परिवार।
तुलसिदास प्रभु के दासन्ह तजि, भजहि जहाँ मद मार ॥ ६ ॥

अरे दुष्ट! सुन, यदि परिवार के सहित अपना कुशल चाहता है तो हठ मत कर, तुलसीदास के स्वामी के दासों को छोड़ कर जहाँ मद और काम हों उनकी सेवा कर ॥६॥

(१८९)

राग-गौरी ।

राम कहत चलु राम कहत चलु, राम कहत चलु भाई रे।
नाहिँत भव-बेगारि परिहउ पुनि, छूटब अति कठिनाई रे ॥ १ ॥

अरे भैया! राम कहते चलो, राम कहते चलो, राम कहते चलो, नहीं तो संसार की बेगार में पड़ोगे फिर छूटना बड़ा कठिन होगा ॥१॥

यहाँ कई बार राम कहते चलो कहने में भय की विप्सा है।

बाँस पुरान साज सब अटकठ, सरल तिकोन खटोला रे।
हमहिँ दिहल करि कुटिल करमचँद मन्द मोल बिनु डोला रे ॥२॥

पुराना बाँस, सब सामान टेढ़ामेढ़ा सड़ा हुआ तीन कोन का खटोला है। नीच कर्मचन्द बढ़ई ने दग़ाबाज़ी करके बिना मोल (क़ीमत) के यह डोला हमें दिया है ॥२॥

यहाँ शरीर के लिये गोसाँईजी ने डोली का साङ्गरूपक बाँधा है; किन्तु केवल उपमान कह कर उपमेयों को अर्थ से समझना 'रूपकातिशयोक्ति अलङ्कार' है। दोनों में अङ्गाङ्गी भाव है बाँस=उपमान, अविद्यामाया=उपमेय है। अण्डबण्ड सड़ा हुआ साज=उपमान, पाँचो तत्व जिससे शरीर बना है=उपमेय है। भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल=उपमान, पावा=उपमेय है। सत, रज, तम तीनों गुण=उपमान, तीनों पाटियाँ=उपमेय हैं। श्वास रूपी रस्सी से बिना है। नीच कर्म रूपी बढ़ई की प्रेरणा से बार बार शरीर धारण करना सिर पर कुबोझ का लादना है।

विषम कहार मार मद माँते, चलहिँ न पाँव बटोरा रे।
मन्द बलन्द अभेरा दलकन, पाइय दुख झकझोरा रे ॥ ३ ॥

विषम (अनमेल छोटे बड़े) कहार काम के नसे से मतवाले पैर बचा कर नहीं चलते हैं जिससे डोला के नीचे ऊँचे होने, टकराने, हिलने और धक्का लगने से दुःख मिलता है ॥३॥

पाँचों ज्ञानेन्द्रिय=उपमेय, कहार=उपमान हैं। उनका विषय=उपमान, काम का नशा=उपमेय है। सदाचार का उल्लङ्घन=उपमेय, पाँव बचा कर न चलना=उपमान है। दुष्टकामना=उपमेय है। नीचे ऊँचे होना=उपमान है। आशा-तृष्णा के वश होना=उपमेय, टकराना=उपमान है। अज्ञान जन्य चञ्चलता=उपमेय, हिलना=उपमान है। संसारी सुखों का पूरा न होना=उपमेय, धक्का लगना=उपमान है।

काँट कुराय लपेटन लोटन, ठाँवहिँ ठाँव बझाऊ रे। जस जस चलिय दूर तस तस निज-बास न भैंट लगाऊ रे॥ ४॥

काँटा युक्त कुराह, लपटनेवाले झाड़ और जगह जगह फसानेवाली लताएँ हैं। ज्यों ज्यों चलता हूँ त्यों त्यों अपना घर मिलने का पता नहीं, दूर सुनने में आता है॥ ४॥

तरह तरह के वियोग=उपमेय, काँटा उपमान है। मिथ्यारम्भ=उपमेय, कुराह=उपमान है। मोह=उपमेय, लपेटन=उपमान है। माया=उपमेय, लपटनेवाली लता=उपमान है। बार बार योनियों में पड़ना=उपमेय, फँसना=उपमान है। जीवन के दिन बीतना=उपमेय, क्रमशः आगे चलना=उपमान है। ईश्वर से दूर पड़ते जाना=उपमेय, अपना घर न मिलना=उपमान है।

मारग अगम सङ्ग नहिँ सम्बल, नाउँ गाउँ कर भूला रे। तुलसिदास भव त्रास हरहु अब, होहु राम अनुकूला रे॥ ५॥

रास्ता दुर्गम कोई साथी नहीं और न राहख़र्च है, गाँव का नाम ही भूल गया है। तुलसीदासजी कहते हैं—हे रामचन्द्रजी! प्रसन्न होकर अब मेरा संसारी-भय हर लीजिये॥ ५॥

जन्म मृत्यु का अन्त न होना=उपमेय, मार्ग की दुर्गमता=उपमान है। ईश्वरभजन=उपमेय, राहख़र्च=उपमान है। आत्मस्वरूप की विस्मृति=उपमेय, गाँव का नाम भूलना=उपमान है। आत्मा अकेला इसका कोई साथी नहीं है। जैसे बेगार डोली ढोने के लिये उसमें लगाये जाते हैं और बोझ से कष्ट पाते हैं, वैसे जीव शरीर रूपी डोली पर सवार होने के लिये बेगार पकड़ा गया है और दुःख पाता है, यह विलक्षणता है।

(१९०)

राग-असावरी।

सहज सनेही राम सौं, तैं किये न सहज सनेह। तातैं भव भाजन भयउ, सुनु अजहुँ सिखावन एह॥ १॥

स्वभाव से स्नेह करनेवाले रामचन्द्रजी से तू ने सहज ही प्रीति नहीं की। इसी से संसार का पात्र हुआ है अब भी मेरा यह सिखाना सुन ॥१॥

ज्यौँ मुख मुकुर बिलोकिये, अरु चित न रहइ अनुहारि। त्यौँ सेवतहु निरापने, ये मातु पिता सुत नारि ॥ २ ॥

जैसे आइने में मुख देखिये और वह आकृति मन में नहीं रहती, वैसे सेवा करते हुए भी माता, पिता, पुत्र, स्त्री ये अपने नहीं हैं ॥२॥

माता, पिता, पुत्र और स्त्री सेवा करने पर अपने नहीं होते अर्थात् वियोग हो ही जाता है, इसकी विशेष से समता दिखाना कि जैसे दर्पण में मुख दिखाता है; किन्तु उसकी अनुहारि चित्त से अलग रहती है ठहरती नहीं 'उदाहरण अलंकार' है।

देइ सुमन तिल बासि कै, पुनि खरि परिहरि रस लेत। स्वारथ हित भूतल भरे, इमि मन मेचक तनु सेत ॥ ३ ॥

सुगन्धित फूल देकर तिल को खुशबूदार करके फिर तेल निकाल लेते और खरी को त्याग देते हैं। इसी तरह अपने मतलबवाले धरती में भरे हैं, उनका मन काला और शरीर श्वेत है ॥३॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि दुनियाँ के साथियों का प्रेम अपने मतलब से भरा दिखावटी है उनका मन काला देह सफ़ेद कह कर उसी का दृष्टान्त दिखाना 'ललित और दृष्टान्त अलंकार का सन्देहसङ्कर है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

करि बीतेउ अब करत है, करिबे हित मीत अपार। कतहुँ न कोउ रघुबीर सौँ, नित नेह निबाहनिहार ॥ ४ ॥

अपनी भलाई के लिये ऐसे मित्र न जाने कितने कर चुके, अब करता है और आगे (भविष्य में) भी करना चाहता है। रघुनाथजी के समान नित्य स्नेह निबाहनेवाला कहीं भी कोई नहीं है ॥४॥

जासौँ सब नाते फुरइ, तासौँ न करी पहिचानि। ता तैँ कछु समुझेउ नहीँ, मन कहा लाभ कह हानि ॥ ५ ॥

जिससे सब नतैती सच्ची होती है उससे पहचान न की, हे मन! इसी से तू ने कुछ नहीं जाना कि क्या लाभ है और क्या हानि है ॥५॥

साँचो जानेउ झूठ कैँ, झूठे कहँ साँचो जानि। को न गयउ को न जात है, को न जइहै करि हित-हानि ॥ ६ ॥

सच को झूठ जाना और झूठे को सच माना। (ऐसा समझनेवाला) अपने कल्याण को खो कर कौन नहीं गया, कौन नहीं जाता है और कौन न जायगा ? ॥६॥

बेद कहेउ बुध कहत हैं, अरु हौं हूँ कहत हौं टेरि।
तुलसी प्रभु साँचो हितू, तू हिय की आँखिन्ह हेरि ॥ ७ ॥

वेदों ने कहा है, विद्वान कहते हैं और मैं भी पुकार कर कहता हूँ कि तुलसी के स्वामी ही सच्चे हितैषी हैं, तू हृदय की आँखों से देख ॥७॥

(१९१)

एक सनेही साँचिलो, जग केवल कोसलपाल। प्रेम कनौड़ो राम सौं, प्रभु नहिं दूसरो दयाल ॥ १ ॥

जगत में सच्चे स्नेही केवल एक अयोध्यानरेश हैं। प्रेम के एहसान से दबनेवाला स्वामी रामचन्द्रजी के समान दूसरा कोई दयालु नहीं है ॥१॥

तनु साथी सब स्वारथी, हैं सुर ब्यवहार सुजान।
आरत अधम अनाथ को, हित को रघुबीर समान ॥ २ ॥

शरीर के साथी (इन्द्रियाँ) सब अपने मतलबवाली हैं और उनके देवता विषय व्यापार में चतुर हैं। दुःखी, पापी और अनाथों के लिये रघुनाथजी के समान उपकारी कौन है ? (कोई नहीं) ॥२॥

वक्रोक्ति और अनुप्रास की संसृष्टि है।

नाद निठुर समचर सिखी, तिमि सलिल सनेह न सूर।
ससि सरोग दिनकर बड़े, सुठि पयद प्रेमरस कूर ॥ ३ ॥

नाद (ध्वन्यात्मक शब्द-राग) निर्दयी, अग्नि समान आचरणवाले हैं, उसी तरह पानी स्नेह का शूरवीर नहीं है। चन्द्रमा रोग युक्त, सूर्य्य बड़े कहानेवाले और बादल प्रेमरस में अत्यन्त भीषण है ॥३॥

नाद—मृग उसे सुन कर मोहित हो बँधुआ हो जाता है; पर वह अपने प्रेमी की कुछ भी सहायता नहीं करता। अग्नि-जैसे सब पदार्थों को भस्म करते उसी तरह अपने प्रेमी पाँखी को भी जला डालते हैं। पानी—विना मछली शरीर तज देती है; परन्तु वह उसकी परवाह नहीं करता। चन्द्रमा-रोगी है इस दोष का ख़्याल न कर चकोर प्रीति करत है; किन्तु चन्द्रमा नहीं। सूर्य्य कहने को बड़े हैं, पर अपने प्रेमी कमल को जला डालते हैं बादल-से चातक स्नेह रखता है; किन्तु वह प्रेमरस में बड़ा भयावना उस पर ज़रा भी दया नहीं दिखाता।

जाको मन जा सौं बँधो, ता कहँ सुखदायक सोइ।
सरल सील साहेब सदा, सीतापति सरिस न कोइ ॥ ४ ॥

जिसका मन जिससे लग जाता है उसको वही सुखदायक होता है। सीतानाथ के समान निरन्तर अनुकूल शीलवान स्वामी कोई नहीं है ॥४॥

सुनि सेवा सहि को करइ, परिहरइ को दूषन देखि।
केहि दिवान दिन दीन को, आदर अनुराग विसेखि ॥ ५ ॥

सुना सुनाई सेवा को सही मानना और देख कर दोषों को भूल जाना ऐसा कौन करेगा? किस दरबार में नित्य दीनों का आदर होता है और उन पर अधिक प्रेम किया जाता है? ॥५॥

खग सबरी पितु मातु ज्यौं, माने कपि को किय मीत।
केवट भैंटेउ भरत ज्यौं, ऐसो को पतित-पुनीत ॥ ६ ॥

जटायु और शबरी को पिता-माता की तरह माने और वानर को किसने मित्र बनाया। केवट से भरतजी की तरह मिले, ऐसा कौन पापियों को पुनीत करनेवाला है? ॥६॥

काकु द्वारा भिन्न अर्थ प्रगट होना कि ऐसा पतितपावन कोई भी नहीं 'वक्रोक्ति अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

देइ अभागहि भाग को, को राखइ सरन सभीत।
बेद बिदित बिरदावली, कबि कोबिद गावत गीत ॥ ७ ॥

अभागे को कौन भाग देता है और भयभीत को कौन शरण में रखता है? जिनकी नामवरी वेदों में विख्यात है और कवि विद्वान् यश के गीत गाते हैं ॥७॥

वक्रोक्ति, शब्दप्रमाण और अनुप्रास की संसृष्टि है।

कैसउ पाँवर पातकी, जेहि लई नाम की ओट। गाँठी बाँधेउ राम सो, परखेउ न फेरि खर खोट ॥ ८ ॥

कैसा ही नीच पापी जिसने नाम की आड़ ली रामचन्द्रजी ने फिर खरा खोटा नहीं परखा, उसको गाँठ में बाँध लिया ॥८॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि कैसे ही पापी अधम जिन्हों ने नाम की ओट ली उन्हें रामचन्द्रजी ने शरण में ले लिया, उनकी खोटाई की ओर नहीं देखा खरा बना लिया। इसको सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है।

मन मलीन कलि किलबिषी, है सुनत जासु कृत काज।
सो तुलसी किय आपनो, रघुबीर गरीब-निवाज ॥ ९ ॥

जिसके किये कर्मों के सुनते ही कलि के पापों से मन मैला होता है, उस तुलसी को अपना दास बनाया। रघुनाथजी ऐसे ग़रीब नेवाज़ हैं ॥९॥

(१९२)

जोपि जानकीनाथ सौं, भयो नातो नेह न नीच । स्वारथ परमारथ कहा, कलि कुटिल बिगोयो बीच ॥ १ ॥

अरे नीच! निश्चय ही यदि जानकीनाथ से स्नेह का नाता नहीं हुआ तो स्वार्थ और परमार्थ कैसा? कपटी कलिकाल ने बीच में ही तुझे बिगाड़ दिया ॥१॥

धरम बरन आस्रमन्हि के, पइयत पोथिहीं पुरान । करतब बिनु बेष बिलोकियें, ज्यौं सरीर बिनु प्रान ॥ २ ॥

वर्ण और आश्रमों के धर्म पुस्तक और पुराणों ही में मिलते हैं, बिना करनी के वेष देखने में आता है जैसे बिना प्राण के शरीर ॥२॥

वर्णाश्रमों में कर्म धर्म कुछ नहीं वेष मात्र देखा जाता है, इसकी विशेष से समता दिखाना कि वे ऐसे हो गये हैं जैसे बिना प्राण के शरीर 'उदाहरण अलंकार' है।

बेद बिदित साधन सबइ, सुनियत दायक फल चारि । राम प्रेम बिनु जानिबो, जस सर सरिता बिनु बारि ॥ ३ ॥

वेदों में प्रसिद्ध साधनों को सुनता हूँ कि सब चारों फल के देनेवाले हैं। बिना रामचन्द्रजी के प्रेम के उन्हें ऐसा जानना चाहिये जैसे बिना जल के तालाब और नदियाँ ॥३॥

रामप्रेम के बिना सब साधन निर्जीव हैं, इसकी विशेष से समता दिखाना जैसे बिना पानी के तालाब और नदी शोभा हीन व्यर्थ दीखते हैं 'उदाहरण अलंकार' है।

नाना पथ निरबान के, नाना बिधान बहु भाँति । तुलसी तू मेरे कहे, जपु राम नाम दिन राति ॥४॥

मोक्ष के अनेक मार्ग और बहुत तरह के नाना विधान हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि तू मेरे कहने से दिन रात राम नाम को जप ॥४॥

(१९३)

अजहुँ आपने राम के, करतब समुझत हित होइ । कहँ तू कहँ कोसलधनी, तोहि कहा कहत सब कोइ ॥१॥

अब भी अपनी और रामचन्द्रजी की करनी समझने से भला होगा। कहाँ तू और कहाँ कोशलराज! तुझ को सब कोई क्या कहते हैं? ॥१॥

कहाँ तू तुच्छ जीव और कहाँ कोशलधनी ईश्वर, इस अनमेल वर्णन में प्रथम 'विषम अलंकार' है। सब लोग तुझे इतने बड़े स्वामी का सेवक कहते हैं।

रीझि निवाजेउ कबहिं तू, कब खीझि दियेउ तोहि गारि। दरपन बदन निहारि के, सुविचारि मानि हिय हारि ॥२॥

तू प्रसन्नता से कब कृपा चाहनेवाला हुआ और कब उन्हों ने अप्रसन्न हो कर तुझ को गाली दी? आइने में मुख देख कर भली भाँति विचार कर तू ने हृदय में हार मान ली है ॥२॥

दर्पण में कोई आकार वर्त्तमान नहीं रहता, जैसी आकृति सामने आती है वैसा ही प्रतिबिम्ब उसमें दीखता है। तू ने अपने ही विचारों से अपने को विमुखी मान लिया पर ईश्वर किसी के विमुख नहीं। प्रथम उपमेय और द्वितीय उपमान वाक्य है, दोनों में बिना वाचक पद के बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव झलकना 'दृष्टान्त अलंकार' है।

बिगरी जनम अनेक की, सुधरत पल लगइ न आधु। पाहि कृपानिधि प्रेम सौं, कहे को न राम किय साधु ॥३॥

अनेक जन्म की बिगड़ी बात सुधरने में आधा पल भी न लगेगा। हे कृपानिधान! मेरी रक्षा कीजिये, प्रेम से ऐसा कहने पर रामचन्द्रजी ने किसको साधु नहीं बना दिया? अर्थात् सभी को साधु बनाया ॥३॥

बालमीक केवट कथा, कपि भील भालु सनमान। सुनि सनमुख जो न राम सौं, तेहि को उपदेसइ ज्ञान ॥४॥

वाल्मीकि मुनि और गुहा केवट की कथा, वानर, भिल्ल और भालुओं का सन्मान सुन कर जो रामचन्द्रजी से सन्मुख नहीं होता उसको कौन ज्ञानोपदेश करेगा? अर्थात् वह मूर्ख उपदेश के योग्य नहीं है ॥४॥

क, भ और स अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास और वक्रोक्ति की संसृष्टि है।

का सेवा सुग्रीव की, का प्रीति रीति निरबाहु। तासु बन्धु बधि ब्याध ज्यौं, सो सुनत सोहात न काहु ॥५॥

सुग्रीव ने कौन सी सेवा की और प्रीति की रीति का कौन सा निर्वाह किया? उसके भाई को बहेलिया की तरह छिप कर मारा जो सुन कर किसी को नहीं सुहाता ॥५॥

सुग्रीव ने न तो कोई सेवा की और न प्रीति की रीति ही निबाही, पास ही रामचन्द्रजी पर्वत पर टिके थे लौट कर वर्षा पर्य्यन्त खबर तक न ली। उसके लिये वाली को छिप कर मारा, इसकी समता विशेष से दिखाना कि जैसे शिकारी व्याधा छिप कर जीवों का वध करता है 'उदाहरण अलंकार' है।

भजन बिभीषन को कहा, फल कहा दियेउ रघुराज । राम गरीबनेवाज की, बड़ि बाँह बोल की लाज ॥६॥

विभीषण का कौन सा भजन था और रघुनाथजी ने क्या फल दिया! गरीब निवाज़ रामचन्द्रजी को अपनी बाँह (शरण) और बात की बड़ी लाज है ॥६॥

शरणागत को निर्भय करके फिर उसके अपराधों की ओर ध्यान नहीं देते। यह अर्थान्तर संक्रमितवाच्य ध्वनि है।

जपहि नाम रघुनाथ को, चरचा न दूसरी चालु । सुमुख सुखद साहेब सुभी, समरथ कृपाल नतपालु ॥७॥

रघुनाथजी का नाम जप, दूसरी चर्चा न चलावे। वे प्रसन्न-वदन, सुखदायक स्वामी, कल्याण कर्त्ता, दया के स्थान और नम्र जनों के पालनेवाले हैं ॥७॥

सजल नयन गदगद-गिरा, गहबर मन पुलक सरीर । गावत गुन गन राम के, केहि की न मिटी भव-भीर ॥८॥

आँखों में जल भरे, गद्गद् वाणी, प्रेम में मन डूबा, रोमाञ्चित शरीर से रामचन्द्रजी के गुणों को गान करने से किसका संसारी पीड़ा नहीं मिटी? अर्थात् सब की दूर हुई ॥८॥

प्रभु कृतज्ञ सरबज्ञ हैं, परिहरु पाछिली गलानि । तुलसी तो सौं राम सौं, कछु नइ न जान पहिचानि ॥९॥

प्रभु रामचन्द्रजी कृतविज्ञ और सर्व ज्ञाता हैं, पिछली ग्लानियों को त्याग दे अर्थात् अपने किये अधर्मों को सोच कर हृदय में हारी न मान। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी से और तुझ से कुछ नई जान-पहचान नहीं है ॥९॥

तू जीव है और वे ईश्वर हैं। ईश्वर-जीव का सम्बन्ध अनादि काल से है। यह अभिधा मूलक लक्ष्यक्रम व्यङ्ग है कि तेरे समस्त अपराधों को क्षमा करेंगे।

(१९४)

जौं अनुराग न राम सनेही सौं । तौ लहेउ लाहु कहा नर देही सौं ॥१॥

यदि रामचन्द्रजी के समान स्नेह करनेवाले स्वामी से प्रेम न हुआ तो मनुष्य-देह से कौन सा लाभ पाया? (कुछ नहीं) ॥१॥

जो तनु धरि परिहरि सब सुख भय, सुमति राम अनुरागी।
सो तनु पाइ अघाइ कियेउ अघ,-अवगुन अधम अभागी ॥२॥

जो शरीर धारण करके अच्छी बुद्धि वाले लोग सब विषय सुख और संसारी-भय त्याग कर अनुरागी (ईश्वर भक्त) होते हैं। अरे अभागे पापी! उस शरीर को पा कर तू ने भरपेट पाप और दोष ही किया ॥२॥

ज्ञान बिराग जोग जप तप मख, जग मुद मग नहिं थोरे।
राम प्रेम बिनु नेम जाय जस, मृगजल-जलधि हिलोरे ॥३॥

ज्ञान, वैराग्य, योग, जप, तप और यज्ञादि आनन्द के मार्ग थोड़े नहीं हैं। विना रामचन्द्रजी के प्रेम—नेम के सब व्यर्थ हैं, जैसे मृगजल के समुद्र की लहरें ॥३॥

विना राम-प्रेम के ज्ञान, योग आदि की हीनता वर्णन में 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है। इसकी विशेष से समता दिखाना कि जैसे झूठे जल के समुद्र की तरङ्गें मिथ्या हैं 'उदाहरण अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

लोक बिलोकि पुरान बेद सुनि, समुझि बूझि गुरु ज्ञानी।
प्रीति प्रतीति राम-पद-पङ्कज, सकल सुमङ्गल खानी ॥ ४ ॥

संसार को देख कर, वेद-पुराणों को सुन कर और ज्ञानी गुरुओं से समझ बूझ कर (यह निश्चय कर चुका हूँ) रामचन्द्रजी के चरण-कमलों में प्रीति और विश्वास का होना सम्पूर्ण सुन्दर मंगलों की खान है ॥४॥

उपमान खान का गुण उपमेय रामचन्द्रजी के चरण-कमलों की प्रीति और विश्वास में सुमङ्गल रूपी रत्न उत्पन्न के लिये स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है। एक प्रीति विश्वास में समस्त श्रेष्ठ मङ्गलों के उत्कृष्ट गुण एकत्र करना 'तृतीय तुल्ययोगिता' का सन्देह-सङ्कर है। अनुप्रास भी है।

अजहुँ जानि जिय मानि हारि हिय, होइ पलक महँ नीको।
सुमिरु सनेह सहित सीतापति, मानि मतो तुलसी को ॥ ५ ॥

अब भी मन में समझ कर हृदय में हारी मान कर (प्रभु की शरण हो) तो क्षण भर में भला होगा। तुलसी की सलाह मान कर स्नेह के साथ सीतानाथ का स्मरण कर ॥५॥

हारी मानना—विषयानन्दों से थकावट मानना, अथवा अपने बल का भरोसा त्याग कर रामचन्द्रजी पर विश्वास करना। ज, ह, स और म अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

(१९५)

बलि जाउँ हौं राम गोसाँई। कीजै कृपा आपनी नाँई ॥१॥

हे स्वामिन् रामचन्द्रजी ! मैं आप की बलि जाता हूँ, अपनी कृपालुता के समान कृपा कीजिये ॥१॥

परमारथ सुरपुर साधन सब, स्वारथ सुखद भलाई ।
कलि सकोप लोपी सुचाल निज,-कठिन कुचाल चलाई ॥ २ ॥

मोक्ष और स्वर्ग प्राप्ति के सब साधन, सुखदाई स्वार्थ और भलाई (नेकी) को कलिकाल ने क्रोध से अच्छी चालों को लुप्त करके अपनी भीषण कुरीति चलाई है ॥२॥

जहँ जहँ चित चितवत हित तहँ नित, नव बिषाद अधिकाई ।
रुचि भावती भभरि भागहिं, समुहाहिँ अमित अनभाई ॥ ३ ॥

जहाँ जहाँ मन अपनी भलाई देखता है वहाँ नित्य नया विषाद बढ़ रहा है । रुचि को सुहानेवाली श्रेष्ठ बातें डर कर भागी जा रही हैं और न सुहानेवाली असंख्य बुराइयाँ सामने आती हैं ॥३॥

आधि मगन मन व्याधि विकल तन, बचन मलीन झुठाई ।
एतेहु पर तुम्ह सौं तुलसी की, सकल सनेह सगाई ॥ ४ ॥

मन चिन्ता में डूबा है, शरीर रोग से व्याकुल है और वचन झूठ बोलने से अपावन हो गया है । इतने पर भी तुलसी की समस्त स्नेह की नतैती आप ही से है ॥४॥

यहाँ नातेदारी भङ्ग करनेवाले प्रतिबन्धकों के विद्यमान रहते हुए भी स्नेह का नाता बना रहना 'तृतीय विभावना अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

(१९६)

काहे को फिरत मन करत जतन बहु, दुख न मिटै बिमुख रघुकुल बीर । कीजै जौं कोटि उपाइ त्रिबिध ताप न जाइ, कहेउ भुजा उठाइ मुनिवर कीर ॥ १ ॥

हे मन ! तू काहे को बहुत सा यत्न करता फिरता है, रघुकुल के वीर (रामचन्द्रजी) से प्रतिकूल होने पर दुःख न मिटेगा । यदि करोड़ों उपाय करेगा तो भी तीनों ताप न जायगा, इसको मुनिवर शुकदेवजी ने भुजा उठा कर कहा है ॥१॥

सहज टेव बिसारि तुहीं धौं देखै बिचारि, मिलै न मथत बारि घृत बिनु छीर । समुझि तजहिं भ्रम भजहि पद जुगम, सेवत सुगम गुन गहन गँभीर ॥ २ ॥

स्वाभाविक (विषयासक्ति की) आदत भुला कर तू ही विचार करके देख कि विना दूध के पानी मथने से घी न मिलेगा। ऐसा समझ कर भ्रम त्याग दे और युगल चरणों की सेवा कर जिनकी उपासना सहल और फल अथाह गहरा है ॥२॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि मन में विचार कर देख विषयों के सेवन से मोक्ष नहीं मिलती। इस बात को सीधे न कह कर विनोक्ति द्वारा घुमा कर कहना कि दूध के सिवाय पानी मथने से घी नहीं निकलता 'ललित अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

आगम निगम ग्रन्थ रिषि मुनि सुर सन्त, सबही को एक मत सुनु मतिधीर। तुलसीदास पियास मरै पसु बिनु प्रभु, जदपि रहै निकट सुरसरि- तीर ॥ ३ ॥

हे धीरबुद्धि! सुन, शास्त्र वेदादि ग्रन्थ, ऋषि, मुनि, देवता और सज्जन सब का एक यही सिद्धान्त है। तुलसीदासजी कहते हैं कि चाहे पशु गङ्गाजी के तट के समीप रहे, किन्तु विना मालिक के वह प्यास के मारे मरता है ॥३॥

युक्तियाँ शास्त्रों में सब भरी हैं पर विना स्वामी की कृपा वे निष्फल जाती हैं, जैसे प्यासा पशु गङ्गा-तट पर बँधा रहने से, मालिक के विना, प्यास से मरता है। दृष्टान्त और विनोक्ति की संसृष्टि है। अनुप्रास भी है।

(१९७)

नाहिंन चरन रति ताही तें सहौं बिपति, कहत सकल स्रुति मुनि मतिधीर। बसै जो ससि उछङ्ग स्वादित सुधा कुरङ्ग ताहि की निरखि भ्रम रबिकर नीर ॥ १ ॥

हरि चरणों में प्रीति नहीं है इसी से विपत्ति सहता हूँ, समस्त वेद और धीरबुद्धि मुनि यही कहते हैं। जो मृगा चन्द्रमा की गोदी में बैठा हुआ अमृत का स्वाद लेता है, क्या उसको सूर्य की किरणों से उत्पन्न झूठा जल देख कर भ्रम होगा? (कदापि नहीं) ॥१॥

वेद और मुनियों की बात का प्रमाण देना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है। ईश्वर प्रेमी को विषय की आशा नहीं सता सकती, इसको सीधे न कह कर घुमा कर हरिण के दृष्टान्त द्वारा कथन करना 'ललित और दृष्टान्त अलंकार' का सन्देहसङ्कर है। अन्त में वक्रोक्ति की संसृष्टि है।

सुनिय नाना पुरान मिटत नहीं अज्ञान, पढ़िय न समुझिय जिमि खग कीर। बझत बिनहिं पास सेमर सुमन आस, करत चरित तेइ फल बिनु हीर ॥ २ ॥

नाना पुराण सुनता हूँ; किन्तु अज्ञान नहीं मिटता जैसे सुग्गा पक्षी पढ़ता है पर समझता नहीं। सेमर के फूलों की आशा में विना बन्धन के फँसता है जिसका फल सार रहित है (धोखा खाने पर भी चेत नहीं) वही चरित फिर फिर करता है ॥२॥

ललित, उदाहरण, विनोक्ति और दृष्टान्त का सन्देहसङ्कर है।

कछु न साधन सिधि जानो न निगम बिधि, नहिँ जप तप बस मन न समीर। दासतुलसी भरोस परम करुना कोस, प्रभु हरि हैँ बिषम तव भव-भीर ॥ ३ ॥

न कुछ सिद्धियों का साधन जनता हूँ न वेदों की व्याख्या का ज्ञान है, न जप तप है और न मन रूपी पवन वश में है। तुलसीदासजी कहते हैं कि अत्यन्त करुणा के भण्डार प्रभु रामचन्द्रजी का भरोसा है वे तेरे भयङ्कर संसारी-भय को हरेंगे ॥३॥

(१९८)

मन पछितइहै अवसर बीते। दुर्लभ देह पाइ हरि-पद भजु, करम बचन अरु ही ते ॥ १ ॥

हे मन! अवसर बीतने पर पछतावेगा। दुर्लभ शरीर पा कर कर्म, वचन और मन से भगवान के चरणों का भजन कर ॥१॥

सहसबाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते। हम हम करि धन धाम सँवारेउ, अन्त चले उठि रीते ॥ २ ॥

सहस्रार्जुन और रावण आदि राजा काल बली से नहीं बचे। हम हम करके सम्पत्ति से घर सजाया; किन्तु अन्त में ख़ाली हाथ उठ कर चले गये ॥२॥

सुत बनितादि जानि स्वारथ रत, न करु नेह सबही ते। अन्तहु तोहि तजहिँगे पाँवर, तू न तजइ अबही ते ॥ ३ ॥

पुत्र और स्त्री आदि को अपने मतलब से तत्पर जान कर इन सब से स्नेह मत कर। रे नीच! अन्त को तुझे ये त्यागेंगे फिर तू अभी से क्यों नहीं त्याग देता ? ॥३॥

अब नाथहि अनुरागु जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते। बुझइ न काम अगिनि तुलसी कहुँ, बिषय-भोग बहु घी ते ॥४॥

अरे मूर्ख! अब भी सचेत होकर स्वामी से प्रीति कर और दुष्ट कामनाओं को मन से त्याग दे। तुलसीदासजी कहते हैं कि विषयभोग रूपी बहुत से घृत द्वारा कामाग्नि बुझने वाली नहीं है ॥४॥

कामनाओं पर अग्नि का आरोप करके विषयभोगों में घी का आरोपण इसलिये किया गया कि अग्नि में घी पड़ने से ज्वाला बढ़ती जाती है बुझती नहीं 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

(१९९)

काहे को फिरत मूढ़ मन धायो। तजि हरि-चरन-सरोज सुधा-रस, रवि-कर-जल लय लायो॥ १॥

अरे मूर्ख मन! तू भगवान के चरण-कमलों के प्रेम रूपी अमृत रस को छोड़ कर सूर्य के किरण रूपी जल (झूठे पानी) में लय लगा कर काहे को दौड़ता फिरता है? ॥१॥

हरि चरणों में कमल का आरोप, प्रेम में अमृतरस का आरोप और सूर्य्य की किरणों में जल का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

त्रिजग देव नर असुर अपर जग जोनि सकल भ्रमि आयो। गृह बनिता सुत बन्धु भये बहु, मातु पिता जिन्ह जायो॥ २॥

तीनों लोकों में देवता, मनुष्य, दैत्यों के अतिरिक्त संसार की दूसरी सारी योनियों में घूम आया हूँ। घर, स्त्री, पुत्र और भाई बहुत हुए तथा माता-पिता जिन्होंने उत्पन्न किया वे भी असंख्य मिले ॥२॥

जा तें निरय-निकाय निरन्तर, सो इन्ह तोहि सिखायो। तब हित होइ कटइ भव-बन्धन, सो मग तौ न बतायो॥ ३॥

जिससे अपार नरक हो वही इन्हों ने सदा तुझको सिखाया। संसार-बन्धन कट कर तेरी भलाई हो, वह रास्ता तो नहीं बतलाय ॥३॥

अजहुँ विषय कहँ जतन करत जद्यपि बहु बिधि डहँकायो। पावक-काम भोग घृत तें सठ, कैसे परत बुझायो॥ ४॥

अब भी विषय के लिये यत्न करता है यद्यपि बहुत तरह से ठगा गया है। अरे मूर्ख! काम रूपी अग्नि विषयभोग रूपी घी से बुझाने पर कैसे बुझ सकती है? ॥४॥

उपमानप्रमाण, रूपक और वक्रोक्ति की संसृष्टि है।

विषय हीन दुख मिलइ बिपति अति, सुख सपनेहुँ नहिं पायो। उभय प्रकार प्रेत पावक ज्यों, धन दुख प्रद स्रुति गायो॥ ५॥

विषय-भोग न मिलने पर दुःख और मिलने से बड़ी विपत्ति, उसमें सुख सपने में भी नहीं मिला। प्रेताग्नि की तरह दौलत (मिलने और न मिलने दोनों प्रकार से) वेद गाते हैं कि वह दुःख देनेवाली है ॥५॥

प्रेताग्नि दूर से देखने पर भय होता और समीप जाने पर अदृश्य हो जाने से उद्वेग शङ्का से कष्ट मिलता है, उसी तरह धन-भोग न मिलने से मानसिक व्यथा और मिलने पर चोर डाकुओं का भय नारकी कामों से परलोक नाश होता है 'उदाहरण अलंकार' है।

छिन छिन छीन होत जीवन दुरलभ तनु वृथा गँवायो।
तुलसिदास हरि भजहि आस तजि, काल-उरग जग खायो ॥६॥

क्षण क्षण जीवन कम होता जाता है, दुर्लभ शरीर को व्यर्थ ही खो रहा है। तुलसीदासजी कहते हैं कि विषयों की आशा छोड़ कर रामचन्द्रजी का भजन कर, देख-काल रूपी सर्प जगत को खाये जाता है ॥६॥

जिसकी आशा करता है वह कालग्रस्त है जो अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता वह दूसरों को कैसे बचावेगा? यह व्यञ्जना मूलक गूढ़ व्यङ्ग है।

(२००)

ताँबे सौं पीटि मनहुँ तनु पायो। नीच मीच जानत न सीस पर, ईस निपट बिसरायो ॥ १ ॥

ऐसा मालूम होता है मानों ताँबे से पीट कर शरीर पाया है। अरे नीच! नहीं जानता कि मृत्यु सिर पर नाचती है, तू ने ईश्वर को बिलकुल भुला दिया ॥१॥

शरीर का नाश न होनेवाला मान कर विषयों में लीन होना उत्प्रेक्षा का विषय है। कोई ताम्र से पिटी हुई देह नहीं पाता, यह वक्ता की कल्पना मात्र 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है।

अवनि रवनि धन धाम सुहृद सुत, को न इन्हहिं अपनायो।
काके भये गये सँग काके, सब सनेह छल छायो ॥ २ ॥

धरती, स्त्री, सम्पत्ति, घर, मित्र और पुत्र इनको किसने नहीं अपना बनाया? परन्तु ये किसके हुए और किसके साथ गये, इन सब की प्रीति छल से ढँकी है ॥२॥

न, ध, स, य और छ अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है।

जिन्ह भूपन्ह जग जीति बाँधि जम, अपनी बाँह बसायो।
तेऊ काल कलेऊ कीन्हे, तू गिनती कब आयो ॥ ३ ॥

जिन राजाओं ने जगत को जीत लिया और यमराज को बँधुआ बना कर अपनी शरण में बसाया। जब उनका भी काल ने कलेवा किया, तब तू कब (किस) गिनती में आया अर्थात् तेरी क्या हक़ीक़त है ॥३॥

जब ऐसे त्रिलोक-विजयी राजाओं को काल ने कलेवा बना डाला तब तू तो कोई चीज़ ही नहीं 'काव्यार्थापत्ति अलंकार' है।

देखु बिचारि सार का साँचो, कहा निगम निज गायो ।
भजहि न अजहुँ समुझि तुलसी तेहि, जेहि महेस मन लायो ॥४॥

विचार कर देख कि सच्चा तत्व क्या है और वेद ने किसको यथार्थ कहा है। तुलसी! अब भी समझ कर तू उनका भजन नहीं करता जिनमें शिवजी ने मन लगाया है ॥४॥

यहाँ स्पष्ट शब्दों में यह न कह कर कि रामचन्द्रजी का भजन कर, यों कहा कि जिनमें शिवजी मन लगाये हैं उन्हें जान कर अब भी भजे 'प्रथम पर्यायोक्ति अलंकार' है।

(२०१)

लाभ कहा मानुष तनु पाये। काय बचन मन सपनेहुँ कबहुँक, घटत न काज पराये ॥ १ ॥

मनुष्य शरीर पाने का कौन सा लाभ मिला? यदि देह, वचन और मन से सपने में भी पराये का काम नहीं किया ॥१॥

प्रत्यक्ष की कौन कहे स्वप्न में भी परोपकार नहीं बन पड़ा, आश्चर्य स्थायीभाव है।

जो सुख सुरपुर नरक गेह बन, आवत बिनहिं बोलाये।
तेहि सुख कहँ बहु जतन करत मन, समुझत नहिं समुझाये ॥२॥

जो विषय-सुख स्वर्ग, नरक, घर और वन में विना बुलाये ही आता है, उस सुख के लिये मन से बहुत यत्न करता है और समझाने से भी नहीं समझता ॥२॥

पर-दारा पर-द्रोह मोह बस, किये मूढ़ मनभाये। गरभबास दुख रासि जातना, तीब्र बिपति बिसराये ॥ ३ ॥

पराई स्त्री और पराया द्रोह, अरे मूर्ख! तू ने अज्ञान वश मनमाना किये। गर्भवास के दुःखों की राशि, दुर्दशा-पूर्ण न सहने योग्य विपत्तियों को भुला दिया? ॥३॥

भय निद्रा मैथुन अहार सब के समान जग जाये।
सुर-दुर्लभ तनु धरि न भजे हरि, मद अभिमान गँवाये ॥ ४ ॥

जगत में उत्पन्न सब जीवों को डर, नींद, स्त्री-प्रसङ्ग और भोजन बराबर होता है। देवताओं को दुर्लभ (मनुष्य) देह धर कर मस्ती और अहङ्कार दूर बहा कर तू ने भगवान का भजन नहीं किया ॥४॥

गई न निज पर बुद्धि सुद्धि होइ, रहे न राम लय लाये।
तुलसिदास बीते एहि अवसर, का पुनि के पछिताये ॥५ ॥

मेरी तेरी की बुद्धि नहीं गई और न शुद्ध होकर रामचन्द्रजी में प्रेम लगाया। तुलसीदासजी कहते हैं कि समय बीत जाने पर फिर पीछे के पछताने से क्या होगा? (कुछ नहीं हाथ ही मलना रह जायगा) ॥५॥

(२०२)

काज कहा नर तनु धरि सार्‌यो। पर उपकार सार स्रुति को सो, धोखेहु मैं न बिचार्‌यो ॥ १ ॥

मनुष्य का शरीर धारण करके कौन सा काम पूरा किया? वेदों का सिद्धान्त परोपकार है, वह धोखे में भी नहीं समझा ॥१॥

द्वैतमूल भय सूल सोक फल, भव-तरु टरइ न टार्‌यो। राम-भजन तीछन कुठार लेइ, सो नहिँ काटि निवार्‌यो ॥ २ ॥

अज्ञान की जड़ रूपी संसार वृक्ष भय, शूल और शोक रूपी फल फलनेवाला जो हटाने से नहीं हटता, उसको रामभजन रूपी चोखा कुल्हाड़ा लेकर काट कर नहीं हटाया ॥२॥

अज्ञान में मूल का आरोप, संसार पर बड़े भारी वृक्ष का, भय शूल शोक में फल का आरोप करके रामभजन में कुल्हाड़े का आरोपण इसलिये किया कि वह वृक्ष को जड़ से काट डालने में समर्थ 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

संसय-सिन्धु नाम बोहित भजि, निज आतमा न तार्‌यो। जनम अनेक बिबेक-हीन बहु,-जोनि भ्रमत नहिँ हार्‌यो ॥ ३ ॥

राम नाम रूपी जहाज़ पर चढ़ कर संसार रूपी समुद्र से अपनी आत्मा को पार नहीं किया। ज्ञान से रहित अनेक जन्म पर्य्यन्त बहुत सी योनियों में घूमते हुए थका नहीं ॥३॥

संसार में समुद्र का आरोप और राम नाम में जहाज का आरोपण करना परम्परित के साथ 'समअभेदरूपक अलंकार' है।

देखि आन की सहज सम्पदा, द्वेष अनल मन जार्‌यो। सम दम दया दीनपालन सीतल हिय हरि न सँभार्‌यो ॥ ४ ॥

दूसरे की सहज सम्पत्ति देख कर ईर्ष्याग्नि में मन को जलाया, किन्तु शान्त हृदय से भगवान का स्मरण, सौम्यता, इन्द्रियदमन, दया और दीनों की रक्षा नहीं की ॥४॥

प्रभु गुरु पिता सखा रघुपति मैं-, मन क्रम बचन बिसार्‌यो। तुलसिदास एहि त्रास सरन राखिहि जेहि गीध उधार्‌यो ॥ ५ ॥

स्वामी, गुरु, पिता और मित्र रघुनाथजी को मैं ने मन, कर्म और वचन से भुला दिया। तुलसीदास की वेही इस डर से रक्षा करके शरण में रक्खेंगे जिन्हों ने गिद्ध का उद्धार किया है ॥५॥

एक रघुनाथजी में प्रभु, गुरु, पिता और सखा के उत्कृष्ट गुणों की समता में 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है। जिन्हों ने गीध का उद्धार किया है वे ही इस डर से तुलसीदास की रक्षा करके अपनावेंगे 'आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार' है।

(२०३)

श्रीहरि गुरु पद-कमल भजहि मन तजि अभिमान। जेहि सेवत पाइय हरि, सुख-निधान भगवान ॥ १ ॥

हे मन ! अभिमान त्याग कर लक्ष्मी नारायण रूप गुरुजी के चरण-कमलों की सेवा कर। जिनकी सेवा करने से सुख के स्थान भगवान मिलते हैं ॥१॥

परिवा प्रथम प्रेम बिनु, राम मिलन अति दूर। जद्यपि निकट हृदय निज, रहे सकल भरपूर ॥ २ ॥

(यहाँ फाल्गुण शुक्ल पक्ष का वर्णन है) परिवा तिथि-प्रथम विना प्रेम के रामचन्द्रजी का मिलना अत्यन्त दूर है। यद्यपि वे समीप हैं अपने हृदय में सब तरह से परिपूर्ण हैं ॥२॥

अपने हृदय में वर्तमान रहते हुए भी मिलना कठिन है, इस विरोधी वर्णन में विरोधाभास अलंकार है। प्रेम के विना रामचन्द्रजी के मिलने का अभाव कथन 'प्रथम विनोक्ति' है।

दुइज द्वैत-मत छाड़ि चरहि महिमंडल धीर। बिगत मोह माया मद, हृदय सदा रघुबीर ॥ ३ ॥

द्वितीया को भेदभाव का सिद्धान्त छोड़ कर सन्तोष के साथ पृथ्वीतल पर विचरण कर। अज्ञान, छल और गर्व से रहित हृदय में सदा रघुनाथजी को टिकावे ॥३॥

तीज त्रिगुन पर परम पुरुष श्रीरमन मुकुन्द। गुन सुभाव त्यागे बिना, दुरलभ परमानन्द ॥ ४ ॥

तृतीया— तीनों गुणों से परे परम-पुरुष लक्ष्मीकान्त मुकुन्द भगवान के चरणों के परमानन्द विना और गुणों का स्वभाव त्यागे विना मिलना दुर्लभ है ॥४॥

चौथ चारि परिहरहु, बुद्धि मन चित अहँकार। बिमल बिचार परमपद, निज सुख सहज उदार ॥ ५ ॥

चतुर्थी—मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार चारों की आज्ञाकारिता त्याग दे तो निर्मल विचार, मोक्ष और स्वाभाविक श्रेष्ठ आत्मानन्द प्राप्त हो ॥५॥

पाँचइ पाँच परस रस, सब्द गन्ध अरु रूप । इन्ह कर कहा न कीजिये, बहुरि परब भव-कूप ॥ ६ ॥

पञ्चमी—स्पर्श, रस, शब्द, गन्ध और रूप इन पाँचों विषयों का कहना मत करो, नहीं तो फिर संसार रूपी कुएँ में गिरोगे ॥६॥

छठि षड़बरग करिय जय, जनकसुता-पति लागि । रघुपति कृपा बारि बिनु, नहिँ बुझाइ लोभागि ॥ ७ ॥

षष्ठी—षड्वर्ग (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर) को जानकीनाथ के सम्बन्ध से जीतो । बिना रघुनाथजी की कृपा रूपी जल के लोभ रूपी अग्नि नहीं बुझती ॥७॥

रघुनाथजी की कृपा पर जल का आरोप, और लोभ पर अग्नि का आरोपण रूपक अलंकार है । बिना कृपा रूपी जल के लोभाग्नि के बुझने का अभाव वर्णन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' दोनों की संसृष्टि है ।

सातइँ सप्तधातु निरमित तनु, करिय बिचार । तेहि तनु केर एक फल, कीजिय पर उपकार ॥ ८ ॥

सप्तमी—सातों धातु (रस, रक्त, माँस, मेदा, अस्थि, मज्जा, वीर्य्य) से बना शरीर विचार कर उस देह का एक ही फल है कि परोपकार कीजिये ॥८॥

आठइँ आठ प्रकृति पर, निरबिकार श्रीराम । केहि प्रकार पाइय हरि, हृदय बसहिँ बहु काम ॥ ९ ॥

अष्टमी—आठों प्रकृति (भूमि, जल, अग्नि, पवन, आकाश, मन, बुद्धि, अहङ्कार) से परे विकार रहित श्रीरामचन्द्रजी हैं । वे भगवान किस प्रकार से मिलेंगे जब कि हृदय में बहुत से काम बसते हैं ? ॥९॥

भगवान निष्काम-हृदय में निवास करते हैं, यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

नवमी नवद्वार-पुर, बसि न आपु भल कीन । ते नर जोनि अनेक भ्रमत दारुन दुख दीन ॥ १० ॥

नवमी—नव दरवाज़े के नगर में रह कर अपनी भलाई न की, वे मनुष्य भीषण दुःख से दुखी होकर नाना योनियों में भटकते फिरते हैं ॥१०॥

शरीर में नगर का आरोप और आँख, कान, नाक के दो दो छिद्र तथा मुख, गूदा, लिङ्ग के एक एक छेदों में नौ दरवाज़े का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है ।

दसइँ दसहु कर सञ्जम, जौं न करिय जिय जानि । साधन वृथा होइ सब, मिलहिँ न सारँग- पानि ॥ ११ ॥

दशमी—दसों इन्द्रियों को जी में जान कर यदि इनके विषयों से संयम न करोगे तो सब साधन व्यर्थ होगा और शार्ङ्गपाणि (विष्णु भगवान) न मिलेंगे ॥११॥

एकादसी एक मन, बस कैसहुँ करि जाइ । सो व्रत कर फल पावइ, आवागमन नसाइ ॥ १२ ॥

एकादशी—एक मन किसी तरह वश में किया जाय तो वह व्रत का फल पावे और आवागमन (जन्म-मृत्यु) नष्ट हो जाता है ॥१२॥

द्वादसि दान देहु अस, अभय होइ त्रय लोक। परहित-निरत सुपारन बहुरि न ब्यापइ सोक ॥ १३ ॥

द्वादशी—ऐसा दान देओ जिससे तीनों लोकों में निर्भय हो जाओ और परोपकार में तत्पर होना सुन्दर पारण है इससे फिर शोक न व्यापेगा ॥१३॥

तेरसि तीनि अवस्था, तजहु भजहु भगवन्त । मन क्रम बचन अगोचर, ब्यापक ब्याप्य अनन्त ॥ १४ ॥

त्रयोदशी—तीनों अवस्था (जागृत, स्वप्न , सुषुप्ति) त्याग कर भगवान को भजो जो मन, कर्म और वचन से अप्राप्य, सर्वव्यापी, व्यापनेवाले ब्रह्म हैं ॥१४॥

चौदसि चौदह भुवन अचर चर रूप गोपाल । भेद गये बिनु रघुपति अति न हरहिँ जग-जाल ॥ १५ ॥

चतुर्दशी—चौदहों लोक जड़ चेतन रूप भगवान हृषीकेश हैं । बिना अतिशय (सर्वथा) भेदभाव दूर हुए रघुनाथजी संसारी जाल नहीं हरते हैं ॥१५॥

एक भगवान को चराचर रूप कहना 'तृतीय विशेष अलंकार' है । बिना भेद गये जग-जाल हरने का अभाव वर्णन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है ।

पूनो प्रेम-भगति-रस हरि रस जानहिँ दास । सम सीतल गत-मान ज्ञान-रत बिषय-उदास ॥ १६ ॥

पूर्णिमा—प्रेमलक्षणा भक्ति का आनन्द और भगवत्प्रेम को दास जानते हैं, वे शान्त, शीतल, निरभिमान, ज्ञान में तत्पर और विषयों से विरक्त रहते हैं ॥१६॥

त्रिविध सूल होली जारिय खेलिय अस फागु । जौं जिय चहसि परम सुख, तौ एहि मारग लागु ॥ १७ ॥

तीनों प्रकार के तापों को होली जलाइये ऐसा फाग खेलो, यदि जी को परम आनन्द चाहते हो तो इसी रास्ते में लगो ॥१७॥

स्रुति पुरान बुध सम्मत, चाँचरि चरित मुरारि । करि बिचार भव तरिय, परिय न कबहुँ जमधारि ॥ १८ ॥

वेद, पुराण और विद्वानों का मत है कि भगवान का चरित्र चञ्चरी राग (जिसके अन्तर्गत होली फाग, धमार, लेद आदि माने जाते हैं) । विचार कर संसार से पार होना चाहिये, इससे कभी यमदूतों के वश में न पड़ोगे ॥१८॥

संसय समन दमन दुख, सुखनिधान हरि एक । साधु कृपा विनु मिलहिं नहिं, करिय उपाय अनेक ॥ १९ ॥

सन्देह के नाशक, दुःख को दबानेवाले, सुख के स्थान भगवान एक ही हैं । विना सन्तों की कृपा वे नहीं मिलते चाहे अनेक प्रयत्न करते रहो ॥१९॥

प्रथम विनोक्ति और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

भव-सागर कहँ नाव सुद्ध सन्तन्ह के चरन । तुलसीदास प्रयास विनु, मिलहिं राम दुख हरन ॥ २० ॥

संसार-समुद्र से पार करनेवाले सन्तों के पवित्र चरण नौका रूपी हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि विना परिश्रम, दुःख के हरनेवाले रामचन्द्रजी मिलते हैं ॥२०॥

संसार पर समुद्र का आरोप करके सन्तों के चरणों में जहाज का आरोपण इसलिये किया गया कि उस पर चढ़ कर लोग सागर के पार जाते हैं । यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है ।

(२०४)

जौं मन लागइ राम-चरन अस । देह गेह सुत बित कलत्र महँ, मगन होत बिनु जतन किये जस ॥ १ ॥

यदि रामचन्द्रजी के चरणों में मन इस तरह से लगे जैसे विना यत्न किये शरीर, घर, पुत्र, धन और स्त्री के प्रेम में मग्न होता है ॥१॥

द्वन्द-रहित गत-मान ज्ञान-रत, विषय-विरत खटाइ नाना कस। सुखनिधान सुजान कोसलपति, होइ प्रसन्न कहु क्यौं न होहिं बस ॥ २ ॥

तो सांसारिक झगड़ों से रहित, निरभिमान, ज्ञान में तत्पर और विषयों से विरक्त होकर नाना व्यक्तियों में टिकाऊ हो जाय अर्थात् शान्त, निरपेक्ष ज्ञानी, वैराग्यवान, तपस्वी, योगी तथा सिद्ध मानने योग्य हो जायगा । फिर कहो—सुख के स्थान सुजान कोशलनाथ (रामचन्द्रजी) प्रसन्न होकर उसके वश में क्यों न होंगे ? (अवश्य प्रसन्न होकर वशीभूत हो जाँयगे) ॥२॥

'क्यों न प्रसन्न होंगे' इस वाक्य में काकु से भिन्न अर्थ प्रगट होना कि अवश्य वश में होकर प्रसन्न होंगे 'वक्रोक्ति अलंकार' है । पं० रामेश्वरभट्ट ने इस पद का अर्थ इस तरह किया है—"तो मनुष्य द्वन्दभाव (अर्थात् गरमी, सरदी, दुख, सुख) रहित हो जाता है, उसका अभिमान जाता रहता है और उसकी प्रीति ज्ञान में हो जाती है और वह (संसार के) विषयों से ऐसे अलग हो जाता है कि जैसे काँस के पात्रों में धरी अनेक खट्टी वस्तुओं से (मन फिर जाता है) । फिर सुख के स्थान, सुन्दर चतुर ऐसें कोशलपति (रामचन्द्रजी) कहो क्यों नहीं प्रसन्न होकर वश में हो जाँयगे" । यह अर्थ प्रसङ्ग में मिलता नहीं और न मूल पद्य का ऐसा तात्पर्य ही है । कस का काँसाधातु और खटाइ का खटाई अर्थ करना भ्रान्तिमूलक है । 'खटाइ' शब्द देश भाषा का है, इसके पर्यायी शब्द—खटनेवाला, टिकनेवाला, खटाऊ, टिकाऊ, पायदार इत्यादि हैं । 'कस' शब्द फारसी भाषा का है, इसके पर्यायी शब्द व्यक्ति, मनुष्य, साथी और मित्र आदि हैं ।

सर्व भूत हित निर्व्यलीक चित, भक्ति प्रेम दृढ़ नेम एकरस। तुलसिदास यह होइ तबहिं जब, द्रवइ ईस जेहि हते सीसदस ॥३॥

वे सब जीवों के हितकारी और कपट रहित चित्त से प्रेमलक्षणा-भक्ति के नियम में पक्के समान (कभी बदलनेवाले नहीं) होते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि यह तभी होता है जब दशानन को मारनेवाले ईश्वर (रामचन्द्रजी) जिस पर दया करते हैं ॥३॥

यह गुन साधन तें नहिं होई । तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई (रामचरितमानस) ।

(२०५)

जौं मन भजेउ चहइ हरि सुरतरु । तौ तजि बिषय बिकार सार भजु, अजहूँ जो मैं कहउँ सोइ करु ॥ १ ॥

हे मन ! यदि तू कल्पवृक्ष रूपी भगवान को भजना चाहता है तो विषय के विकारों को त्याग कर अब भी जो तत्व सेवन के लिये मैं कहता हूँ वही कर ॥१॥

सम सन्तोष विचार बिमल अति, सतसङ्गति चारिहु दृढ़ करि धरु ।
काम क्रोध अरु लोभ मोह मद, राग द्वेष निसेष करि परिहरु ॥२॥

समता, सन्तोष, अत्यन्त निर्मल विचार और सत्सङ्गति चारों को दृढ़ता से पकड़। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, ममता और द्रोह को शेष रहित करके त्याग दे ॥२॥

स्रवन कथा मुख नाम हृदय-हरि, सिर प्रनाम सेवा कर अनुसरु ।
नयनन्हि निरखि कृपा-समुद्र हरि, अग जग रूप भूप सीतावरु ॥३॥

कानों से हरिकथा, मुख से नाम, हृदय में रूप और सिर से प्रणाम कर सेवा करे। कृपा के समुद्र सीतानाथ राजा रामचन्द्रजी के जड़ चेतन मय रूप को आँखों से देखे ॥३॥

इहइ भगति बैराग ज्ञान यह, हरितोषन यह सुभ व्रत आचरु ।
तुलसिदास सिव मत मारग यह, चलत सदा सपनेहुँ नाहिन डरु ॥ ४ ॥

यही भक्ति और वैराग्य है, यही ज्ञान है, यही भगवान को प्रसन्न करने का श्रेष्ठ व्रत है इसी को कर। तुलसीदासजी कहते हैं कि यह शिवजी के सिद्धान्त का मार्ग है, इसमें सदा चलने से सपने में भी डर नहीं है ॥४॥

(२०६)

नाहिन और सरन लायक कोउ, श्रीरघुपति सम बिपति निवारन ।
काको सहज सुभाव दास बस, काहि प्रनत पर प्रीति अकारन ॥१॥

शरणागतों की विपत्ति छुड़ानेवाला श्रीरघुनाथजी के समान दूसरा कोई समर्थ नहीं है। सेवकों के वश में रहने का किस का सहज स्वभाव है और अकारण दीनों पर किसकी प्रीति है ? ॥१॥

जन गुन अलप गनत सुमेरु करि, अवगुन कोटि समूह बिसारन ।
परम कृपाल भगत-चिन्तामनि, बिरद पुनीत पतित जन तारन ॥२॥

दासों के थोड़े गुण को सुमेरु करके बड़ा मानते हैं और करोड़ों अवगुणों की राशि को भुलानेवाले हैं। अत्यन्त कृपालु, भक्तों के चिन्तामणि और पापीजनों को पवित्र कर उद्धार करने में जिनकी नामवरी है ॥२॥

सुमिरत सुलभ दास दुख सुनि हरि, चलत तुरत पटपीत सँभार न। साखि पुरान निगम आगम सब, जानत द्रुपदसुता अरु बारन ॥ ३ ॥

जिनका स्मरण करना सहल है, भगवान दासों का दुःख सुन कर पीताम्बर को सँभालना भूल कर चल पड़ते हैं। इसको साक्षी पुराण, वेद, शास्त्र हैं, द्रौपदी और हाथी का हाल सब जानते हैं ॥३॥

शब्दप्रमाण, उपमानप्रमाण और अनुप्रास की संसृष्टि है।

जाको जस गावत कबि कोबिद, जिनके लोभ मोह मद मार न। तुलसिदास तजि आस सकल भजु, कोसलपति मुनिबधू उधारन ॥ ४ ॥

जिनका यश कवि विद्वान गाते हैं जिनके हृदय में लोभ, मोह, मद और काम नहीं है। तुलसीदासजी कहते हैं कि सारी आशाओं को त्याग कर मुनिपत्नी के उधारनेवाले कोशलनाथ (रामचन्द्रजी) को भज ॥४॥

(२०७)

भजिबे लायक सुखदायक रघुनायक सरिस सरनप्रद नाहिँन। आँनदभवन दवन दुख दोषन्हि, रमारमन गुन गनत सिराहिँ न ॥१॥

रघुनाथजी के समान शरणार्थियों को सुख देनेवाला सेवा करने योग्य कोई नहीं है। आनन्द के मन्दिर, दुःख और दोषों के दमन करनेवाले लक्ष्मीकान्त के गुण कहने से नहीं समाप्त हो सकते ॥१॥

आरत अधम कुजाति कुटिल खल, पतित सभीत कहूँ जे समाहिँ न। सुमिरत नाम बिबसहू बारक, पावत सो पद जहँ सुर जाहिँ न ॥ २ ॥

दुखी, पापी, कुजाति, छली, दुष्ट, अधर्मी और भयभीत जो कहीं नहीं समाते अर्थात् कहीं भी स्थान पाने योग्य नहीं हैं। वे पराधीनता में भी एक बार नाम स्मरण करने से उस पद को प्राप्त होते हैं जहाँ देवता नहीं जाते (तरसते रहते) हैं ॥२॥

जेहि पद-कमल लुब्ध मुनि मधुकर, बिरति जे परम सुगतिहु लोभाहिँ न । तुलसिदास सठ तेहि न भजसि कस, कारुनीक जो अनाथहि दाहिन ॥ ३ ॥

जिनके चरण-कमलों में मुनि रूपी भ्रमर लुभाये रहते हैं जो परम वैराग्यवान मोक्ष के लिये भी नहीं लुभाते । तुलसीदासजी कहते हैं कि—अरे मूर्ख ! जो अनाथों के दाहिनदयाल हैं तू उनको क्यों नहीं भजता ? ॥३॥

भगवान के चरण-कमल और मुनि मधुकर में पूर्णरूप से एकरूपता 'समअभेदरूपक अलंकार' है ।

(२०८)

राग-कल्याण ।

नाथ सोँ कवन बिनती कहि सुनावौँ । त्रिबिध अनगनित अवलोकि अघ आपने, सरन सनमुख होत सकुचि सिर नावौँ ॥१॥

हे नाथ ! मैं आप से कौन सी विनती कह कर सुनाऊँ ? अपने (मन, कर्म, वचन) तीनों प्रकार के अनगिनती पापों को देख कर सामने शरण होते हुए सकुच कर सिर नीचे कर लेता हूँ ॥१॥

बिरचि हरिभगत को बेष बर टाटिका, कपट दल हरित पल्लवनि छावौँ । नाम लागि लाइ लासा ललित बचन कहि, ब्याध ज्यौँ बिषय बिहँगनि बझावौँ ॥ २ ॥

हरिभक्तों का श्रेष्ठ वेष रूपी टट्टी बना कर उसको कपट रूपी हरे पत्तों से छाता (ढँकता) हूँ । नाम रूपी लग्गी में सुन्दर वचन कह कर उसे लासा रूप लगाता हूँ और बहेलिया की तरह विषय रूपी पक्षियों को फँसाता हूँ ॥२॥

यहाँ बहेलिये का पक्षी फँसाना और अपने विषय बटोरने में साङ्ग रूपक वर्णन है । जैसे बहेलिया टट्टी बना कर उस पर हरे हरे पत्तों को लगा कर उसी के ओट में धीरे धीरे पक्षियों के पास जाकर लासा लगी लग्गी से उन्हें बझाता है उसी तरह मैं विषयों को फँसाता हूँ । रूपक, उदाहरण और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

कुटिल सतकोटि मम रोम पर वारियहि, साधु गनती मैँ पहिलेहि गनावौँ । परम बर्बर खर्ब-गर्ब-पर्बत चढ़ो, अज्ञ सरबज्ञ-जन-मनि जनावौँ ॥ ३ ॥

असंख्य छली मेरे रोम पर न्योछावर हैं; किन्तु अपनी गिनती साधुओं में पहले ही कराता हूँ। बड़ा बकवादी, नीच, अहङ्कार के पर्वत पर चढ़ा हुआ मूर्ख हूँ, पर सर्वज्ञजनों का शिरोमणि अपने को प्रसिद्ध करता हूँ ॥३॥

साँच किधौँ झूठ मोहि कहत कोउ कोउ राम, रावरो हौँहूँ तुम्हरो कहावौँ। बिरद की लाज करि दासतुलसिहि देव, लेहु अपनाइ जानि देहु बावौँ ॥ ४ ॥

सच न जाने झूठ कोई कोई मुझको आप का दास कहते हैं, हे रामचन्द्रजी! मैं भी आप का सेवक कहाता हूँ। देव! अपनी नामवरी की लाज करके तुलसीदास को अपना लीजिये, पीछा मत दीजिये ॥४॥

(२०९)

नाहिंनै नाथ अवलम्ब मोहि आन की। करम मन वचन पन सत्य करुनानिधे, एक गति राम भवदीय पदत्रान की ॥ १ ॥

हे नाथ! मुझे दूसरे का सहारा नहीं है, करुणानिधे! कर्म, मन और वचन से एक आप ही के जूतियों के आधार की सच्ची प्रतिज्ञा है ॥१॥

कोह मद मोह ममतायतन जानि मन, बात नहिँ जात कहि ज्ञान विज्ञान की। काम सङ्कल्प उर निरखि बहु बासनहिँ, आसनहिँ एकहू आँक निरवान की ॥ २ ॥

क्रोध, मद, अज्ञान और ममता का स्थान मन को जान कर ज्ञान विज्ञान की बात नहीं कही जाती है। हृदय में बहुत से मनोरथों के विचार की इच्छाओं को देख कर मोक्ष की आशा का एक भी दृढ़ निश्चय नहीं है ॥२॥

वेद बोधित करम धरम बिनु अगम अति, जदपि जिय लालसा अमरपुर जान की। सिद्ध सुर मनुज दनुजादि सेवत कठिन, द्रवहिँ हठजोग दिय भोग बलि प्रान की ॥ ३ ॥

यद्यपि जी में लालसा देवलोक जाने की है, पर वह वेद के बतलाये हुए कर्म, धर्म के बिना अत्यन्त दुर्गम है। सिद्ध, देवता, मनुष्य और दैत्यादिकों की सेवा करना कठिन है, वे तब दया करते हैं जब हठयोग (बलात्कार-पूर्वक योग की साधना करना) से प्राणों का नैवेद्य देकर उनकी पूजा की जाय अर्थात् प्राणगँवाने पर दया हुई तो वह किस काम की? ॥३॥

भगति दुरलभ परम सम्भु सुक मुनि मधुप, प्यास पद-कञ्ज मकरन्द मधु पान की। पतितपावन सुनत नाम बिस्राम कृत, भ्रमत पुनि समुझि चित ग्रन्थि अभिमान की ॥ ४ ॥

भक्ति अत्यन्त दुर्लभ है, शिवजी और शुकदेव मुनि रूपी भ्रमर चरण रूपी कमल के रस (प्रेम) रूपी अमृत पान के प्यासे रहते हैं। विश्राम सम्पादित करनेवाला पतित-पावन नाम सुनते हुए समझ कर फिर चित्त में अभिमान की गाँठ के कारण (अन्य साधनों की ओर) भ्रमता फिरता हूँ ॥४॥

उपमेय उपमान में पूर्णरूप से एकरूपता करना 'समअभेद रूपक अलंकार' है।

नरक अधिकार मम घोर संसार तम,-कूप कहि भूप मोहि सक्ति आपान की। दासतुलसी सोउ त्रास नहिं गनत मन, समुझि गुह गीध गज ज्ञाति हनुमान की ॥ ५ ॥

हे राजन्! मैं नरक का अधिकारी हूँ मुझे अपनी शक्ति (असत्कर्मों) से निश्चय है (आप राजा हैं न्याय से मुझे) भीषण संसार रूपी अन्धकूप में गिराने को कहेंगे। गुहा, गिद्ध, हाथी और हनूमान की जाति समझ कर तुलसीदास मन में वह डर भी नहीं गिनता है ॥५॥

भय का कारण विद्यमान रहते हुए भी भयभीत न होना 'चतुर्थ विभावना अलंकार' है। गुहा, गिद्धादि की जाति समझ कर मुझे भय नहीं है, जब ऐसे नीचों को आपने अपनाया तो पतित तुलसी को भी अवश्य अपनाइयेगा। यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२१०)

और कहँ ठौर रघुबंस-मनि मेरे। पतितपावन प्रनतपाल असरन सरन, बाँकुरे बिरद बिरदैत केहि केरे ॥ १ ॥

हे रघुवंशमणि! मेरे लिये और कहाँ ठिकाना है? पतितों को पवित्र करना, दीनों की रक्षा करना और असहाय को शरण में रखने की बाँकी नामवरी की सुख्याति किसकी है? (आप के सिवा ऐसा दूसरा कोई नहीं है) ॥१॥

समुझि जिय दोष अतिरोष करि राम जेहि, करत नहिं कान बिनती बदन फेरे। तदपि हौं निडर होइ कहउँ करुनासिन्धु, क्यों बराहि जात सुनि बात बिनु हेरे ॥ २ ॥

हे रामचन्द्रजी ! मेरा दोष मन में समझ कर जिससे आप अत्यन्त क्रोध कर के मुँह फेरे हैं और मेरी विनती पर कान नहीं करते हैं । हे दयासिन्धु ! तो भी मैं निडर होकर कहता हूँ, मेरी प्रार्थना सुन कर बिना निगाह किये आप से कैसे बराया जायगा ॥२॥

यहाँ लक्षणामूलक गूढ़ व्यङ्ग है कि आप दयासगर दीनदयाल हैं, दीन की पुकार सुन कर बिना दृष्टि फेरे आप से न रहा जायगा ।

मुख्य रुचि होत बसबे को पुर रावरे, राम तेहि रुचिहि कामादि गन घेरे । अगम अपबर्ग अरु स्वर्ग सुकृतैक फल, नाम बल क्यौं बसउँ जमनगर नेरे ॥ ३ ॥

हे रामचन्द्रजी ! मुख्य अभिलाषा आप के पुर (अयोध्या) में बसने की होती है, उस रुचि को काम आदि की मण्डली घेरे है । फिर मोक्ष और स्वर्ग दुर्गम है जो एक पुण्य के ही फल से मिलता है; किन्तु नाम के बल से यमपुरी के समीप कैसे बसूँगा ? ॥३॥

आप के पुर, अपवर्ग, स्वर्ग में स्थान नहीं है और यमपुरी में भी टिकने का ठिकाना नहीं।

कतहुँ नाहिं ठाउँ कहँ जाउँ कोसलनाथ, दीन बित-हीन हौं बिकल बिनु डेरे । दासतुलसिंहि बास देहु अब करि कृपा, बसत गज गीध ब्याधादि जेहि खेरे ॥ ४ ॥

हे कोशलनाथ ! कहीं नहीं जगह है कहाँ जाऊँ, मैं ग़रीब धनहीन बिना निवासस्थान के व्याकुल हूँ । अब कृपा करके तुलसीदास को जिस गाँव में हाथी, गिद्ध, व्याधा आदि रहते हैं उसमें बसेरा दीजिये ॥४॥

(२११)

कबहुँ रघुबंस-मनि सो कृपा करहुगे । जेहि कृपा ब्याध गज बिप्र खल तरु तरे, तिन्हहिं सम मानि मोहि नाथ उद्धरहुगे ॥१॥

हे स्वामिन् रघुवंशमणि ! कभी वह कृपा कीजियेगा, जिस अनुग्रह से व्याधा, हाथी, दुष्ट ब्राह्मण (अजामिल) और वृक्ष (यमलार्जुन) तरे हैं उनके समान मुझे मान कर उद्धार कीजियेगा ॥१॥

जोनि बहु जनमि किय करम खलु त्रिबिध बिधि, अधम आचरन कछु हृदय नहिं धरहुगे । दीन हित अजित सरबज्ञ समरथ प्रनत,-पाल चित मृदुल निज गुनन्हि अनुसरहुगे ॥ २ ॥

बहुत सी योनियों में जन्म लेकर मैं ने तीनों प्रकार के कर्म और अधम आचरण किये, उनको कुछ हृदय में न धरियेगा। आप दीन हितकारी, अजेय, सर्वज्ञ, समर्थ, शरणागत पालक और कोमल चित्त हैं, अपने गुणों के अनुसार कीजियेगा ॥२॥

मोह मद मान कामादि खलमंडली, सकुल निर्मूल करि दुसह दुख हरहुगे। जोग जप ज्ञान बिज्ञान तेँ अधिक अति,-अमल दृढ़ भक्ति दै परम सुख भरहुगे ॥ ३ ॥

अज्ञान, मद, अभिमान और काम आदि खलों की मण्डली कुल सहित नाश करके दुस्सह दुःख हरियेगा। योग, जप, ज्ञान और विज्ञान से बढ़ कर अत्यन्त निर्मल अपनी अटल भक्ति देकर परमानन्द से परिपूर्ण कीजियेगा ॥३॥

मन्द जन मौलि मानि सकल साधन हीन, कुटिल मन मलिन जिय जानि जौं डरहुगे। दासतुलसी बेद बिदित बिरदावली, बिमल जस नाथ केहि भाँति बिस्तरहुगे ॥ ४ ॥

मैं नीचजनों का शिरोमणि समस्त शुभ साधनों से रहित कपटी और मैले मन वाला हूँ, यदि यह समझ कर जी में डरियेगा। तुलसीदासजी कहते हैं कि—हे नाथ ! तब वेद में विख्यात नामवरी और निर्मल यश किस तरह संसार में फैलाइयेगा ॥४॥

(२१२)

राग-केदारा ।

रघुपति बिपति दवन। परम कृपाल प्रनत प्रतिपालक, पतित पवन ॥ १ ॥

रघुनाथजी विपत्ति के नसानेवाले हैं अत्यन्त कृपालु, दीनों के रक्षक और पतितों को पवित्र करनेवाले हैं ॥१॥

कूर कुटिल कुल हीन दीन अति, मलिन जवन। सुमिरत नाम राम पठये सब, अपनें भवन ॥ २ ॥

जो निर्दय, दुष्ट, अकुलीन, दुखी और अत्यन्त पापी थे, नाम स्मरण करते ही रामचन्द्रजी ने सब को अपने धाम (वैकुण्ठ) भेजा ॥२॥

'जवन' शब्द यमन-म्लेच्छ का भी बोधक है।

गज पिङ्गला अजामिल से खल, गनइ कवन । तुलसिदास प्रभु केहि न दीन्ह गति, सीय-रवन ॥ ३ ॥

हाथी, पिङ्गला वेश्या और अजामिल सरीखे दुष्टों की गिनती कौन कर सकता है? तुलसीदासजी कहते हैं कि सीतारमण प्रभु रामचन्द्रजी ने किसे मोक्ष नहीं दी ॥३॥

काकु से भिन्नअर्थ प्रगट होना कि सभी को गति दी 'वक्रोक्ति अलंकार' है ।

(२१३)

हरि सम आपदा हरन । नहिं कोउ सहज कृपाल दुसह दुख सागर तरन ॥ १ ॥

भगवान के समान विपत्ति का हरनेवाला और असहनीय दुःखसागर से पार करनेवाला स्वाभाविक कृपालु कोई नहीं है ॥१॥

गज निज बल अवलोकि कमल गहि, गयउ सरन । दीन बचन सुनि चलेउ गरुड़ तजि सुनाभधरन ॥ २ ॥

हाथी अपना बल देख कर सूँड़ से कमल पकड़ कर शरण गया । दीन वचन सुन कर चक्रधारी भगवान गरुड़ को छोड़ कर दौड़े ॥२॥

द्रुपदसुता को लगेउ दुसासन, नगन करन । हा हरि पाहि कहत पूरे पट, बिबिध बरन ॥ ३ ॥

द्रौपदी को दुःशासन नग्न करने लगा, उसके हा हरे मेरी रक्षा कीजिये कहते ही नाना रङ्ग के वस्त्रों का ढेर लग गया ॥३॥

इहइ जानि सुर नर मुनि कोबिद, सेवत चरन । तुलसिदास प्रभु को न अभय किय, नृग उद्धरन ॥ ४ ॥

यही जान कर देवता, मनुष्य, मुनि और विद्वान चरणों की सेवा करते हैं । तुलसीदासजी कहते हैं कि राजा नृग को उवारनेवाले प्रभु रामचन्द्रजी ने किसको निर्भय नहीं किया? अर्थात् जो शरण में गये सब को अशोक कर दिया ॥४॥

(२१४)

राग-कल्याण ।

ऐसी कौन प्रभु की रीति । बिरद हेतु पुनीत परिहरि, पाँवरन्हि पर प्रीति ॥ १ ॥

प्रभो! आप की यह कौन सी रीति है कि नामवरी के लिये पुण्यात्माओं को छोड़ कर पापियों ही पर प्रेम करते हैं ॥१॥

गई मारन पूतना कुच, कालकूट लगाइ । मातु की गति दई ताहि, कृपाल जादवराइ ॥ २ ॥

पूतना अपने पयोधरों में विष लगा कर मारने के लिये गई; किन्तु कृपालु यदुकुल के स्वामी ने उसको माता की गति दी अर्थात् वैकुण्ठ भेजा ॥२॥

काम मोहित गोपिकन्ह पर, कृपा अतुलित कीन्ह । जगतपिता बिरञ्चि जिन्ह के, चरन की रज लीन्ह ॥ ३ ॥

कामभाव से मोहित गोपिकाओं पर बहुत बड़ी कृपा की कि जगत्पिता ब्रह्माजी ने जिनके चरणों की धूलि सिर पर लिया ? ॥३॥

नेम सौं सिसुपाल दिनप्रति, देत गनि गनि गारि । कियउ लीन सो आपु मैं हरि, राजसभा मँझारि ॥ ४ ॥

शिशुपाल नेम से प्रतिदिन गिन गिन कर गाली देता था, उसको राजदरबार के बीच भगवान ने अपने में लीन कर लिया ॥४॥

व्याध चित दै चरन मारेउ, मूढ़मति मृग जानि । सो सदेह स्वलोक पठयेउ, प्रगट करि निज बानि ॥ ५ ॥

मूर्ख बुद्धि व्याधा ने चरणों में मन लगा कर मृगा समझ कर (बाण) मारा, उसको सशरीर अपने लोक को भेज कर अपनी बानि प्रगट की ॥५॥

कवन तिन्ह की कहइ जिन्ह के, सुकृत अरु अघ दोउ । प्रगट पातक रूप तुलसी, सरन राखेउ सोउ ॥ ६ ॥

उनकी कौन कहे जिनके पुण्य और पाप दोनों अपार हैं । प्रत्यक्ष में पाप रूप तुलसी, उसको भी शरण में रख लिया ॥६॥

(२१५)

श्रीरघुबीर की यह बानि । नीचहू सौं करत नेह, सुप्रीति मन अनुमानि ॥ १ ॥

श्रीरघुनाथजी का यह स्वभाव है कि मन की सुन्दर प्रीति विचार कर नीच से भी स्नेह करते हैं ॥१॥

परम अधम निषाद पाँवर, कवन ताकी कानि । लियेउ सो उर लाइ सुत ज्यौं, प्रेम की पहिचानि ॥ २ ॥

अत्यन्त अधम नीच मल्लाह उसकी कौन सी मर्य्यादा थी । उसे पुत्र की तरह छाती से लगा लिये, प्रेम की इतनी बड़ी चिन्हारी है ॥२॥

गिद्ध कवन दयाल जो विधि रचेउ हिंसा सानि । जनक ज्यौं रघुनाथ ताको, दियेउ जल निज पानि ॥ ३ ॥

गिद्ध कौन सा दयालु था जिसको विधाता ने हिंसा का रूप बनाया था । उसको रघुनाथजी ने पिता की भाँति अपने हाथ से पानी (तिलाञ्जलि) दिया ॥३॥

प्रकृति मलिन कुजाति सबरी, सकल अवगुन खानि । खात ताके दिये फल अति,-रुचि बखानि बखानि ॥ ४ ॥

स्वभाव की मैली नीच जाति शबरी जो समस्त अवगुणों की खानि थी, उसके दिये फल को अत्यन्त चाह से बखान बखान कर खाये ॥४॥

'बखानि' शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलंकार' है ।

रजनिचर अरु रिपु बिभीषन, सरन आयेउ जानि । भरत ज्यौं उठि ताहि भैंटत, देह दसा भुलानि ॥ ५ ॥

राक्षस और शत्रु विभीषण को शरण आया जान कर उससे उठ कर भरतजी की तरह मिले और शरीर की दशा भूल गई ॥५॥

अविश्वास के लिये एक कारण राक्षस का होना काफी है, तिस पर दूसरा प्रबल कारण शत्रु 'द्वितीय समुच्चय अलंकार' है । इस प्रतिबन्धक के रहते हुए भी उससे मिले 'तृतीय विभावना अलंकार' है । ऐसे प्रेम से मिले जैसे भरतजी से 'उदाहरण अलंकार' है । तीनों की संसृष्टि है ।

कवन सुभग सुसील बानर, जिन्हहिं सुमिरत हानि । किये ते सब सखा पूजे, भवन अपनें आनि ॥ ६ ॥

वानर कौन से सुन्दर अच्छे आचरणवाले थे जिन्हे स्मरण करने से हानि होती है । उन सब को मित्र बनाये और अपने घर में लाकर सन्मान किये ॥६॥

राम सहज कृपालु कोमल, दीन हित दिनदानि। भजहि ऐसे प्रभुहि तुलसी, कुटिल कपट न ठानि॥ ७॥

रामचन्द्रजी सहज ही कृपालु, कोमल चित्त, दीन हितकारी और नित्य दान देनेवाले हैं। अरे पापी तुलसी! कपट न ठान, ऐसे स्वामी का भजन कर ॥७॥

(२१६)

हरि तजि और भजियै काहि। नाहिंनै कोउ राम सौं, ममता प्रनत पर जाहि॥ १॥

भगवान रामचन्द्रजी को छोड़ कर और किसका भजन करूँ? रामचन्द्रजी के समान जिसमें शरणागतों पर ममत्व हो ऐसा (स्वामी) कोई नहीं है ॥१॥

कनककसिपु बिरञ्चि को जन, करम मन अरु बात। सुतहि दुखवत बिधि न बरजेउ, काल के घर जात॥ २॥

हिरण्यकशिपु कर्म, मन और वचन से ब्रह्माजी का सेवक था। पुत्र (प्रह्लाद) को दुःख देने में उसको काल के घर जाते हुए विधाता ने मना नहीं किया ॥२॥

सम्भु सेवक जान जग बहु,-बार दिय दससीस। करत राम बिरोध सो सपनेहुँ न हटकेउ ईस॥ ३॥

जगत जानता है कि रावण शङ्करजी का दास था, उसने अनेक बार अपना दसों सिर काट कर चढ़ा दिया; परन्तु रामचन्द्रजी से वैरत्व करते समय सपने में भी शिवजी ने वर्जन नहीं किया ॥३॥

और देवन्ह की कहउँ कहा, स्वारथहि के मीत। कबहुँ काहु न राखि लियेउ कोउ सरन गये सभीत॥ ४॥

और देवताओं की क्या कहूँ वे अपने मतलब ही के मित्र हैं। भयभीत शरण में गये हुए को कोई कभी किसी को नहीं रख लिया है ॥४॥

को न सेवत देत सम्पति, लोकहू यह रीति। दासतुलसी दीन पर एक रामही की प्रीति॥ ५॥

यह संसार की रीति ही है कि सेवा करने से कौन नहीं धन देता? तुलसीदासजी कहते हैं कि दीन (अपाहिजों) पर एक रामचन्द्रजी को ही प्रीति रहती है ॥५॥

उपमान प्रमाण; वक्रोक्ति और अनुप्रास की इस पद में संसृष्टि है।

(२१७)

जौपै दूसरो कोउ होय। तौ हौं बारहि बार प्रभु कत, दुख सुनावउँ रोय ॥ १ ॥

यदि दूसरा कोई होता तो हे नाथ! मैं बार बार काहे को रोकर दुःख सुनाता ॥१॥

काहि ममता दीन पर केहि,-पतित पावन नाम। पाप-मूल अजामिलहि को, दियेउ अपनो धाम ॥२॥

किसकी दीनों पर प्रीति है और किसका पतितपावन नाम है? पापमूल अजामिल को भी किसने अपना धाम (वैकुण्ठ) दिया? ॥२॥

रहे सम्भु विरञ्चि सुरपति, लोकपाल अनेक। सोक-सरि बूड़त करीसहि, दई काहु न टेक ॥३॥

शिवजी, विधाता, इन्द्र और बहुतेरे लोकपाल आदि देवता थे, शोक रूपी नदी में गजेन्द्र को डूबते हुए किसी ने सहारा नहीं दिया ॥३॥

विपुल भूपति सदसि महँ नर,-नारि कहि प्रभु पाहि। सकल समरथ रहे काहु न, वसन दीन्हौं ताहि ॥४॥

बहुत से राजा सभा में थे, अर्जुन की स्त्री (द्रौपदी) ने कहा प्रभो मेरी रक्षा कीजिये। सब समर्थ ही थे; किन्तु किसी ने उसको वस्त्र नहीं दिया ॥४॥

एक मुख क्यौँ कहउँ करुनासिन्धु के गुन गाथ। भगत हित धरि देह काह न, कियेउ कोसलनाथ ॥५॥

दयासिन्धु के गुणों की कथा एक मुख से मैं किस प्रकार कहूँ। भक्तों के लिये देह धारण कर कोशलनाथ ने क्या नहीं किया ॥५॥

आपु से कहुँ सौंपिये मोहि, जोपै अधिक घिनात। दास-तुलसी और विधि क्यौँ, चरन परिहरि जात ॥६॥

यदि मुझे (पापी समझ कर) अधिक घिनाते हैं तो अपनी ओर से कहीं सौंप दीजिये, और तरह से तुलसीदास आप के चरणों को छोड़ कर कैसे जा सकता है? ॥६॥

(२१८)

कबहुँ दिखाइहौ हरि चरन । समन सकल कलेस कलिमल, सकल मङ्गल करन ॥ १ ॥

हे भगवन् ! कभी अपने चरण दिखाइयेगा जो समस्त क्लेश और पाप के नाशक तथा सम्पूर्ण मङ्गलों के करनेवाले हैं ॥१॥

सरद भव सुन्दर तरुन तर, अरुन बारिज बरन । लच्छि लालित ललित करतल, छबि अनूपम धरन ॥ २ ॥

शरदऋतु में उत्पन्न अत्यन्त सुन्दर खिले हुए लाल कमल के रङ्ग के जो लक्ष्मीजी के मनोहर हाथों से प्यार किये जानेवाले और अपूर्व शोभाधारी हैं ॥२॥

गङ्गजनक अनङ्गअरि प्रिय, कपट बटु बलि छरन। बिप्र तिय नृग बधिक के दुख, दोष दारुन दरन ॥ ३ ॥

गङ्गाजी के पिता, शिवजी के प्यारे और छल से ब्रह्मचारी रूप में वलि को छलनेवाले हैं । ब्राह्मण की स्त्री, (अहल्या) राजा नृग और व्याधा के भीषण दुःख-दोष नसानेवाले हैं ॥३॥

सिद्ध सुर मुनिबृन्द बन्दित, सुखद सब कहँ सरन। सकृत उर आनत जिन्हहिँ जन, होत तारन तरन ॥ ४ ॥

सिद्ध, देवता और मुनिवृन्द से प्रणाम किये जानेवाले सब को शरण देने में सुखदायक हैं । जिन्हें एक बार भी हृदय में ले आने से मनुष्य तारन तरन हो जाते हैं अर्थात् स्वयम् संसार से पार होते और दूसरों के पार करनेवाले होते हैं ॥४॥

कृपासिन्धु सुजान रघुपति, प्रनत आरति हरन । दरस आस पियास तुलसीदास चाहत मरन ॥ ५ ॥

हे कृपासिन्धु सुजान रघुनाथजी ! आप दीनों के दुःख हरनेवाले हैं, तुलसीदास दर्शन की आशा रूपी प्यास से मरना चाहता है (प्यास बुझा कर इसकी रक्षा कीजिये) ॥५॥

(२१९)

द्वारे भोरही को आज । रटत रिरिहा आरि और न कौरही के काज ॥ १ ॥

आज सबेरे ही का दरवाजे पर अड़ कर यह ररा (मङ्गन) रटता है, और कुछ नहीं केवल कौर (टुकड़ा) ही के लिये ॥१॥

कलि कराल दुकाल दारुन, सब कुभाँति कुसाज । नीच जन मन ऊँच जैसे, कोढ़ह की खाज ॥ २ ॥

कलिकाल रूपी भयानक विकट दुर्भिक्ष सब कुरीति और बुरे सामानों से भरा है। मन रूपी नीच मनुष्य की ऊँची चाहना ऐसी है जैसे कोढ़ में की खुजलाहट ॥ २ ॥

कलिकाल में भीषण अकाल का आरोप और मन पर छोटी जाति के दुकाल से पीड़ित मनुष्यों का आरोपण 'रूपक अलङ्कार' है। दुकाल पीड़ित जन उत्तम भोजन की इच्छा करते हैं, किन्तु उसके न मिलने से इस तरह दुखी होते हैं जैसे कोढ़ के खुजाने से सुख मिलता है पर पीछे दाह से कष्ट होता है। उत्तम व्यञ्जनों के पाने की अभिलाषा करना कोढ़ की खुजली है और न मिलना दाह 'उदाहरण अलङ्कार' है। क, ल, द और न अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास, तीनों की संसृष्टि है।

हहरि हिय मैं सदय बूझेउँ, जाइ साधु-समाज । मोहु से कहुँ कतहुँ कोउ तिन्ह, कहेउ कोसलराज ॥ ३ ॥

मैंने हृदय में डर कर दयायुक्त साधुमण्डली से जाकर पूछा कि मुझ से (अकाल पीड़ित के लिये) कहीं किसी जगह कोई ठिकाना है! उन्होंने कहा कोशलनरेश हैं ॥ ३ ॥

दीनता दारिद दलन को, कृपा वारिद बाज । दानि दसरथ राय के, बानइत मैं सिरताज ॥ ४ ॥

दुःख की अवस्था कँगलई नसाने को कृपा रूपी मेघ और बाज हैं। महाराज दशरथजी के प्यारे नामवर दानियों के शिरोमणि हैं ॥ ४ ॥

रामचन्द्रजी पर कृपा के मेघ और बाज पक्षी का आरोप होने से दीनता पर अवर्षण का तथा दरिद्र पर पक्षी का आरोपण किये बिना रूपक का चमत्कार न भासेगा। यह 'परम्परित रूपक अलंकार' है।

जनम को भूखो भिखारी, हौं गरीब-निवाज । पेट भरि तुलसिहि जँवाइय, भगति सुधा सुनाज ॥ ५ ॥

हे गरीबनिवाज़! मैं जन्म का भूखा मङ्गन हूँ, तुलसी को भर पेट भक्ति रूपी मधुर अन्न भोजन कराइये ॥५॥

इस पद में कलिकाल और दुकाल की एकरूपता 'साङ्ग रूपक अलंकार' है।

(२२०)

करिय सँभार कोसलराय । और ठौर न और गति, अवलम्ब नाम बिहाय ॥ १ ॥

हे कोशलराज ! मेरी रक्षा कीजिये, मुझे आप के नाम का आधार छोड़ कर न दूसरी जगह है और न सहारा है ॥१॥

गति और अवलम्ब शब्द पर्यायी हैं इसमें पुनरुक्ति का आभास है; किन्तु अर्थ भिन्न होने से 'पुनरुक्तिवदाभास अलंकार' है ।

बूझि अपनी आपनो हित आप बाप न माय । राम राउर नाम गुरु सुर, स्वामि सखा सहाय ॥ २ ॥

मेरी समझ में अपना हितू आप हैं, माता-पिता नहीं । हे रामचन्द्रजी ! आप का नाम गुरु, देवता, स्वामी, मित्र और सहायक-बन्धु है ॥२॥

पिता-माता का हितकारित्व गुण इसलिये निषेध किया कि उनका धर्म रामचन्द्रजी में स्थापन करना अभीष्ट है 'पर्यस्तापह्नुति अलंकार' है । गुरु, देवता, स्वामी आदि के उत्कृष्ट गुणों की समता एक राम नाम में एकत्र करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

राम राज न चलइ मानस-मलिन के छलछाय । कोपि तेंहि कलिकाल कायर, मुयेहि घालत घाय ॥ ३ ॥

रामचन्द्रजी के राज्यकाल में मैले मनवाले (कलि) की छलबाज़ी तो चली नहीं, इससे डरपोक कलिकाल कोध कर मुर्दे ही पर चोट चलाता है ॥३॥

राम नाम लेनेवाला मुझ दीन को दुःख देता है, यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

लेत केहरि को बयर ज्यौं, भेक हति गोमाय । त्यौं हि राम-गुलाम जानि, निकाम देत कुदाय ॥ ४ ॥

जैसे सियार मेढक को मार कर सिंह का वैर लेता हो, उसी तरह मुझ को रामचन्द्रजी का गुलाम जान कर अत्यन्त दुःख देता है ॥४॥

यहाँ रामचन्द्रजी और सिंह, तुलसीदास और मेढक, कलिकाल और शृगाल परस्पर उपमेय उपमान हैं । रामदास होने के कारण कलि मुझे सताता है, इस बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे सिंह से डर कर भागा हुआ गीदड़ मेढक को मार कर वैर का बदला लेता हो 'उदाहरण अलंकार' है ।

अकनि या के कपट करतब, अमित अनय अपाय। सुखी हरिपुर बसत होत परीछितहि पछिताय ॥ ५ ॥

इसके असंख्यों अन्याय, उपद्रव और कपट के कामों को सुन कर सुख-पूर्वक बैकुण्ठ में बसते हुए राजा परीक्षित को भी पछतावा होता होगा कि इस दुराचारी को हमने नाहक ही छोड़ दिया ॥५॥

राजा परीक्षित के राज्यकाल में कलि का प्रवेश हुआ। एक बार इसके अन्याय को देख राजा मारने को उद्यत हुए; किन्तु गिड़गिड़ाने से दया वश छोड़ दिया था। विशेष वृत्तान्त विनयकोश में 'परीक्षित' शब्द देखो।

कृपासिन्धु बिलोकिये जन मन की साँसति साय। सरन आयउ देव दीन,-दयाल देखन पाय ॥ ६ ॥

हे कृपासिन्धु दीनदयाल देव! मैं चरणों को देखने के लिये आप की शरण आया हूँ, दास की ओर निहारिये तो मन की दुर्दशा नाश हो ॥६॥

निकट बोलि न बरजिये बलिजाउँ हनिय न हाय। देखिहैं हनुमान गोमुख नाहरनि के न्याय ॥ ७ ॥

मैं बलि जाता हूँ, समीप में बुला कर मना न कीजिये और उसकी हाय का ख़्याल करके मारिये भी नहीं (क्योंकि आप शीलसागर हैं तो कह दीजिये) हनूमानजी गोमुख और नाहरों के न्याय को देखेंगे अर्थात् गाय के मुख जैसा नम्र दीन मैं तथा सिंह के मुख सरीखा उद्धत अत्याचारी कलिकाल का न्याय—नम्र की रक्षा अत्याचारी का दमन अञ्जनीकुमार करेंगे ॥७॥

अरुन मुख भ्रू बिकट पिङ्गल नयन रोष कषाय। बीर सुमिरि समीर को घटिहै चपल चित चाय ॥ ८ ॥

उनके लाल मुख, टेढ़ी भौंह और पीले नेत्र जो क्रोध से गेरुआ रङ्ग के हो जाँयगे। वीर पवनकुमार की याद करके उसके चित्त की तेज़ी और उत्साह घट जायगा ॥८॥

फिर वह मुझे सताने का साहस न करेगा, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

बिनय सुनि बिहँसे अनुज सौं, बचन के कहि भाय। भलि कही कहे लखनहूँ हँसि, बने सकल बनाय ॥ ९ ॥

विनती सुन कर हँसे और छोटे भाई से वचनों के अभिप्राय कहे, तब लक्ष्मणजी ने हँस कर कहा ठीक कहता है सारा बनाव बन गया ॥९॥

दई दीनहि दाद सो सुनि, सुजन सदन बधाय । मिटे सङ्कट सोच पोच प्रपञ्च पाप निकाय ॥ १० ॥

स्वामी ने दुखिया का इन्साफ़ किया, यह सुन कर सज्जनों के घर आनन्द की बधाई बजती है। सङ्कट, सोच, अधमता, दुनियाँ का जञ्जाल और पाप-समूह मिट गये॥१०॥

सज्जनों के घर आनन्द का बधावा यह सोच कर बजता है कि ऐसा ही न्याय मेरे साथ भी होगा 'प्रथम उल्लास अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

पेखि प्रीति प्रतीति जन पर, अगुन अनघ अमाय । दासतुलसी कहत मुनिगन, जयति जय उरुगाय ॥ ११ ॥

दास पर निष्काम, निर्दोष और निष्कपट प्रीति देख कर तुलसीदासजी कहते हैं कि मुनिवृन्द विष्णु भगवान (रामचन्द्रजी) का जय जयकार करते हैं ॥११॥

प और अ अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है और जयति जय में आदर की विप्सा है। 'उरुगाय' विष्णुभगवान का एक नाम है।

(२२१)

कृपाही को पन्थ चितवत, दीन हौं दिन राति । होइ धौं केहि काल दीनदयाल जानि न जाति ॥ १ ॥

मैं दीन होकर दिन रात कृपा ही की राह देखता हूँ। हे दीनदयाल ! नहीं जाना जाता कि न जाने वह कब होगी ? ॥१॥

सगुन ज्ञान बिराग भगति, सुसाधनन्हि की पाँति । भजी बिकल बिलोकि कलि अघ,-अवगुनन्हि की थाति ॥ २ ॥

गुणों के सहित ज्ञान, वैराग्य और भक्ति आदि अच्छे साधनों की गोल कलि के पाप और दोषों की जमा (धरोहर) देख कर व्याकुल हो भाग गई ॥२॥

अति अनीति कुरीति भइ भुइँ, तरनिहूँ तेँ ताति । जाउँ कहँ बलिजाउँ कहुँ नहिँ ठाउँ मति अकुलाति ॥ ३ ॥

अत्यन्त अत्याचार और कुचाल से धरती सूर्य्य से भी बढ़ कर गरम हुई है। बलि जाता हूँ, कहाँ जाऊँ कहीं जगह नहीं बुद्धि घबड़ाती है ॥३॥

पृथ्वी उपमेय और सूर्य्य उपमान हैं। उपमान से उपमेय में गरमी का गुण अधिक कहना 'व्यतिरेक अलंकार' है।

आपु सहित न आपनो कोउ, बाप कठिन कुभाँति। स्याम घन सींचिये तुलसी, सालि सफल सुखाति ॥ ४ ॥

हे पिताजी ! अपने शरीर के सहित अपना कोई नहीं, सब कठोर और कुरीति से तुलसी फला हुआ धान का बिरवा सूखता है आप श्याम मेघ हैं, कृपा रूपी जल से सींच कर इसको हराभरा कीजिये ॥४॥

रामचन्द्रजी में श्याम मेघ का आरोप और अपने में धान के बिरवा का आरोपण इसलिये किया कि वह विना जल के प्रसन्न नहीं होता 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

(२२२)

बलिजाउँ और का सौं कहौं। सदगुन सिन्धु स्वामि सेवक हित, कहुँ न कृपानिधि सौं लहौं ॥ १ ॥

बलि जाता हूँ, और किससे कहूँ ? सद्गुणों का सागर, सेवकों का हितकारी स्वामी कृपानिधान के समान कहीं नहीं पाता हूँ ॥१॥

जहँ जहँ लोभ लोल लालच बस, निज हित चित चाहनि चहौं। तहँ तहँ तरनि तकत उलूक ज्यौं, भटकि कुतरु कोटर गहौं ॥ २ ॥

जहाँ जहाँ लोभ से चञ्चल तृष्णा के अधीन हो कर मन में अपनी भलाई की इच्छा रखता हूँ, वहाँ वहाँ जैसे उल्लू पक्षी सूर्य्य को देखते ही भ्रम में पड़ कर बुरे वृक्ष के खोढ़रे में घुसता है उसी तरह ओट पकड़ता हूँ ॥२॥

जहाँ भलाई की अभिलाषा से जाता; वहाँ, से भाग चलता हूँ, इस बात की विशेष से समता दिखना कि जैसे घुघुआ पक्षी सूर्य्य का प्रकाश देख वृक्ष के खोढ़रे में घुसता है, उजाला देख नहीं सकता 'उदाहरण अलंकार' है। जहँ जहँ और तहँ तहँ शब्दों में पुनरुक्तिप्रकाश है। ल, च, त और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

काल सुभाउ करम बिचित्र फल,-दायक सुनि सिर धुनि रहौं। मो कहँ सकल सदा एकहि रस, दुसह दाह दारुन दहौं ॥ ३ ॥

काल, स्वभाव और कर्म विलक्षण फल देनेवाले सुन कर सिर पीट कर रह जाता हूँ। मुझ को सदा सब एकही समान असहनीय हैं, इनको भीषण ज्वाला से जलता हूँ ॥३॥

अद्भुतता यह कि कभी कभी सैकड़ों जन्म के बाद फल देने में चूकते नहीं अथवा औरों को सुख दुःख दोनों फल देते हैं; किन्तु मुझे निरन्तर दारुण दुःख ही दुःख दे रहे हैं। मैं सुख जानता ही नहीं कि वह कैसा होता है।

उचित अनाथ होइ दुख भाजन, भयउँ नाथ किङ्कर न हौं।
अब रावरो कहाइ न बूझिय, सरनपाल सासति सहौं ॥ ४ ॥

हे नाथ! मैं आप का दास नहीं हुआ था तो अनाथ का दुःखपात्र होना उचित ही था; परन्तु अब आप का (सेवक) कहाता हूँ, हे शरणागतों के रक्षक! यह नहीं समझ पड़ता कि तब क्यों दुर्दशा सहता हूँ? ॥४॥

यहाँ सम और विषम दोनों अलंकारों की संसृष्टि है।

महाराज राजीव बिलोचन, मगन पाप सन्ताप अहौं।
तुलसी प्रभु जब कब जेहि तेहि बिधि, राम निबाहे निरबहौं ॥५॥

हे कमल नयन महाराज! मैं पाप और दुःख में डूबा हूँ। हे रामचन्द्रजी! जब कभी जिसकिसी तरह से तुलसी आप ही के निबाहने से निबहेगा ॥५॥

(२२३)

आपनो कबहुँ करि जानिहौ। राम गरीबनिवाज राजमनि, बिरद लाज उर आनिहौ ॥ १ ॥

कभी मुझे अपना करके जानियेगा। हे गरीबनेवाज़ राजाओं के शिरोमणि रामचन्द्रजी! अपनी नामवरी की लाज हृदय में ले आइयेगा? ॥१॥

सीलसिन्धु सुन्दर सब लायक, समरथ सदगुन खानि हौ।
पाले हौ पालत पालहुगे, प्रनत प्रेम पहिचानहौ ॥ २ ॥

शील के सागर, सुन्दर, सब योग्य, समर्थ और उत्तम गुणों के खानि हो। शरणागतों के प्रेम को पहचानते हो, उनका पालन किये हो, और पालते हो और पालोगे ॥२॥

आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार और अनुप्रास की संसृष्टि है।

बेद पुरान कहत जग जानत, दीनदयाल दिनदानि हौ।
कहि आवत बलिजाउँ मनहुँ मम, बार बिसारे बानि हौ ॥ ३ ॥

वेद पुराण कहते हैं और दुनियाँ जानती है कि आप दीनदयालु नित्य ही दान देनेवाले हैं। बलि जाता हूँ, कहते ही बनता है मानों मेरी बार अपना स्वभाव ही भूल गये हो ॥३॥

तत्त्वतः अपना वाञ्छित सफल न होना उत्प्रेक्षा का विषय है। ईश्वर अपनी दयालुता कभी भुलाता नहीं; किन्तु आर्त्तजन अपना दुःख दूर करने के लिये योग्यायोग्य सब तरह की प्रार्थना करते ही हैं। यह 'अनुक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। शब्दप्रमाण और अनुप्रास की संसृष्टि है।

आरत दीन अनाथन्ह के हित, मानत लौकिक कानि हौ।
है परिनाम भलो तुलसी को, सरनागत भय भानिहौ ॥४॥

दुखी, ग़रीब और अनाथों का भला करने में लोक की लाज मानते हो। इसका नतीजा सुन्दर है, तब शरणागत तुलसीदास के भय को नष्ट कीजियेगा ॥४॥

इसमें लोक लाज की डर है कि लोग नाम की महिमा को मिथ्या समझने लगेंगे इस लाज से तुलसी को अवश्य निर्भय कीजियेगा 'तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग' है।

(२२४)

रघुबरहि कबहुँ मन लागिहै। कुपथ कुचाल कुमति कुमनोरथ, कुटिल कपट कब त्यागिहै ॥१॥

रघुनाथजी में कभी मन लगेगा और कुमार्ग, खोटाई, दुर्बुद्धि, कुचाह, टेढ़ाई तथा छल कब छोड़ेगा ? ॥१॥

'क' अक्षर की आवृत्ति में अनुप्रास है।

जानत गरल अमिय बिमोह बस, अमिय गनत करि आगि है।
उलटी रीति प्रीति अपने की, तजि प्रभु पद अनुरागिहै ॥२॥

अज्ञानता वश विष को अमृत जानता और अमृत को आग करके समझता है। इस उलटी रीति की अपनी प्रीति त्याग कर प्रभु रामचन्द्रजी के चरणों में प्रेम करेगा ॥२॥

विषय रूपी विष से प्रेम और रामभक्ति रूपी अमृत को अग्नि (दाहक) मानता है, यह प्रस्तुत वर्णन है। इसको सीधे न कह कर घुमा कर कहना 'ललित और रूपकातिशयोक्ति अलंकार' का सन्देहसङ्कर है। भ्रान्ति भी है।

आखर अरथ मञ्जु मृदु मोदक, राम प्रेम पगि पागिहै।
अस गुन गाइ रिझाइ स्वामि सौं, पइहै जो मुँह माँगिहै ॥३॥

राम नाम के सुन्दर अक्षर और अर्थ रूपी मुलायम लड्डू के प्रेम में लीन होकर दूसरों को भी पागोगे, इस प्रकार गुण गान कर प्रसन्न करोगे तो स्वामी से जो मुँह से माँगोगे वही पाओगे ॥३॥

राम नाम के अक्षर और अर्थ पर लड्डू का आरोप करके प्रेम में चासनी का आरोपण करना 'परम्परितरूपक अलंकार' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

तू एहि विधि सुख-सेज सोइहै, जरनि जीव की भागिहै।
राम प्रसाद दासतुलसी उर, रामभगति जुग जागिहै ॥४॥

(हे मन !) तू इस तरह सुख की सेज पर सोवेगा और जी की जलन भाग जायगी। रामचन्द्रजी की कृपा से तुलसीदास के हृदय में रामभक्ति का युग फैलेगा ॥४॥

यहाँ गोस्वामीजी कहते तो अपने मन से हैं, परन्तु इसका उद्देश संसार के मनुष्यों को विशेष सूचना देने का है जिसमें वे सुन कर समझ लें और इस उपदेश के अनुसार चल कर लाभ उठावें 'गूढ़ोक्ति अलंकार' है।

(२२५)

भरोसो और आइहै उर ताके। कै कहुँ लहइ राम सौं साहेब, कै अपनो बल जाके ॥१॥

दूसरे का भरोसा उसी के हृदय में आवेगा जिसको या तो रामचन्द्रजी के समान कहीं स्वामी मिले या कि अपने में शक्ति हो ॥१॥

या तो स्वयम् शक्तिवान हो या रामचन्द्रजी के सदृश कहीं स्वामी पा जाय वही दूसरे का भरोसा करेगा 'विकल्प अलंकार' है।

कै कलिकाल कराल न सूझत, मोह मार मद छाके। कै सुनि स्वामि सुभाव न रह चित, जो हित सब अँग थाके ॥२॥

या जो अज्ञानता और काम के नशे में मस्त हुआ भीषण कलिकाल नहीं सूझता है। अथवा स्वामी का स्वभाव जो सब अङ्गों के थक जाने पर जीव का कल्याण करते हैं, यह सुन कर जिसके मन में न रहे अर्थात् भूल जाय (वही दूसरे का भरोसा करेगा) ॥२॥

यह भी विकल्प ही है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

हौं जानत सब भाँति अपनपौ, प्रभु सौं सुनेउँ न साके। उपल भील खग मृग रजनीचर, भल भये करतब काके ॥३॥

मैं अपने को (जैसा अधम हूँ) सब तरह से जानता हूँ और प्रभु रामचन्द्रजी के समान सामर्थ्यवान कहीं नहीं सुना। पत्थर, भील, पक्षी, पशु और राक्षस इनमें किसकी करनी अच्छी हुई थी ? (किसी की नहीं) ॥३॥

पत्थर-अहल्या, भिल्ल-वनवासी, पक्षी-जटायु, मृग-हाथी और राक्षस-विभीषण।

मो को भयेउ नाम सुरतरु सौं, राम कृपालु कृपा के। तुलसी सुखी निसोच राज ज्यौं, बालक माय बबा के ॥४॥

कृपालु रामचन्द्रजी की कृपा से मुझ को (राम) नाम कल्पवृक्ष के समान हुआ है। तुलसी सोच रहित इस तरह सुखी है जैसे मा बाप के राज्य में लड़का बे-फ़िक्र रहता है ॥४॥

रामनाम-उपमेय, कल्पवृक्ष-उपमान, सोँ-वाचक है; किन्तु फल दायक-धर्म लुप्त होने से 'धर्म लुप्तोपमा अलंकार' है। नाम के बल से तुलसी असोच है, इसकी विशेष से समता दिखाना कि जैसे बालक माता-पिता की मौजूदगी में निश्चिन्त रहता 'उदाहरण अलंकार' है।

(२२६)

भरोसो जाहि दूसरो सो करो। मो को राम को नाम काम-तरु, कलि कल्यान फरो ॥१॥

जिसको दूसरे का भरोसा हो वह करे, मुझ को तो रामचन्द्रजी का नाम कल्पवृक्ष है जो इस कलिकाल में कल्याण का फल फला है ॥१॥

यहाँ उपमान कल्पवृक्ष का गुण उपमेय राम नाम में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलंकार' है।

करम उपासन ज्ञान बेद मत, सब सब भाँति खरो। मोहि तौ सावन के अन्धहि ज्यौं, सूझत रङ्ग हरो ॥ २ ॥

कर्म, उपासना और ज्ञान सब वेदमतानुसार सब प्रकार चोखे हैं; किन्तु मुझे तो सावन के अन्धे की तरह हरा ही रङ्ग सूझता है ॥२॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि मुझे एकमात्र राम नाम का भरोसा है, कर्म, उपासना और ज्ञान का नहीं। इस बात को उदाहरण द्वारा घुमा कर कहना 'ललित और उदाहरण अलंकार' की संसृष्टि है। 'सब' शब्द में यमक है।

चाटत रहेउँ स्वान पातरि ज्यौं, कबहुँ न पेट भरो। सो हौं सुमिरत नाम सुधा रस, पेखत परसि धरो ॥ ३ ॥

कुत्ते की तरह पत्तल चाटता था कभी पेट न भरा। वही मैं नाम स्मरण करने से देखता हूँ कि अमृत रस परस कर रक्खा है ॥३॥

स्वारथ औ परमारथहू को, नहिँ कुञ्जरोनरो। सुनियत सेतु पयोधि पखानन्हि, करि कपि कटक तरो ॥ ४ ॥

स्वार्थ और परमार्थ को भी नरो वा कुञ्जरो नहीं जानता। सुनता हूँ कि समुद्र में पाथरों का पुल बना कर वानरों का दल पार हुआ था ॥४॥

जब राम नाम के प्रभाव से सागर में पत्थर उतरा गये तब स्वार्थ परमार्थ की कौन सी चिन्ता, वे स्वयम् सिद्ध होंगे। यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

प्रीति प्रतीति जहाँ जाकी तहँ, ताको काज सरो । मेरे माय बाप दोउ आखर, हौं सिसु अरनि अरो ॥ ५ ॥

जिसकी जहाँ प्रीति और विश्वास है उसका काम वहाँ होता है । दोनों अक्षर मेरे माता-पिता हैं और मैं अबोध बालक की तरह हठ करके अड़ा हूँ ॥५॥

उपमेय माता-पिता के गुण उपमान राम नाम में स्थापन करना 'तृतीय निदर्शना अलंकार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सङ्कर साखि जो राखि कहउँ कछु, तौ जरि जीह गरो । अपनो भलो राम नामहिं तेँ, तुलसिहि समुझि परो ॥ ६ ॥

यदि कुछ कपट रख कर कहूँगा तो शङ्करजी साक्षी हैं जीभ गल कर गिर जायगी । तुलसी को अपनी भलाई राम नाम ही से समझ पड़ती है ॥६॥

इस पदमें प्रतिज्ञाबद्ध 'स्वाभावोक्ति अलंकार' है ।

(२२७)

नाम राम रावरो हित मेरे । स्वारथ परमारथ साथिन्ह सौं, भुज उठाइ कहउँ टेरे ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आप का नाम मेरा हितकारी है, स्वार्थ और परमार्थ के साथियों से भुजा उठा कर और पुकार कर मैं कहता हूँ ॥१॥

जननि जनक तजे जनमि करम बिनु, बिधि सिरजेउ अवडेरे । मोहु से कोउ कोउ कहत राम को, सो प्रसङ्ग केहि केरे ॥ २ ॥

माता-पिता ने जन्मा कर कर्म हीन जान त्याग दिया, विधाता ने मुझे अभागा बनाया । मुझ से (बदकिस्मत) को कोई कोई रामचन्द्रजी का दास कहते हैं वह किसके सम्बन्ध से ? अर्थात् नाम के ही प्रभाव से मैं रामभक्त कहाता हूँ ॥२॥

फिरे ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखहु दुखित मोहि हेरे । नाम प्रसाद लहत रसाल-फल, अब हौं बबुर बहेरे ॥ ३ ॥

बिना नाम स्मरण के मैं पेट के लिये तरसता फिरा, मुझे देख कर दुःख भी दुखी होता था । नाम के अनुग्रह से अब मैं बबुर बहेड़े के पेड़ में आम का फल पाता हूँ ॥३॥

दुःख का भी दुखित होना वर्णन 'अत्युक्ति अलंकार' है । यहाँ असली कथन तो यह है कि नाम की कृपा से दुर्जन भी मेरी सहायता (सेवा-शुश्रूषा) करते हैं, इसको सीधे नहीं बबुर बहेड़े में आम्र फल मिलना कहना 'ललित अलंकार' है । प्रथम विनोक्ति और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

साधत साधु लोक परलोकहि, सुनियत जतन घनेरे।
तुलसी के अवलम्ब नाम को, एक गाँठि कइ फेरे ॥ ४ ॥

सुनता हूँ अनेकों यत्न करके साधुजन लोक और परलोक (नाम ही से) सुधारते हैं। तुलसी को नाम ही का सहारा है, यही कई फेरे की एक गाँठ है ॥४॥

"कई फेरे की एक गाँठ" का तात्पर्य्य यह कि सन्त लोग घने उपायों के साथ नाम का जाप करते हैं, पर तुलसी का :जप, तप, योग, व्रतादि एकमात्र नाम-स्मरण करना है। यह तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२२८)

प्रिय राम नाम तें जाहि न रामो। ताको भलो कठिन कलि-कालहु, आदि मध्य परिनामो ॥ १ ॥

जिनको राम नाम से बढ़ कर रामचन्द्रजी भी प्यारे नहीं हैं, उनका इस कठिन कलिकाल में भी आदि मध्य और अन्त में कल्याण है ॥१॥

सकुचत समुझि नाम महिमा मद, मोह लोभ कोह कामो।
राम नाम जप निरत सुजन पर, करत छाँह घोर घामो ॥ २ ॥

नाम की महिमा समझ कर मद, मोह, लोभ, क्रोध और काम लज्जित होते हैं। राम नाम के जप में तत्पर सज्जनों पर भयङ्कर घाम भी छाँह करता है॥२॥

असली कथन तो यह है कि रामनाम के जपनेवालों पर भीषण तापकारी संसार शीतल सुखद हो जाता है। इसको सीधे नहीं घुमा कर कहना 'ललित अलंकार' है।

नाम प्रभाव सही जो कहइ कोउ, सिला सरोरुह जामो।
जो सुनि सुमिरि भाग्य भाजन भइ, सुकृत सील भील-भामो ॥३॥

नाम के प्रभाव से यदि कोई कहे कि पत्थर पर कमल जमा है तो वह सत्य है। जिसको सुन कर और स्मरण करके भील की स्त्री पुण्य की सीमा और भाग्य की पात्र हो गई ॥३॥

बालमीकरु अजामिल के कछु, हुतो न साधन सामो।
उलटे पलटे नाम महातम, गुञ्जनि जितो ललामो ॥ ४ ॥

वाल्मीकि और अजामिल के कुछ भी साधन की सामग्री न थी। उलटे और बदले में नाम माहात्म्य से घुँघचियों ने रत्न को जीत लिया ॥४॥

वाल्मीकि उलटा नाम मरा मरा जप कर व्याधा से ब्रह्मर्षि हुए और पुत्र का नाम नारायण कह कर पापी अजामिल हरिलोक गया, यह प्रस्तुत वर्णन है। इसको सीधे न कह कर गुञ्जनि जितो ललामो, उसका प्रतिबिम्ब मात्र कथन 'ललित अलंकार' है।

राम तेँ अधिक नाम करतब जेहि, किये नगर गत गामो। भयउ बजाइ दाहिनो जो जपि, तुलसिदास से बामो ॥ ५ ॥

नाम की करनी रामचन्द्रजी से बढ़ कर है जिसने गये गुज़रे गाँवों को नगर बना दिया। जिसको जप कर तुलसीदास के समान टेढ़ा भी डङ्का बजाकर सीधा हो गया ॥५॥

यहाँ ललित और उपमा की संसृष्टि है।

(२२९)

गरैगी जीह जो कहउँ और को हौं। जानकिजीवन जनम जनम जग, ज्यायो तिहारेहि कौर को हौं ॥ १ ॥

जो मैं कहूँ कि दूसरे का (दास) हूँ तो जीभ गल जायगी। हे जानकीरमण! मैं जन्म जन्मान्तर से जगत में आप के ही टुकड़े से पला हूँ ॥१॥

पुनरुक्तिप्रकाश और अनुप्रास की संसृष्टि है।

तीनि लोक तिहुँ काल न देखत, सुहृद रावरे जोर को हौं। तुम्ह सौं छल करि जनम जनम कृमि, होइहौं नरक घोर को हौं ॥२॥

तीनों लोक और तीनों काल में आप की बराबरी का मित्र नहीं देखता हूँ। आप से छल करके जन्म जन्म भयानक नरक का कीड़ा होऊँगा ॥२॥

कहा भयउ मन मिलि कलिकालहि, कियेउ भौंतुवा भौंर को हौं। तुलसिदास सीतल नित एहि बल, बड़े ठिकाने ठौर को हौं ॥ ३ ॥

क्या हुआ जो मन कलिकाल से मिल कर मुझे (भवसागर) के भँवर का चक्कर खानेवाला बना रक्खा है। तुलसीदास इस बल से सदा शान्त (उद्वेग रहित) है कि मैं बड़े प्रामाणिक स्थान का हूँ ॥३॥

इस पद में 'भौंतुवा' शब्द का अर्थ न जानने के कारण प्रायः लोगों ने पाठ बदल दिया है। किसी ने भूरुद, भुरुहुआ और किसी ने भुरुद, भूरुहा बना कर तदनुसार टीका भी कर डाली है। बाबू हरिहर प्रसाद ने 'भौंतुवा' पाठ माना है और हस्तलिखित प्रतियों में भौंतुवा ही है। यह युक्तप्रान्त के अधिकांश किसानों का व्यवहारिक शब्द है, रस्सी बनाने के लिये लकड़ी का एक यन्त्र बनाते हैं। इसको भौंती कहते हैं। इसका विशेष विवरण विनयकोश में देखो।

(२३०)

अकारन को हित और को है । बिरद गरीबनिवाज कौन को, भौंह जासु जन जोहै ॥१॥

बिना मतलब के दूसरे का हितकारी कौन है ? दीनों पर दया करने की किसकी नामवरी है जिसकी यह दास भौंह निहारे ? अर्थात् आप के सिवा ऐसा कोई नहीं है ॥१॥

छोटे बड़े चहत सब स्वारथ, जो बिरञ्चि बिरचो है। कोल कुटिल कपि भालु पालिबो, कौन कृपालहि सोहै ॥ २ ॥

छोटे से बड़े पर्य्यंत जिन्हें ब्रह्मा ने बनाया है सब अपना मतलब चाहते हैं । छली भील बन्दर और भालुओं का पालन करना किस दयालु को सुहाता है ? ॥२॥

काको नाम अनख आलस कहे, अघ अवगुनन्हि बिछोहै । किय तुलसी से सेवक संग्रह, सठ सब दिन साँइदोहै ॥ ३ ॥

क्रोध और काहिली से भी किसका नाम लेने से पाप और दुर्गुणों का बियोग होता है । तुलसी के समान दुष्ट सब दिन स्वामिद्रोही सेवक का जिन्हों ने संग्रह किया ॥३॥

(२३१)

और मेरे को है काहि कहिहौं । रङ्क राज ज्यौं मन को मनोरथ, जेहि सुनाइ सुख लहिहौं ॥ १ ॥

मेरे और कौन है किससे कहूँगा ? जैसे दरिद्री के मन में राज्य का मनोरथ जिसे सुना कर सुख पाऊँगा ॥१॥

मन कङ्गाल की इच्छा राज पाने की है । अभिलाषा सुन कर सारा जगत हँसेगा । आप दयालु हैं, मनोरथ कहने में आनन्द मिलता है कि कभी कृपा करेंगे तो आशा पूरी हो जायगी। यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

जमजातना जोनि सङ्कट सब, सहे दुसह अरु सहिहौं । मो को अगम सुगम तुम्ह को प्रभु, तउ फल चारि न चहिहौं ॥२॥

यमपुरी की दुर्दशा और सब योनियों के असहनीय सङ्कट सहा है और सहूँगा । यद्यपि चारों फल मुझको मिलना दुर्गम है और आप को उनका देना सहल है, तो भी मैं उन्हें नहीं चाहता ॥२॥

खेलन को खग मृग तरु किङ्कर, होइ राउर हौं रहिहौं ।
एहि नाते नरकहु सचु या विनु, परमपदहु दुख दहिहौं ॥ ३ ॥

आप के खिलवाड़ के पक्षी, मृग, वृक्ष और टहलू होकर मैं रहूँगा। इस नाते नरक में भी आनन्द पाऊँगा और इसके बिना मोक्ष पाने पर भी दुःख से जलूँगा ॥३॥

इतनी जिय लालसा दास के, कहत पानही गहि हौं ।
दीजै बचन कि हृदय आनिये, तुलसी पन निरबहिहौं ॥ ४ ॥

दास के जी में इतनी लालसा है उसको मैं आप की जूतियों को पकड़ कर कहता हूँ। वचन दीजिये अथवा मन में ले आइये कि तुलसी की इस प्रतिज्ञा को पूरी करूँगा ॥४॥

(२३२)

दीनबन्धु दूसरो कहँ पावौं । को तुम्ह बिनु पर पीर पाइहै,
केहि दीनता सुनावौं ॥ १ ॥

(आप के समान) दीनबन्धु दूसरा कहाँ पाऊँ, आप के बिना पराई पीड़ा कौन समझता है ? किसे दीनता सुनाऊँ ॥१॥

प्रभु अकृपाल कृपाल अलायक, जहँ जहँ चितहि डोलावौं ।
इहइ समुझि सुनि रहउँ मौनही, कहि भ्रम कहा गँवावौं ॥ २ ॥

हे कृपालु ! जहाँ जहाँ चित्त दौड़ाता हूँ सब स्वामी दया हीन और अयोग्य देखता हूँ। यही समझ कर और सुन कर चुप ही रहता हूँ कह कर मभाय किस लिये गँवाऊँ (अयोग्य स्वामियों से भलाई की आशा नहीं है) ॥२॥

गोपद बुड़िबे जोग करम करि, बातन्हि जलधि थहावौं ।
अति लालची काम किङ्कर मन, मुख रावरो कहावौं ॥ ३ ॥

गाय के खुर में डूबने योग्य कर्म करके बातों से समुद्र थहाता हूँ। मन काम की टहल करने का अत्यन्त लालची है और मुख से आप का दास कहाता हूँ ॥३॥

तुलसी प्रभु जिय की जानत सब, अपनो कछुक जनावौं ।
सोइ कीजै जेहि भाँति छाड़ि छल, द्वार परो गुन गावौं ॥ ४ ॥

हे नाथ ! आप तुलसी के मन की सब जानते हैं मैं अपना कुछ कह कर जनाता हूँ। वही कीजिये जिस प्रकार छल छोड़ कर दरवाज़े पर पड़ा आप का गुण गान करूँ ॥४॥

(२३३)

मनोरथ मन को एकहि भाँति । चाहत मुनि मन अगम सुकृत फल, मनसा अघ न अघाति ॥ १ ॥

मन का मनोरथ एक ही प्रकार है कि पुण्य फल तो ऐसा चाहता हूँ जो मुनियों के मन में दुर्गम है; किन्तु इच्छा पापों से तृप्त नहीं होती है ॥१॥

करम भूमि कलि जनम कुसङ्गट, मति बिमोह मद माँति । करत कुजोग कोटि क्यों पइयत, परमारथ पथ साँति ॥ २ ॥

कर्मभूमि में जन्म और कलियुग का नीच साथ पाकर बुद्धि अज्ञान के नशे में मतवाली करोड़ों कुसङ्ग करती है, फिर मैं ज्ञान-मार्ग का आनन्द कैसे पा सकता हूँ ॥२॥

सेइ साधु गुरु सुनि पुरान स्रुति, बूझेउँ राग बजे ताँति । तुलसी प्रभु सुभाव सुरतरु सों, ज्यों दरपन मुख काँति ॥ ३ ॥

साधु और गुरु की सेवा करके वेद-पुराणों को सुन कर ताँत बजते ही राग समझ गया। तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु रामचन्द्रजी का स्वभाव कल्पवृक्ष के समान है जैसे आइने में मुख की कान्ति झलकती है ॥३॥

ताँत बजते ही राग जान लिया कि सुकृती प्राणी ही अच्छी गति पाते हैं; किन्तु प्रभु का स्वभाव कल्पतरु के समान सब को सुख दाता है, जैसे दर्पण में जैसी आकृति सामने आती है वैसी दीखती है, उसी तरह जीव सन्मुख विमुख का जैसा भाव रखता है तदनुसार ही फल पाता है। उपमा, उदाहरण और प्रथम सम अलंकार की संसृष्टि है।

(२३४)

जनम गयो बादिहि बर बीति । परमारथ पाले न परेउ कछु, अनुदिन अधिक अनीति ॥ १ ॥

उत्तम जन्म व्यर्थ ही बीत गया, कुछ परलोकी कामों के पाले न पड़े दिनोदिन अत्याचार की बढ़ती है ॥१॥

खेलत खात लरिकपन गो चलि, जुवा जुवति लियो जीति । रोग बियोग सोग स्रम सङ्कुल, बड़ि बय बृथहि अतीति ॥ २ ॥

खाने और खेलने में लड़कपन चला गया और युवावस्था को युवती ने जीत लिया। रोग, वियोग, शोक और परिश्रम में बड़ी (मध्या) अवस्था व्यर्थ ही बीत गई ॥२॥

राग रोष इरिषा बिमोह बस, रुची न साधु समीति। कहे न सुनें गुन गन रघुबर के, भइ न राम-पद प्रीति॥ ३॥

ममत्व, क्रोध, ईर्ष्या और अज्ञान के वश साधु-मण्डली अच्छी न लगी। रघुनाथजी के गुणगण न कहे न सुने और न रामचन्द्रजी के चरणों में प्रीति हुई॥३॥

हृदय दहत पछितात अनल इव, सुनत दुसह भव-भीति। तुलसी प्रभु तेँ होइ सो कीजिय, समुझि बिरद की रीति॥ ४॥

असहनीय संसारी भय सुन कर पछतावे से हृदय अग्नि के समान जलता है। हे प्रभो! अपनी नामवरी की रीति समझ कर तुलसी के लिये जो आप से हो सके वह कीजिये॥४॥

पश्चात्ताप-उपमेय, अनल-उपमान, इव-वाचक और दहना साधारण धर्म 'पूर्णोपमा अलंकार' है।

(२३५)

ऐसहि जनम समूह सिराने। प्राननाथ रघुनाथ से प्रभु तजि, सेवत पाय बिराने॥ १॥

इसी तरह असंख्यों जन्म बीत गये, प्राणनाथ रघुनाथजी के समान स्वामी को छोड़ कर दूसरों के चरणों की सेवा करते फिरे॥१॥

जे जड़ जीव कुटिल कायर खल, केवल कलिमल साने। सूखत बदन प्रसंसत तिन्ह कहँ, हरि तेँ अधिक करि माने॥२॥

जो मूर्ख जीव कपटी, कादर दुष्ट केवल पाप में लिपटे हुए हैं उनकी प्रशंसा करते मुख सूखता था उन्हें भगवान से बढ़ कर माना॥२॥

सुख हित कोटि उपाय निरन्तर, करत न पाय पिराने। सदा मलीन पन्थ के जल ज्यौं, कबहुँ न हृदय थिराने॥ ३॥

सुख के लिये निरन्तर करोड़ों उपाय करते हुए पाँव नहीं पीड़ित हुए, तो भी हृदय सदा मलिन बना रहा रास्ते के पानी की तरह कभी स्थिर (स्वच्छ) न हुआ॥३॥

कभी हृदय सुखी न हुआ, इस बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे रास्ते का पानी पथिकों के आते जाते रहने से सदा गोहँड़िल बना रहता है थिराने नहीं पाता 'उदाहरण अलंकार' है।

यह दीनता दूरि करिबे कहँ, अमित जतन उर आने। तुलसी चित चिन्ता न मिटइ बिनु, चिन्तामनि पहिचाने॥ ४॥

यह दीनता दूर करने के लिये असंख्यों यत्न मन में ले आये; किन्तु फल कुछ न हुआ। तुलसीदासजी कहते हैं कि बिना चिन्तामणि (रामचन्द्रजी) के पहचाने चित्त की चिन्ता नहीं मिटती॥ ४॥

बिना चिन्तामणि की पहचान के चिन्ता मिटने का अभाव कथन 'प्रथम विनोक्ति अलङ्कार' है। द, क, च और न अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है।

(२३६)

जौं जिय जानकीनाथ न जाने। तौं सब करम धरम स्त्रमदायक, ऐसहि कहत सयाने॥ १॥

यदि जीव ने जानकीनाथ को नहीं जाना तो सब कर्म धर्म थकावट देनेवाले हैं, चतुर लोग ऐसा ही कहते हैं॥ १॥

जे सुर सिद्ध मुनीस जोगबिद, बेद पुरान बखाने। पूजा लेत देत पलटे सुख, हानि लाभ अनुमाने॥ २॥

जो देवता, सिद्ध, मुनीश्वर और योग के जाननेवाले (योगी) वेद पुराणों में बखाने हैं, वे पूजा लेते फिर उसके बदले में हानि लाभ विचार कर सुख देते हैं॥ २॥

'हानि लाभ अनुमाने' में व्यङ्ग है कि जब सोलह आने सत्कार कराते हैं तब कहीं आठ आने भर आनन्द देते हैं, वे निष्प्रयोजन आर्त्त की सहायता नहीं करते।

काको नाम धोखेहूँ सुमिरत, पातक पुञ्ज सिराने। बिप्र बधिक गज गीध कोटि खल, कवन के पेट समाने॥ ३॥

किसका नाम धोखे में भी स्मरण करने से पाप की राशि घट गई और ब्राह्मण अजामिल, व्याधा, हाथी, गिद्ध आदि करोड़ों दुष्ट किसके पेट में समाये ?॥ ३॥

मेरु से दोष दूरि करि जन के, रेनु से गुन उर आने। तुलसिदास तेहि सकल आस तजि, भजहि न अजहुँ अजाने॥४॥

सुमेरु पर्वत के समान दासों के दोष को दूर करके धूलि के बराबर गुण को हृदय में लाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—अरे मूर्ख! अब भी सारी आशाओं को छोड़ कर तू उन्हें नहीं भजता ?॥ ४॥

ऐसा उदार स्वभाव सुन कर और जान कर भी संसारी विषयों की अभिलाषा में मग्न है, रामभजन नहीं करता ? यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२३७)

काहे न रसना रामहिँ गावहि। निसि दिन पर अपवाद वृथा कत, रटि रटि राग बढ़ावहि ॥ १ ॥

जिह्वा ! तू रामचन्द्रजी का गुण क्यों नहीं गाती ? रातोदिन पराई निन्दा रट रट कर काहे को बेमतलब उसमें प्रीति बढ़ाती है ॥ १ ॥

'रटि रटि' रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश अलङ्कार' है।

नर-मुख सुन्दर मन्दिर पावन, बसि जनि ताहि लजावहि। ससि समीप रहि त्यागि सुधा कत, रबि-कर-जल कहँ धावहि ॥२॥

मनुष्य का मुख सुन्दर पवित्र मन्दिर है उसमें टिक कर उसको लज्जित मत कर। चन्द्रमा के समीप रह कर अमृत को छोड़ सूर्य्य के किरणों से उत्पन्न मिथ्या जल के लिये काहे को दौड़ती है ? ॥ २ ॥

उपमान मन्दिर का गुण नरमुख उपमेय में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलङ्कार' है। दूसरे चरण में असली कथन तो यह है कि राम नाम रूपी अमृत सुगमता से पान कर सकती है उसको छोड़ कर विषय रूपी मृगजल के लिये क्यों दौड़ती है ? इसे न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलङ्कार' है।

काम-कथा कलि-कैरव चन्दिनि, सुनत स्रवन दै भावहि। तिन्हहिँ हटकि कहि हरि कल कीरति, करन कलङ्क नसावहि ॥३॥

कलि रूपी कुमुद के लिये काम की कथा रूपी चाँदनी को कान लगा कर प्रीति से सुनती है। उन्हें रोक कर भगवान की सुन्दर कीर्त्ति कह कर कानों के कलङ्क को नसावे ॥ ३ ॥

कामकथा में चाँदनी का आरोप करके कलि में कुइँबेरे का इसलिये आरोपण किया कि वह चाँदनी पाकर विकसित होती है। यह 'परम्परित रूपक' है और अनुप्रास भी है।

जातरूप मति युक्ति रुचिर मनि, रचि रचि हार बनावहि। सरन सुखद रबिकुल-सरोज-रबि, राम नृपहि पहिरावहि ॥ ४ ॥

बुद्धि रूपी सुवर्ण और युक्ति रूपी सुन्दर मणियों के रच रच कर हार बनावे। (इस प्रकार छन्दों की माला) शरणागतों के सुखदायी सूर्य्यकुल रूपी सूर्य्य राजा रामचन्द्रजी को पहनावे ॥ ४ ॥

यहाँ भी परम्परित रूपक अलङ्कार है और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

बाद बिबाद स्वाद तजि भजि हरि, सरस चरित चित लावहि। तुलसिदास भव तरहि तिहूँ पुर, तू पुनीत जस पावहि ॥ ५ ॥

वाद विवाद का स्वाद छोड़ कर भगवान का भजन करके उनके रसीले चरित्र में मन लगावे। इससे तुलसीदास संसार-सागर से पार हो जायगा और तू तीनों लोकों में पवित्र यश पावेगी ॥ ५ ॥

(२३८)

आपनो हित रावरे सौं जौ सूझै। तौ जन तन पर अछत सीस सुधि, क्यौं कबन्ध ज्यौं जूझै ॥ १ ॥

अपनी भलाई आप से है यदि सूझ पड़े तो लोग शरीर पर सिर मौजूद रहने की सुध रहते कबन्ध की तरह काहे को मरें ? ॥ १ ॥

निज अवगुन गुन राम रावरे, लखि सुनि मति मन रूझै। रहनि कहनि समुझनि तुलसी की, को कृपाल बिनु बूझै ॥ २ ॥

हे रामचन्द्रजी ! अपना अवगुण और आप का गुण देख सुन कर बुद्धि तथा मन लगे (तो संसारी विपत्ति दूर हो जाय)। हे कृपालु ! तुलसी का स्वभाव, कहनूति और समझदारी आप के बिना कौन समझेगा ? ॥ २ ॥

(२३९)

जाको हरि दृढ़ करि अङ्ग करयो। सोइ सम सील पुनीत बेद बिद, बिद्या गुनन्हि भरयो ॥ १ ॥

जिसको भगवान ने दृढ़ करके अपना अङ्ग बनाया वही शान्त, शीलवान, पवित्र, वेदज्ञ, विद्या और गुणों से भरा है ॥१॥

उतपति पंडु-सुतन्ह की करनी, सुनि सतपन्थ डरयो। ते त्रयलोक पूज्य पावन जस, सुनि सुनि लोक तरयो ॥ २ ॥

पाण्डु पुत्रों की उत्पत्ति और करनी सुनकर सत्मार्ग डर जाता है। तीनों लोकों में पूजनीय हुए, उनका पवित्र यश सुन सुन कर लोग (संसार-समुद्र से) पार होते हैं ॥२॥

जो निज धरम बेद बोधित सो, करत न कछु बिसरयो। बिनु अवगुन कृकलास कूप मज्जत कर गहि उधरयो ॥ ३ ॥

जो वेदों के बतलाये अपना धर्म करने में (राजा नृग) कुछ नहीं भूले, वे बिना अपराध गिरगिट हो कर कुएँ में डूबे और भगवान ने हाथ पकड़ कर उद्धार किया ॥३॥

ब्रह्म-बिसिख ब्रह्मांड दहन छम, गरभ न नृपति जरयो ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिंन वध, सो पुनि फेन मरयो ॥ ४ ॥

जो ब्रह्मबाण ब्रह्माण्ड के जलाने में समर्थ है उससे राजा (परीक्षित) गर्भ में नहीं जले। जरा मरण से रहित, वज्र से भी नहीं मरनेवाला (नमुचि दैत्य) वह फिर समुद्र के फेन से मरा ॥४॥

राजा परीक्षित का वृत्तान्त विनयकोश में 'परीक्षित' शब्द देखो। विप्रचित्ति नामक दानव का पुत्र नमुचि पहले इन्द्र का मित्र था, इन्द्र ने उससे प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हें न दिन में, न रात में, न गीले अस्त्र से और न सूखे अस्त्र से मारूँगा। पीछे दैत्य ने इन्द्र का बल हर लिया तब भगवान की कृपा से इन्द्र ने सरस्वती और अश्विनीकुमारों से समुद्र की झाग के समान एक वज्रास्त्र लेकर उससे उसे मारा था।

विप्र अजामिल अरु सुरपति तें, कहा जो नहिं बिगरयो ।
उनको कियेउ सहाय बहुत उर, को सन्ताप हरयो ॥ ५ ॥

ब्राह्मण अजामिल और इन्द्र से क्या (बाकी रह गया) जो नहीं बिगड़ा? उनकी सहायता करके बहुत बड़ा हृदय का सन्ताप हर लिया ॥५॥

गनिका अरु कदरज तें जग महँ, अघ न करत उबरयो ।
तिनको चरित पवित्र जानि हरि, निज हृदि भवन धरयो ॥६॥

वेश्या और कदर्य से जगत में पाप करते कोई बच नहीं गया, उनके चरित्र को पवित्र मान कर भगवान ने अपने हृदय-मन्दिर में रक्खा ॥६॥

केहि आचरन भलो मानहु प्रभु, सो नहिं समुझि परयो ।
तुलसिदास रघुनाथ कृपा को, जोवत पन्थ खरयो ॥ ७ ॥

हे प्रभो! वह नहीं समझ पड़ता कि किस आचरण को आप अच्छा मानते हैं। इससे तुलसीदास खड़ा हुआ रघुनाथजी की कृपा का मार्ग जोहता है। ॥७॥

(२४०)

सोइ सुकृती सुचि साँचो जाहि राम तुम्ह रीझे। गनिका गीध बधिक हरिपुर गये, लेइ करसी प्रयाग कब सीझे ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी! जिस पर आप प्रसन्न हुए वही पुण्यात्मा, पवित्र और सच्चा है। वेश्या, गिद्ध और व्याधा वैकुंठधाम गये वे कण्डा (उपली) लेकर कब प्रयागराज में सीझे थे अर्थात् आग की आँच में तपे थे ॥१॥

कबहुँ न डगेउ निगम-मग तेँ पग, नृग जग जान जिते दुख पाये।
गज धौं कवन दिछित जेहि सुमिरत, लेइ सुनाभ बाहन तजि धाये ॥२॥

कभी वेदमार्ग से पाँव नहीं डिगा, संसार जानता है राजा नृग ने जितना दुःख पाया। न जाने हाथी ने कौन सी शिक्षा प्राप्त की थी जिसके स्मरण करते ही सुदर्शन चक्र लेकर और वाहन (गरुड़) को छोड़ कर दौड़े ॥२॥

सुर मुनि विप्र बिहाइ बड़े कुल, गोकुल जनम गोप गृह लीन्हौं।
बाँओं दियेउ बिभव कुरुपति को, भोजन जाइ बिदुर घर कीन्हौं ॥३॥

देवता, मुनि और ब्राह्मणों के बड़े कुल को छोड़ कर गोकुल में अहीर के घर जन्म लिये। दुर्योधन के ऐश्वर्य्य को पीठ देकर विदुर के घर जाकर भोजन किया ॥३॥

मानत भलो भाव भगतिहि तेँ, कछुक रीति पारथहि जनाई।
तुलसी सहज सनेह राम-बस, और सबइ जल की चिकनाई ॥ ४ ॥

भक्ति ही से अच्छी प्रीति मानते हैं, उसकी रीति कुछ अर्जुन को प्रकट दिखाई अर्थात् भक्तिवश उनके सारथी बने। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामचन्द्रजी स्वाभाविक स्नेह के वश में हैं और सब साधन पानी की चिकनाई है ॥४॥

यहाँ 'स्नेह' शब्द श्लेषार्थी है, प्रेम और घी तेल आदि चिकने पदार्थ। तैलादि की चिकनाहट देर तक कायम रहती है और पानी का चिकनापन लगाते भर गीला होगा सूखते ही रूखापन छा जाता है। श्लेष और दृष्टान्त का सन्देहसङ्कर है।

(२४१)

तब तुम्ह मोहू से सठन्हि हठि गति देते। कैसहुँ नाम लियेउ कोउ पाँवर, सुनि सादर आगे होइ लेते ॥ १ ॥

तब आप मुझ से दुष्टों को भी हठ करके मोक्ष देते, जब किसी तरह कोई अधम नाम लिया और उसको सुन कर आदर के साथ आगे होकर लेते होते ॥१॥

यदि आप नाम लेने से नीचों का सत्कार करते होते तो मुझ दुष्ट को भी गति देते। यह सन्दिग्ध प्रश्न है, नीचे प्रमाण देते हैं कि आप ने ऐसा किया है।

पाप खानि जिय जानि अजामिल, जमगन तमकि तये तेहि भे ते।
लियेउ छड़ाइ चले कर मीजत, पीसत दाँत गये रिस रेते ॥२॥

यमदूतों ने मन में अजामिल को पाप की खान जान कर क्रोध से उसको कष्ट पहुँचा कर भयभीत किया (उसने पुत्र का नाम नारायण पुकारा)। आपने छुड़ा लिया, वे हाथ मलते, दाँत पीसते, क्रोधित हो खाली चले गये ॥२॥

गौतमतिय गज गीध बिटप कपि, हैं नाथहि निक मालुम ते ते।
जिन्ह जिन्ह काज समाज साधु तजि, कृपासिन्धु तब उठि तहँ गे ते ॥ ३ ॥

गौतममुनि की स्त्री, (अहल्या) हाथी, गिद्ध, यमलार्जुन वृक्ष और सुग्रीव वानर इन सब के प्रति स्वामी की करनी अच्छी तरह मालूम है। जिन जिनके काम में—हे कृपासिन्धु ! साधु-समाज छोड़ कर तब तब वहाँ उठ कर गये थे ॥३॥

अजहुँ अधिक आदर एहि द्वारे, पतित पुनीत होत नहिं केते।
मेरे पासङ्गहु न पूजिहइँ, होइ गये हैं होनेहुँ खल जेते ॥ ४ ॥

अब भी इस दरवाज़े पर पापियों का बड़ा आदर है, न जाने कितने अधम पवित्र होते हैं। वे जितने दुष्ट हो गये, वर्तमान में हैं और आगे होनेवाले हैं (बराबर होना तो दूर रहा) मेरे पसँगे में भी नहीं तुल सकते ॥४॥

हौं अबलौं करतूति तिहारी, चितवत हुतो न रावरे चेते।
अब तुलसी पूतरो बाँधिहै, सहि न जात मोपै परिहास एते ॥५॥

अब तक मैं आप की करनी देख रहा था आप ख्याल नहीं करते हैं तो अब तुलसी पुतरा बाँधेगा, मुझ से इतनी बड़ी निन्दा (तौहीनी) नहीं सही जाती है ॥५॥

आपने असंख्यों पापियों को अपनाया; किन्तु तुलसी अधम का ख्याल नहीं करते हैं। अब यह हँसी मुझे असहन हो रही है, पुतरा बाँध कर आप की इस कञ्जूसी का ढोल पीटता फिरूँगा। 'पूतरो' शब्द का विवरण विनयकोश में देखो।

(२४२)

तुम्ह सम दीनबन्धु न दीन कोउ, मो सम सुनहु नृपति रघुराई।
मो सम कुटिलमौलिमनि नहिं जग, तुम्ह सम हरि न हरन कुटिलाई ॥ १ ॥

हे राजा रघुनाथजी ! सुनिये, आप के समान दीनबन्धु और मेरे बराबर दीन कोई नहीं है। हे हरे ! मेरे बराबर संसार में कोई पाप शिरोमणि नहीं है और आप के समान कोई पाप-हारी नहीं है ॥१॥

आप दीनों के रक्षक और मैं दीन हूँ, आप पापनाशक और मैं पाप शिरोमणि हूँ। यथा-योग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है। इस पद के अन्त तक इसी अलंकार की प्रधानता है। अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

हौं मन बचन करम पातक रत, तुम्ह कृपाल पतितन्ह गतिदाई। हौं अनाथ तुम्ह प्रभु अनाथ-हित, चित यह सुरति कबहुँ नहिं जाई ॥ २ ॥

मैं मन वचन और कर्म से पाप में तत्पर हूँ और आप कृपा के स्थान पापियों को मोक्ष देनेवाले हैं। हे प्रभो! आप अनाथों के हितकारी हैं और मैं अनाथ हूँ, यह स्मरण मन से कभी नहीं जाता अर्थात् इसकी सुधि आठों पहर बनी रहती है ॥२॥

हौं आरत आरति नासन तुम्ह, कीरति निगम पुरानन्हि गाई। हौं सभीत तुम्ह हरन सकल भय, कारन कवन कृपा बिसराई ॥३॥

मैं दुखी हूँ आप दुःख नसानेवाले हैं आप की कीर्त्ति वेद पुराणों ने गाई है। मैं भयभीत हूँ और आप सारे भय के हरनेवाले हैं, क्या कारण है जो कृपा भुला दी है? ॥३॥

तुम्ह सुखधाम राम स्रम भञ्जन, हौं अति दुखित त्रिबिध स्रम पाई। यह जिय जानि दासतुलसी कहँ, राखहु सरन समुझि प्रभुताई ॥ ४ ॥

हे रामचन्द्रजी! आप सुख के मन्दिर और थकावट के नाश करनेवाले हैं, मैं तीनों प्रकार के परिश्रम से थक कर अत्यन्त दुःखित हूँ। यह जी में जान अपनी बड़ाई को समझ कर तुलसीदास को शरण में रखिये ॥४॥

(२४३)

इहइ जानि चरनन्हि चित लायो। नाहिंन नाथ अकारन को हित, तुम्ह समान पुरान स्रुति गायो ॥ १ ॥

यही जान कर चरणों में चित लगाया कि आप के समान निष्प्रयोजन भलाई करनेवाला स्वामी नहीं है, वेद पुराणों ने गाया है ॥१॥

पुराण वेदों के कथन का प्रमाण देना 'शब्दप्रमाण अलंकार' है।

जननि जनक सुत दार बन्धु जन, भये बहुत जहँ जहँ हौं जायो। सब स्वारथ हित प्रीति कपट चित, काहू नहिं हरिभजन सिखायो ॥ २ ॥

माता, पिता, पुत्र, स्त्री, भाई और कुटुम्बी जन जहाँ जहाँ मैंने जन्म लिया बहुतेरे हुए। सब अपने मतलब के लिये मन में छल की प्रीति की, किसी ने हरिभजन नहीं सिखाया ॥२॥

सुर मुनि मनुज दनुज अहि किन्नर, मैं तनु धरि सिर काहि न नायो। जरत फिरत त्रयताप पापबस, काहु न हरि करि कृपा जुड़ायो ॥ ३ ॥

देवता, मुनि, मनुष्य, दानव, नाग और किन्नर मैंने शरीर धारण करके किसको सिर नहीं नवाया। पाप के वश तीनों तापों से जलता फिरा, किसी ने उसे दूर कर कृपा करके शीतल नहीं किया ॥३॥

जतन अनेक किये सुख कारन, हरि-पद विमुख सदा दुख पायो। अब थाकेउँ जलहीन नाव ज्यों, देखत विपतिजाल जग छायो ॥ ४ ॥

सुख के लिये नाना उपाय किये किन्तु भगवान के चरणों से विमुख रह कर सदा दुःख ही पाया। अब बिना पानी के नाव की तरह थक (टिक) गया, देखता हूँ कि संसार विपत्ति जाल से घिरा है ॥४॥

जगत विपत्ति जाल से ढँका है इसमें सुख नहीं, देखकर टिक गया हूँ आगे चलने की हिम्मत नहीं पड़ती। इसकी विशेष से समता दिखाना कि जैसे बिना जल के नाव नहीं चल सकती 'उदाहरण अलंकार' है।

मो कहँ नाथ बूझिये यह गति, सुखनिधान निज पति बिसरायो। अब तजि रोष करहु करुना हरि, तुलसिदास सरनागत आयो ॥ ५ ॥

हे नाथ! मुझ को यह गति विचारना उचित है, मैं ने सुख के स्थान अपने स्वामी को भुला दिया। भगवन्! अब क्रोध त्याग कर दया कीजिये, तुलसीदास आप की शरण आया है ॥५॥

(२४४)

ऐहि तेँ मैं हरि ज्ञान गँवायो। परिहरि हृदय-कमल रघुनाथहि, बाहेर फिरत बिकल भय धायो ॥ १ ॥

हे हरे! इसी से मैं ने ज्ञान खो दिया कि हृदय-कमल में स्थित रघुनाथजी को छोड़कर भय से व्याकुल बाहर दौड़ता फिरता हूँ ॥१॥

ज्यौं कुरङ्ग निज अङ्ग रुचिर मद, अति मतिहीन मरम नहिँ पायो। खोजत गिरि तरु लता भूमि बिल, परम सुगन्ध कहाँ तेँ आयो ॥२॥

जैसे अत्यन्त बुद्धिहीन हरिण अपने शरीर के मनोहर कस्तूरी का भेद न पा कर पर्वत, वृक्ष, लता, धरती और बिल ढूँढ़ता है कि यह अत्युत्तम सुगन्ध कहाँ से आ रही है ॥२॥

हृदय में स्थित ईश्वर को भूल कर मैं दुनियाँ में खोजता फिरता हूँ, इस बात की विशेष से समता दिखाना कि जैसे कस्तूरी मृग के नाभि ही में रहती है पर वह भ्रम से बाहर ढूँढ़ता फिरता है 'उदाहरण अलंकार' है।

ज्यौं सर बिमल बारि परिपूरन, ऊपर कछु सेवार तृन छायो। जारत हियो ताहि तजि हौं सठ, चाहत एहि बिधि तृषा बुझायो ॥३॥

जैसे तालाब निर्मल जल से भरा है; किन्तु ऊपर कुछ सेवार और घास से ढँका हो। मैं मूर्ख उसको छोड़ कर हृदय जलाता हूँ और इसी तरह (बिना जल के) प्यास बुझाना चाहता हूँ ॥३॥

ब्यापित त्रिबिध ताप तन दारुन, ता पर दुसह दरिद्र सतायो। अपने धाम नाम सुरतरु तजि, बिषय बबूर बाग मन लायो ॥४॥

शरीर में तीनों तापों की भीषणता फैली है उस पर असहनीय दरिद्र सताता है। अपने घर में राम नाम रूपी कल्पवृक्ष त्याग कर मन रूपी भूमि पर विषय रूपी बबूर का बाग़ लगाता हूँ, अथवा विषय रूपी बबूर के बाग़ में मन लगाये हूँ ॥४॥

दुःख के लिये तीनों ताप पर्याप्त हैं, उस पर दरिद्र का सताना 'द्वितीय समुच्चय अलंङ्कार' है। हृदय पर घर का आरोप, रामनाम पर कल्पवृक्ष का, मन पर भूमि का और विषयों पर बबूर के बग़ीचे का आरोपण 'परम्परित रूपक अलंकार' है। अनुप्रास भी है।

तुम्ह सम ज्ञान निधान मोहि सम, मूढ़ न आन पुरानन्हि गायो। तुलसिदास प्रभु यह बिचारि जिय, कीजे नाथ उचित मन भायो ॥ ५ ॥

आप के समान ज्ञान-निधान और मेरे समान मूर्ख पुराणों ने दूसरा नहीं कहा है। हे प्रभो! जी में यह विचार कर स्वामी के मन में जो उचित जान पड़े तुलसीदास के लिये वही कीजिये ॥५॥

(२४५)

मोहि मूढ़ मन बहुत बिगोयो। या के लिये सुनहु करुनानिधि, मैँ जग जनम जनम दुख रोयो ॥ १ ॥

मूर्ख मन ने मुझे बहुत ही नष्टभ्रष्ट किया, हे दयानिधे ! सुनिये, इसके लिये मैं जन्म जन्मान्तर संसार में दुःख से रोया ॥१॥

सीतल मधुर पियूष सहज सुख, निकटहि रहत दूरि जनु खोयो । बहु भाँतिन्ह स्रम करत मोह बस, बृथहि मन्दमति बारि बिलोयो ॥२॥

शीतल, मधुर, अमृत रूपी सहजानन्द के समीप रहता है; परन्तु ऐसा मालूम होता है मानों उसको दूर खो दिया हो। अज्ञानता के अधीन यह मन्दबुद्धि पानी मथने में बहुत तरह परिश्रम करता है ॥२॥

असली कथन तो यह है कि अमृत के समान मधुर सहजानन्द अपने हृदय में वर्तमान है उसको मानों दूर खो दिया 'उक्तविषया वस्तूत्प्रेक्षा अलंकार' है। विषय रूपी जल को मथ कर सुख रूपी घृत निकालना चाहता है; किन्तु जैसे पानी मथने से घी नहीं मिलता वैसे विषयों में सुख नहीं 'ललित और दृष्टान्त' का सन्देहसङ्कर है।

करम कीच जिय जानि सानिं चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो। तृषावन्त सुरसरि बिहाइ सठ, फिरि फिरि बिकल अकास निचोयो ॥ ३ ॥

कर्म रूपी कीचड़ को जी में जान कर उसी में चित्त को सान कर कुटिल मैले से मैला धोना चाहता है। प्यासा होकर गङ्गाजी को छोड़ मूर्ख बार बार व्याकुलता से आकाश निचोड़ता है ॥३॥

सुख रूपी जल की प्यास रामभक्ति रूपी गङ्गा से मिट सकती है, आकाश (शून्य) निचोड़ने से नहीं 'ललित अलंकार' है। अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

तुलसिदास प्रभु कृपा करहु अब, मैं निज दोष कछू नहिं गोयो । डासतही गइ बीति निसा सब, कबहुँ न नाथ नींद भरि सोयो ॥४॥

हे प्रभो ! मैंने अपना दोष कुछ नहीं छिपाया अब तुलसीदास पर कृपा कीजिये। सारी रात बिछौना बिछाते ही बीत गई; परन्तु हे नाथ ! नींद भर कभी नहीं सोये ॥४॥

प्रस्तुत कथन तो यह है कि उपाय करते सारी उमर बीत गई, किन्तु सुख न मिला। इसको सीधे न कह कर प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है।

(२४६)

लोक बेदहू बिदित बात सुनि समुझिय, मोह तें बिकल मति थिति न लहति। छोटे बड़े खोटे खरे मोटेऊ दूबर राम, रावरे निबाहे सबही की निबहति ॥ १ ॥

लोक और वेद में भी प्रसिद्ध बात सुन कर समझ में आती है कि अज्ञान से व्याकुल हुई बुद्धि विश्राम का स्थान नहीं पाती। हे रामचन्द्रजी! छोटे, बड़े, बुरे, भले, मोटे और दुबले सभी की आप ही के निबाहने से निबहती है ॥१॥

होती जो आपने बस रहती एकहि रस, दुनी न हरष सोक सासति सहति। चहति जो जोई जोई लहति सो सोई सोई, केहू भाँति काहू की न लालसा रहति ॥ २ ॥

यदि (बुद्धि) अपने वश में होती तो एक ही रस रहती, दुनियाँ के हर्ष और शोक की दुर्दशा न सहती। जो जो जिस वस्तु को चाहती वह वही वही पाती, किसी तरह कोई प्रकार की अभिलाषा बाक़ी न रहती ॥२॥

करम सुभाव काल गुन दोष जीव जग, माया तें सो सभै भौंह चकित चहति। ईसनि दिगीसनि जोगीसनि मुनीसनिहूँ, छोड़ति छोड़ाये तें गहाये तें गहति ॥ ३ ॥

कर्म, स्वभाव, काल, गुण, दोष, जीव, और जगत ये सब माया से डरते हैं, वह माया चौकन्नी होकर आप के भौंह का रुख देखती है। ईश्वरों (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) दिक्पालों, योगेश्वरों और मुनीश्वरों को आप के छुड़ाने से छोड़ती तथा पकड़ाने से पकड़ती है ॥ ३ ॥

सतरञ्ज को सो साज काठ को सबै समाज, महाराज बाजी रची प्रथम न हति। तुलसी प्रभु के हाथ हारिबो जीतिबो नाथ, बहु बेष बहु मुख सारदा कहति ॥ ४ ॥

इसका सामान शतरञ्ज के समान सब समाज काठ का (जड़) है, महाराज! इस खेल को आप ने पहले (अनादि काल से) बनाया है, मेरी हार न कराइये। हे नाथ! तुलसी (जीव) का जीतना और हारना आप के हाथ में है, इसको अनेक रूप तथा अनन्त मुखों से सरस्वती कहती हैं ॥ ४ ॥

यहाँ माया के और शतरञ्ज के खेल में समान रूप से एकरूपता दिखाना 'सम अभेद रूपक अलङ्कार' है। माया और जीव दोनों ओर के खिलाड़ी हैं! संसार बिसात है। शतरञ्ज में छः प्रकार के मोहरे होते हैं, यथा—बादशाह, वज़ीर, ऊँट, घोड़ा, हाथी और प्यादा। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य माया की ओर के तथा ज्ञान, वैराग्य, जप, तप, संयम, नेम ये जीव के तरफ़ के मोहरे हैं। 'हति' शब्द यहाँ हार, मात वा बँधुवा होने का बोधक है 'थी' का नहीं। पं० रामेश्वर भट्ट ने 'प्रथम न हति' का अर्थ प्रथम नहीं थी किया है, क्या नहीं थी माया अथवा संसार? पर ये दोनों अनादि हैं। यह अर्थ ही भ्रान्ति मूलक प्रतीत होता है।

(२४७)

राम जपु जीह जानि प्रीति सौं प्रतीति मानि, राम नाम जपे जइहै जिय की जरनि । राम नाम सौं रहनि राम नाम की कहनि, कुलि कलिमल सोक सङ्कट हरनि ॥ १ ॥

अरी जिह्वा ! तू प्रीति से विश्वास मान कर राम नाम जप, राम नाम जपने से जी की जलन जाती रहेगी । राम नाम से सम्बन्ध और राम नाम का कहना समस्त पाप, शोक और सङ्कट का हरनेवाला है ॥ १ ॥

राम नाम के प्रभाउ पूजियत गनराउ, किये न दुराउ कही आपनी करनि । सेतु भवसागर को कासिहू सुगति हेतु, जपत सादर सम्भु सहित घरनि ॥ २ ॥

राम नाम के प्रताप से गणेशजी प्रथम पूजनीय हुए, उन्होंने अपनी करनी का छिपाव नहीं किया (ब्रह्मा जी से साफ़ साफ़) कह दिया । संसार-समुद्र के लिये पुल रूप, काशी में भी मोक्ष का कारण जिसको पार्वतीजी के सहित शङ्करजी आदर के साथ जपते हैं ॥ २ ॥

बालमीक व्याध होइ अगाध अपराध निधि, मरा मरा जपे पूजें मुनि अमरनि । रोकेउ बिन्ध्य सोखेउ सिन्धु घटजहु नाम बल, हारेउ हिय खारो भयेउ भूसुर डरनि ॥ ३ ॥

वाल्मीकि बहेलिया होकर पाप के अथाह समुद्र थे, उन्होंने मरा मरा (उलटा नाम) का जप किया जिससे मुनि और देवताओं ने उनकी पूजा की । नाम के बल से अगस्त्य मुनि ने विन्ध्याचल को रोक दिया और समुद्र को सोख लिया, वह हृदय में हार कर ब्राह्मण के अपार भय से खारा हो गया ॥ ३ ॥

नाम महिमा अपार सेष सुक बार बार, मति अनुसार बुध वेदहू बरनि । नाम रति कामधेनु तुलसी को कामतरु, राम नाम है बिमोह तिमिर तरनि ॥ ४ ॥

नाम की अनन्त महिमा बार बार बुद्धि के अनुसार शेषजी, शुकदेव मुनि, विद्वान और वेदों ने भी वर्णन की है । तुलसी के लिये नाम की प्रीति कामधेनु और कल्पलता है, अज्ञान रूपी अंधकार के लिये राम नाम सूर्य्य रूप है ॥ ४ ॥

मुनि, विद्वान, शेष और वेद के वचन का प्रमाण वर्णन 'शब्दप्रमाण अलङ्कार' है। कामधेनु और कल्पवृक्ष उपमान के गुण को नाम में प्रीति-उपमेय में स्थापन करना 'द्वितीय निदर्शना अलङ्कार' है। अज्ञान में अन्धकार का आरोप करके राम नाम में सूर्य्य का आरोपण इस लिये किया गया कि सूर्य्य अन्धेरे का नाश करते हैं 'परम्परित रूपक अलङ्कार' है। अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश भी है। इस प्रकार यहाँ पाँचों की संसृष्टि है।

(२६८)

पाहि पाहि राम पाहि रामभद्र रामचन्द्र, सुजस स्रवन सुनि आयेउँ हौं सरन। दीनबन्धु दीनता दरिद्र दाह दोष दुख, दारुन दुसह दुर दुरित दरन ॥ १ ॥

हे कल्याण मूर्त्ति रामचन्द्रजी ! मैं कान से आप का सुयश सुन कर शरण आया हूँ, आप राम (तीनों लोकों को रमानेवाले) हैं मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये, मुझे बचाइये। आप दीनों के सहायक बन्धु, आर्त्तभाव, कँगलई की ज्वाला, भीषण दोष-दुःख और कठिन निषिद्ध पाप नाश करनेवाले हैं ॥ १ ॥

र, स और द अक्षरों की बार बार आवृत्ति में अनुप्रास है। 'पाहि' शब्द में भय की विप्सा और पुनरुक्तिप्रकाश का सन्देहसङ्कर है।

जब जब जग जाल व्याकुल करम काल, सब खल भूप भये भूतल भरन। तब तब तनु धरि भूमि भार दूर करि, थापे सुर मुनि साधु आस्रम बरन ॥ २ ॥

जब जब जगत में पृथ्वी के पालनेवाले दुराचारी राजा हुए और उनके राज्यकाल में कुकर्म तथा फ़रेब से सारी प्रजा व्याकुल हुई, तब तब शरीर धारण करके आपने धरती का बोझा दूर कर देवता, मुनि, साधुओं को बसाया और आश्रम वर्ण के मिटे धर्म को स्थापन किया ॥२॥

बेद लोक सब साखी काहू की रती न राखी, रावन की बन्दि लागे अमर मरन। ओक देइ बिसोक किये लोकपति लोकनाथ, राम राज भयेउ धर्म चारिहू चरन ॥ ३ ॥

वेद और लोक सब साक्षी है कि रावण ने किसी की प्रतिष्ठा नहीं रक्खी, उसकी क़ैद में देवता मरने लगे। लोकनाथ ! लोकपालों को शोक रहित करके आपने उन्हें स्थान देकर बसाया, रामराज्य में धर्म चारों चरण (सत्य, शौच, दया, दान) से परिपूर्ण हुआ ॥ ३ ॥

'अमर मरन' में विरोधाभास अलङ्कार है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सिला गुह गीध कपि भील भालु रातिचर, ख्यालही कृपाल कीन्हे तारन तरन । पील उद्धरन सीलसिन्धु ढील देखियत, तुलसी पै चाहत गलानिही गरन ॥ ४ ॥

पत्थर, गुहा, गिद्ध, बन्दर, भील, भालु और राक्षसों को कृपालु (रामचन्द्रजी) ने खेल ही में तारण तरण बना दिया । हे शीलसिन्धु हाथी के उद्धार करनेवाले ! परन्तु तुलसी ढिलाई देख कर मनस्ताप हो से गलना चाहता है (देरी क्यों हो रही है) ॥ ४ ॥

(२४९)

भली भाँति पहिचाने साहेब जहाँ लौं जग, जूड़े होत थोरेही औ थोरेही गरम । प्रीति न प्रतीति नीतिहीन रीति के मलीन, मायाधीन सब किये कालहू करम ॥ १ ॥

जहाँ तक संसार में मालिक हैं मैंने अच्छी तरह उनको पहचान लिया कि वे थोड़े ही में शीतल और थोड़े ही में गरम होते हैं । उनमें प्रीति और विश्वास नहीं है, नीति से रहित तथा व्यवहार के मैले हैं सब को माया, काल और कर्म ही ने अधीन कर रक्खा है ॥१॥

दानव दनुज बढ़े महामूढ़ मूड़ चढ़े, जीते लोकनाथ नाथ बलनि भरम । रीझि रीझि दिये बर खीझि खीझि घाले घर, आपने निवाजे की न काहू के सरम ॥ २ ॥

हे नाथ ! महामूर्ख दानव और राक्षस बढ़े वे लोकपालों को जीत कर बल के धोखे सिर पर चढ़ गये अर्थात् अपने बराबर किसी को शूरवीर नहीं समझा । देवताओं ने प्रसन्न हो होकर वर दिया फिर क्रोध कर करके उनके घरों का नाश किया, किसी को अपनी नवाज़िश पर शरम न आई ॥२॥

'रीझि रीझि और खीझि खीझि' में पुनरुक्तिप्रकाश है । द, म, न और क अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास की संसृष्टि है ।

सेवा सावधान तू सुजान समरथ साँचो, सदगुन धाम राम पावन परम । सुमुख सुरुख एकरस एकरूप तोहि, बिदित बिसेष घट घट के मरम ॥ ३ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आप सेवा करनेवाले की ओर से सावधान अर्थात् कृपा करके फिर क्रोध नहीं करते, चतुर, समर्थ, सत्यप्रतिज्ञ, अच्छे गुणों के स्थान और अत्यन्त पवित्र हैं। सुन्दर मुख, अच्छे चेहरेवाले, समान और एक ही रूपवाले आप को प्राणी प्राणी के मन का हाल अच्छी तरह से ज़ाहिर है ॥३॥

तो सौँ नतपाल न कृपाल न कँगाल मो सौँ, दया मैँ बसत देव सकल धरम । राम कामतरु छाँह चाहइ रुचि मन माँह, तुलसी बिकल बलि कलि कुधरम ॥ ४ ॥

हे देव ! आप के समान कृपालु दीनपालक कोई नहीं है और मेरे बराबर कोई कङ्गाल नहीं है, सम्पूर्ण धर्म दया में बसते हैं। हे रामचन्द्रजी ! बलि जाता हूँ, कलि के अधर्म रूपी घाम से तुलसी व्याकुल है, आप कल्पवृक्ष रूप हैं इसलिये मन में अभिलाषा छाँह की है (अपनी छाया में रख कर शीतल कीजिये) ॥४॥

आप दीनपालक दयालु हैं और मैं कङ्गाल हूँ, आप कल्पवृक्ष हैं और मैं कलि के अधर्म मय घाम से उत्तप्त छाँह का आकांक्षी हूँ। यथा योग्य का सङ्ग वर्णन 'प्रथम सम अलंकार' है। रामचन्द्रजी में कल्पवृक्ष का आरोप करके अधर्म में घाम से तपे हुए का आरोपण इस-लिये किया कि धूप से परेशान मनुष्य छाया में सुखी होता है 'परम्परित रूपक' है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

(२५०)

बार बार प्रभुहि पुकारि के खिझावतो न, जौपै मो को होतो कहूँ ठाकुर ठहर। आलसी अभागे मो से तैँ कृपाल पाले पोसे, राजा मेरे राजाराम अवध सहर ॥ १ ॥

हे प्रभो ! यदि मुझको कहीं ठिकाना या कोई मालिक होता तो बार बार आप को पुकार कर न खिझाता। हे कृपालु ! मुझ से काहिल अभागे का पालन पोषण आप ही ने किया इस से मेरे राजा अयोध्या शहर के राजा रामचन्द्रजी हैं ॥१॥

सेये न दिगीस न दिनेस न गनेस गौरि, हित कै न माने बिधि हरिहू न हर। राम नामहीँ सौँ जोग छेम नेम प्रेम पन, सुधा सौँ भरोसो एहु दूसरो जहर ॥ २ ॥

मैं ने न इन्द्रादि दिक्पाल, न सूर्य्य, न गणेश, न पार्वती की सेवा की और न प्रीति करके ब्रह्मा को न विष्णु ही को माना। राम नाम ही से सम्बन्ध, कल्याण, नेम और प्रेम की प्रतिज्ञा निबाहता हूँ, यही भरोसा अमृत के समान है और दूसरा विष है ॥२॥

समाचार साथ के अनाथ नाथ का सौं कहउँ, नाथही के हाथ सब चोरऊ पहर। निज काज सुरकाज आरत के काज राम, बूझिये बिलम्ब कहा करत गहर ॥ ३ ॥

हे अनाथों के नाथ! साथियों का हाल किससे कहूँ, चोर भी और पहरेदार भी सब स्वामी ही के हाथ में हैं। हे रामचन्द्रजी! अपने भक्तों के कार्य्य में, देवताओं के काम में और दुखीजनों के कार्य में देरी नहीं विचारते थे, फिर क्यों विलम्ब करते हो ॥३॥

रीति सुनि रावरी प्रतीति प्रीति रावरे सौं, डरत हौं देखि कलिकाल को कहर। कहेही बनैगी कै कहाये बलिजाउँ राम, तुलसी तू मेरो हारि हिये न हहर ॥ ४ ॥

आप की रीति सुन कर प्रीति और विश्वास आप ही से है; किन्तु कलिकाल का अत्याचार देख कर डरता हूँ, (यह अन्तर डालने की ताक में है)। हे रामचन्द्रजी! मैं आप की बलि जाता हूँ, आप के कहने ही से बनेगा या (स्वयम् न कहिये तो हनूमानजी के द्वारा) कहला दीजिये कि तुलसी तू मेरा है हृदय में हारी मान कर भयभीत न हो ॥४॥

(२५१)

रावरो सुभाव गुन सील महिमा प्रभाव, जानेउ हर हनूमान लखन भरत। जिनके हिये सुथल रामप्रेम-सुरतरु, लसत सरस सुख फूलत फरत ॥ १ ॥

आप के स्वभाव, गुण, शील, महिमा और प्रताप को शिवजी, हनूमानजी, लक्ष्मणजी तथा भरतजी ने जाना, जिनके हृदय रूपी सुन्दर भूमि पर रामप्रेम रूपी कल्पवृक्ष शोभायमान रसीला सुख रूपी फूल और फल फरता है ॥१॥

परम्परति रूपक और अनुप्रास की संसृष्टि है।

आपु माने स्वामी कै सखा सुभाय भाय पति, ते सनेह सावधान रहत डरत। साहेब सेवक रीति प्रीति परमिति नीति, नेम को निबाह एक टेक न टरत ॥ २ ॥

आप (शिवजी को) स्वामी और मित्र करके मानते हैं वे (शङ्करजी आप को) स्वाभाविक भाव से अपना मालिक जान कर स्नेह में सचेत डरते रहते हैं। स्वामी सेवक की रीति प्रीति की मर्यादा, उचित व्यवहार और नियम के निर्वाह की निश्चित टेक नहीं टलती ॥२॥

सुक सनकादि प्रहलाद नारदादि कहैं, राम की भगति बड़ी बिरति निरत। जाने बिनु भगति न जानिबो तिहारे हाथ, समुझि सयाने नाथ पगनि परत ॥ ३ ॥

शुकदेव, सनकादिक, प्रहलाद और नारद आदि कहते हैं कि रामचन्द्रजी की भक्ति बड़े ही वैराग्यवान को प्राप्त होती है। विना (त्याग के) जाने भक्ति नहीं और उसका जानना आप के हाथ में है, हे नाथ! ऐसा समझ कर चतुर लोग आप के पाँवों पर पड़ते हैं ॥३॥

छमत बिमत न पुरान मत एक पथ, नेति नेति नेति नित निगम करत। औरन की कहा चली एकइ बात भले भली, राम नाम लिये तुलसीहू से तरत ॥ ४ ॥

छओं शास्त्रों का सिद्धान्त भिन्न भिन्न, पुराणों के मत से एक रास्ता नहीं है और वेद नित्य ही इति नहीं, अन्त नहीं, और नहीं करते हैं। दूसरे की क्या चली है, एक ही बात भले अच्छी है कि राम नाम लेने से तुलसी के समान (पतित) भी तर जाते हैं ॥ ४ ॥

जब शास्त्र, पुराण और वेदों का सिद्धान्त एक नहीं, तब किसके कहने पर विश्वास किया जाय? एक ही बात सब से अच्छी है कि राम नाम के स्मरण से तुलसी के सदृश पापी पार जाते हैं इससे राम नाम जपो, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के समान तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२५२)

बाप आपने करत मेरी घनी घटि गई। लालची लबार की सुधारिये बारक बलि, रावरी भलाई सबही की भली भई ॥१॥

हे पिताजी! अपने करतव से मेरी बड़ी अवनति हुई। बलि जाता हूँ, इस लोभी और झूठे की बात एक बार सुधारिये, आप की भलाई से सभी का भला हुआ है ॥ १ ॥

रोग बस तनु कुमनोरथ मलिन मन, पर अपबाद मिथ्याबाद बानी हई। साधन की ऐसी बिधि साधन बिना न सिधि, बिगरी बनावइ कृपानिधि की कृपा नई ॥ २ ॥

शरीर रोग के वश और मन बुरे मनोरथों से मैला हो रहा है, पराई निन्दा और झूठ बोलने से वाणी नष्ट हो गई। साधन की ऐसी विधि है और विना साधन के सिद्धि नहीं होती, हे कृपानिधान! आप की नवीन कृपा विगड़ी को बनाती है ॥ २ ॥

पतित पावन हित आरत अनाथनि को, निराधार को अधार दीनबन्धु दई। इनमैं एकउ न भयो बूझि न जूझे न जयो, ताही ते त्रिताप तयो लुनियत बई॥ ३॥

आप पतितों को पवित्र करनेवाले, दुखी अनाथों के हितकारी, निराश्रितों के आधार, दीनों के सहायक और ईश्वर हैं। मैं इनमें एक भी न हुआ, न विचार से लड़ कर प्राण खोया और न (कामादि शत्रुओं को) जीता इसी से तीनों तापों से जला जो बोया था वह लवता हूँ॥ ३॥

स्वाँग सूधो साधु को कुचाल कलि तैं अधिक, परलोक फीकी मति लोक रङ्ग रई। बड़े कुसमाज राज आज लौं जो पाये दिन, महाराज केहू भाँति नाम ओट लई॥ ४॥

वेष तो सीधे साधु का और पाजीपन कलियुग से बढ़ कर करता हूँ, पारलौकिक कामों में बुद्धि नीरस रहती और संसारी रंग में सराबोर हुई है। महाराज! इस बुरे समाज (कलि) के राज्य में किसी तरह आज तक बचाव के दिन मिले वह नाम की आड़ लेने से॥ ४॥

राम नाम को प्रताप जानियत नीके आप, मो को गति दूसरी न बिधि निरमई। खीझबे लायक करतब कोटि कोटि कटु, रीझबे लायक तुलसी की निलजई॥ ५॥

राम नाम के प्रताप को आप अच्छी तरह जानते हैं मुझ को ब्रह्मा ने दूसरा सहारा नहीं बनाया। अप्रसन्न होने योग्य मेरे अनिष्ट करतब कोटि कोटि हैं और प्रसन्न होने लायक एक तुलसी की निर्लज्जता है॥ ५॥

अधर्मी पापी होकर धर्मात्मा भक्तों की तरह बातें करता हूँ, वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२५३)

राम राखिये सरन राखि आये सब दिन। बिदित त्रिलोक तिहुँ काल न दयाल दूजो, आरत प्रनतपाल को है प्रभु बिन॥१॥

हे रामचन्द्रजी! मुझे अपनी शरण में रखिये आप सब दिन से (दीनों को शरण में, रखते आये हैं। तीनों लोक और तीनों काल में आप के सिवा दुखी शरणागतों का पालनेवाला दूसरा दयालु कौन है? (कोई नहीं)॥ १॥

लाले पाले पोषे तोषे आलसी अभागी अघी, नाथ पै अनाथनि सौं भये न उरिन । स्वामी समरथ ऐसो हौं तिहारो जैसो तैसो, काल चाल हेरि होत हिये घनी घिन ॥ २ ॥

हे नाथ! आलसी, भाग्य हीन पापियों को स्नेह से पालन पोषण कर उन्हें सन्तुष्ट किये, परन्तु अनाथों से उऋण नहीं हुए। आप ऐसे समर्थ स्वामी का चाहे मैं जैसा हूँ वैसा आप का दास हूँ, कलिकाल की रीति देख कर हृदय में बड़ी घृणा होती है ॥ २ ॥

रीझि खीझि बिहँसि अनख क्यों हूँ एक बार, तुलसी तू मेरो बलि कहियत किन । जाहि सूल निर्मूल होहिं सुख अनुकूल, महाराज राम रावरी सौं तेही छिन ॥ ३ ॥

बलि जाता हूँ, प्रसन्न अथवा अप्रसन्न होकर किसी तरह एक बार क्यों नहीं कहते कि तुलसी तू मेरा है। हे महाराज रामचन्द्रजी! आप की सौगन्ध कर कहता हूँ इससे उसी क्षण शूल निर्मूल हो जायँगे और सुख की अनुकूलता होगी ॥ ३ ॥

(२५४)

राम रावरो नाम मेरो मातु पितु है। सुजन सनेही गुरु साहेब सखा सुहृद, राम नाम प्रेम पन अबिचल बितु है ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी! आप का नाम मेरा माता, पिता, सज्जन, स्नेही, गुरु, स्वामी, मित्र और हितैषी है। राम नाम से प्रेम की प्रतिज्ञा अचल धन है ॥ १ ॥

एक राम नाम में माता, पिता, गुरु, स्वामी आदि के गुणों की समता एकत्र करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलङ्कार' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

सतकोटि चरित अपार दधिनिधि मथि, लियेउ काढ़ि बामदेव नाम घृतु है। नाम को भरोसो बल चारिहु फल को फल, सुमिरिय छाड़ि छल भलो कृतु है ॥ २ ॥

अनन्त चरित रूपी अपार दधिसागर को मथ कर शिवजी ने राम नाम रूपी घृत निकाल लिया है। नाम का भरोसा और बल चारों फलों का भी फल है, उसको छल छोड़ कर स्मरण करना उत्तम कार्य है ॥ २ ॥

रामचरित में दधिसिन्धु का आरोप करके रामनाम में घी का आरोपण इसलिये किया कि दही मथने से घी निकलता है, यह 'परम्परित रूपक अलङ्कार' है।

स्वारथ साधक परमारथ दायक नाम, राम नाम सारिखो न और हितु है। तुलसी सुभाय कही साँचियै परैगी सही, सीतानाथ नाम चितहू को चितु है ॥ ३ ॥

स्वार्थ साधनेवाला और परमार्थ देनेवाला नाम ही है, राम नाम के समान और कोई उपकारी नहीं है। तुलसी ने स्वाभाविक सत्य ही कही है वह सही पड़ेगी, सीतानाथ का नाम चित्त का भी चित्त है अर्थात् चेतन को भी चैतन्य करनेवाला है ॥ ३ ॥

(२५५)

राम रावरो नाम साधु सुरतरु है। सुमिरे त्रिविध घाम हरत पूरत काम, सकल सुकृत सरसिजहू को सरु है ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी! आप का नाम सच्चा कल्पवृक्ष है जो स्मरण करने से तीनों ताप हर लेता है और कामना पूरी कर देता है, यह समस्त पुण्य रूपी कमल के लिये सरोवर रूप है ॥१॥

यहाँ उपमान राम नाम में स्मरण करने से तीनों ताप हरना और इच्छा पूर्ण करने का अधिक गुण दिखा कर कल्पवृक्ष से एक रूपता स्थापित करना 'अधिक अभेद रूपक अलंकार' है। कल्पवृक्ष का झूठ मूठ नाम सुना जाता है कि उसके नीचे जाने से चारों फल मिलता है; किन्तु देखने में नहीं आता और रामनाम स्मरण करते ही फलदायक होता है इससे यही सच्चा कल्पवृक्ष है। दूसरा समअभेद रूपक अलंकार है।

लाभहू को लाभ सुखहू को सुख सरबस, पतित पावन डरहू को डरु है। नीचहू को ऊँचहू को रङ्कहू को रायहू को, सुलभ सुखद आपनो सो घरु है ॥ २ ॥

लाभ का भी लाभ है, सुख का भी सर्वस्व सुख है, पापियों को पवित्र करनेवाला और डर का भी डर है। नीचे को भी, ऊँच को भी, दरिद्र को भी और राजा को भी सहज-सुख-दायक अपने घर के समान है ॥२॥

अत्युक्ति, पूर्णोपमा और अनुप्रास की संसृष्टि है।

बेदहू पुरानहू पुरारिहू पुकारि कहेउ, नाम प्रेम चारि फलहू को फरु है। ऐसे राम नाम सौं न प्रीति न प्रतीति मन, मेरे जान जानिबो सो नर खरु है ॥ ३ ॥

वेद भी, पुराण भी और शिवजी भी पुकार कर कहते हैं कि नाम से प्रेम होना चारों फल का भी फल है। ऐसे राम नाम से जिसके मन में न प्रीति और न विश्वास है, मेरी समझ में उस मनुष्य को गदहा जानना चाहिये ॥३॥

नाम सौं न मातु पितु मीत हित बन्धु गुरु, साहेब सुभी सुसील सुधाकरु है। नाम सौं निबाह नेहु दीन को दयाल देहु, दासतुलसी को बलि बड़ो बरु है॥ ४ ॥

नाम के समान चन्द्रमा रूपी सुन्दर शीलवान, कल्याण कर्त्ता, उपकारी स्वामी न माता-पिता, न मित्र, भाई और गुरु हैं। हे दीनदयाल ! मैं आप की बलि जाता हूँ, तुलसीदास को यही बड़ा वरदान है कि नाम से स्नेह का निर्वाह दीजिये ॥४॥

(२५६)

कहे बिनु रहेउ न परत कहे राम रस न रहत। तुम्ह से सुसाहेब की ओट जन खोटो खरो, काल की करम की कुसासति सहत ॥१॥

हे रामचन्द्रजी ! कहे विना रहा नहीं जाता और कहने से स्वाद नहीं रहता। आप के समान सुन्दर स्वामी की आड़ में बुरा या भला दास काल की और कर्म की बुरी दुर्दशा सहता है (आप ध्यान नहीं देते हैं) ॥१॥

करत बिचार सार पइयत न कहूँ कछु, सकल बड़ाई सब कहाँ तेँ लहत। नाथ की महिमा सुनि समुझि आपनी ओर,-हेरि हारि के हहरि हृदय दहत ॥ २ ॥

विचार करता हूँ तो कहीं कुछ तत्व नहीं मिलता, सारी बड़ाई सब कहाँ से पाते हैं ? अर्थात् बड़प्पन देनेवाले एकमात्र आप ही हैं। स्वामी की महिमा सुन समझ कर और अपनी ओर निहार कर डर से हृदय में हार कर जलता हूँ ॥२॥

सखा न सुसेवक न सुतिय सुप्रभु आपु, माय बाप तुहीं साँचो तुलसी कहत। मेरी तो थोरी है सुधरैगी बिगरियो बलि, राम रावरी सौं रही रावरी चहत ॥ ३ ॥

मेरे न मित्र, न सुन्दर सेवक, न अच्छी स्त्री, न श्रेष्ठ स्वामी है, तुलसी सच कहता है माता-पिता आप ही हैं। हे रामचन्द्रजी ! मैं आप की बलि जाता हूँ, मेरी तो थोड़ी सी बिगड़ी है वह सुधर जायगी; किन्तु आप की सौगन्ध कर कहता हूँ कि आप की जैसी नामवरी रही चाहता हूँ वह वैसो ही बनी रहे (उसमें धब्बा न लगे) ॥३॥

मैं सदा का बिगड़ा हूँ, मेरी बात ही क्या? कभी आप की दया से सुधर जाऊँगा। चिन्ता इस बात की है कि आप को मैं ऐसा भयानक पापी मिला जिसको अपनाने में असमंजस प्राप्त हुआ है। गणिका, गिद्ध, अजामिल आदि भीषण पापियों को तार कर अधम उधारन, पतितपावन की नामवरी मेरी बदौलत जाना चाहती है; किन्तु मैं चाहता हूँ कि वह ज्यों को त्यों बनी रहे अर्थात् वह मुझे अपनाने ही से रक्षित रह सकती है। यह अर्थान्तर संक्रमित वाच्य ध्वनि है।

(२५७)

दीनबन्धु दूरि किये दीन को न दूसरो सरन। आप को भलो है सब आपने को कोऊ कहूँ, सब को भलो है राम रावरे चरन ॥ १ ॥

हे दीनबन्धु! दूर करने से इस दीन को दूसरी पनाह नहीं है। अपना भला सब चाहते हैं पर अपने आश्रितों की भलाई करनेवाले कहाँ कोई एक होते हैं, हे रामचन्द्रजी! आप के चरण सब के लिये कल्याणकारी हैं ॥१॥

पाहन पतङ्ग पसु कोल भील निसिचर, काँच तेँ कृपानिधान किये सुबरन। दंडक पुहुमि पाय परसि पुनीत भई, उकठे बिटप लागे फूलन फरन ॥ २ ॥

पत्थर, पक्षी, पशु, कोल, भील और राक्षस को कृपानिधान ने काँच से सुवर्ण बना दिया। दण्डक-भूमि चरण के छू जाने से पवित्र हुई सूखे हुए वृक्ष उस धरती के फूलने फलने लगे ॥२॥

पाहन-अहल्या, पतङ्ग-गिद्ध और पशु-हाथी के बोधक हैं। इन तुच्छ जीवों को उच्च पद दिया, यह प्रस्तुत वर्णन सीधे न कह कर प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है।

पतित पावन नाम बामहू दाहिनो देव, दुनी न दुसह दुख दूषन दरन। सीलसिन्धु तो सोँ ऊँची नीचियो कहत सोभा, तो सोँ तुहीँ तुलसी की आरति हरन ॥ ३ ॥

हे देव! आप का नाम पतितों को पवित्र करनेवाला और टेढ़े को भी सीधा है, नाम के बराबर कठिन दुःख दोष नसानेवाला दूसरा कोई नहीं है। शीलसिन्धु! आप से नीची ऊँची कहने में भी शोभा है, तुलसी की दीनता हरने में आप के समान आप ही हैं ॥३॥

प, द और त अक्षरों की आवृत्ति में अनुप्रास है। उपमान के अभाव से उपमेय ही को उपमान बनाना 'अनन्वयोपमा अलंकार' है।

(२५८)

जानि पहिचानि मैं बिसारे हौं कृपानिधान, एते मान ढीठ हौं उलटि देत खोरि हौं। करत जतन जा सौं जोरिबे को जोगीजन, ता सौं क्यों हू जुरी सो अभागो बैठो तोरि हौं ॥१॥

हे कृपानिधान ! मैं आप को जान पहचान कर भूला हूँ, इतना मानी और ढीठ हूँ कि उलटे आप को दोष देता हूँ । जिससे नाता जोड़ने को योगी लोग उपाय करते हैं उससे किसी तरह (सेवक स्वामी की नतैती) जुड़ी भी तो मैं अभागा उस नाते को तोड़ कर बैठा हूँ ॥१॥

मो से दोस कोस कोऊ भूमिकोस दूसरो न, आपनी समुझि सूझि आयेउँ टकटोरि हौं। गाड़ी के स्वान की नाँईं माया मोह की बड़ाई, छिनहिं तजत छिन भजत बहोरि हौं ॥ २ ॥

मेरे समान अवगुणों का भण्डार दुनियाँ के परदे में दूसरा नहीं है अपनी समझ और सूझ भर मैं सर्वत्र टटोल आया हूँ । माया-मोह के बड़प्पन को गाड़ी के कुत्ते की तरह क्षण में त्यागता हूँ फिर क्षण ही में उसका सेवन करता हूँ ॥२॥

जैसे मञ्जिल में बैलगाड़ी के साथ जानेवाला कुत्ता इधर उधर दौड़ता है उसका साथ नहीं छोड़ता, उसी तरह मैं क्षण भर के लिये माया-मोह त्यागता हूँ और क्षण ही में उनकी सेवा करने लगता हूँ । सधारण बात की विशेष से समता दिखाना 'उदाहरण अलंकार, है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

बड़ो साँइद्रोही न बराबरी मेरी को कोऊ, नाथ की सपथ किये कहत करोरि हौं। दूर कीजै द्वार तें लबार लालची प्रपञ्ची, सुधा सौं सलिल सूकरी ज्यों गहड़ोरिहौं ॥ ३ ॥

हे नाथ ! आप की करोड़ों सौगन्ध करके कहता हूँ मेरी बराबरी का स्वामिद्रोही कोई नहीं है । झूठ, लालची और धोखेबाज़ को अपने दरवाज़े से दूर कर दीजिये नहीं अमृत के समान जल को मैं सुअरि की तरह गँदला कर दूँगा ॥३॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि मैं आप की स्वच्छ कीर्त्ति में दाग लगा दूँगा; परन्तु इसे सीधे न कह कर प्रतिबिम्ब मात्र कथन करना 'ललित अलंकार' है । धर्मलुप्तोपमा और उदाहरण का सन्देहसङ्कर है । अनुप्रास की संसृष्टि है ।

राखिये नीके सुधारि नीच कै डारिये मारि, दुहूँ ओर की बिचारि अब न निहोरिहौं । तुलसी कही है साँची रेख बार बार खाँची, ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं ॥ ४ ॥

(शरण में) रखिये तो अच्छी तरह सुधार कीजिये अथवा इस नीच को मार डालिये, दोनों ओर की (ऊँचाई निचाई) विचार कर अब निहोरा न करूँगा । बार बार रेखा खींच कर तुलसी ने सच्ची बात कही है ढिलाई करने से नाम की (अनन्त) महिमा की नाव को मैं डुबा दूँगा ॥४॥

मैं तो गया बीता हूँ पर मेरा सुधार न करने से नाम की महिमा डूब जायगी अर्थात् लोग कहेंगे तुलसी ने राम नाम से लय लगाया पर सुधारा कुछ नहीं, इससे आप की बड़ी हानि होगी । यह वाच्यार्थ और व्यङ्गार्थ बराबर होने से तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है ।

(२५९)

रावरी सुधारी जो बिगारी बिगरैगी मेरी, कहउँ बलि बेद की न लोक कहा कहैगो । प्रभु को उदास भाव जन को पाप प्रभाव, दुहूँ भाँति दीनबन्धु दीन दुख दहैगो ॥ १ ॥

आप की सुधारी बात जो मेरे बिगाड़ने से बिगड़ेगी तो बलि जाता हूँ, वेद की नहीं कहता; (चाहे वे जो कहें) परन्तु दुनियाँ क्या कहेगी (तुच्छ जीव ने ईश्वरीय करामात को मिटा दिया !) । हे दीनबन्धु ! आप के निरपेक्ष भाव और दास के पापों के प्रभाव से दोनों तरह यह दीन दुःख से जलेगा ॥१॥

मैं तो दियेउँ छाती पबि लियेउ कलिकाल दबि, सासति सहत परबस को न सहैगो । बाँकी बिरदावली बनैगी पालेही कृपाल, अन्त मेरो हाल हेरि यौं न मन रहैगो ॥ २ ॥

कलिकाल ने दबोच लिया इससे मैंने तो छाती पर वज्र दे रक्खा है और दुर्दशा सहता हूँ, पराधीनता में कौन न दुःख सहेगा ? हे कृपालु ! अपनी अपूर्व नामवरी की रक्षा आप को करते ही बनेगी और अन्त में मेरा हाल देख कर मन में यों न रहा जायगा अर्थात् भक्त-वत्सलता उमड़ पड़ेगी ॥२॥

करमी धरमी साधु सेवक बिरति रत, आपनी भलाई थल कहा को न लहैगो । तेरे मुँह फेरे मो से कायर कपूत कूर, लटे लटपटेनि को कौन परिगहैगो ॥ ३ ॥

कर्मी, धर्मात्मा, साधु, सेवक और वैराग्य में तत्पर प्राणी अपनी भलाई का स्थान कैसे कोई न पावेगा ? अर्थात् अपनी श्रेष्ठ करनी से सभी सुन्दर स्थान पावेंगे; परन्तु आप के मुख फेरने से मेरे समान कादर, कुपुत्र, कुमार्गी, दुर्बल और गँवारों को दृढ़ता से पकड़ कर कौन अपनावेगा ? (आप के सिवा ऐसा कोई नहीं है) ॥३॥

अनुप्रास और वक्रोक्ति की संसृष्टि है ।

काल पाइ फिरत दसा दयाल सबही की, तोहि बिनु मोहि कबहूँ न कोऊ चहैगो । बचन करम हिये कहउँ राम सौंह किये, तुलसी पै नाथ के निबाहे निबहैगो ॥ ४ ॥

हे दयालु ! समय पाकर सभी की दशा फिरती है; किन्तु आप के बिना मुझे कभी कोई न चाहेगा । वचन, कर्म और मन से-हे रामचन्द्रजी ! आप की सौगन्द करके कहता हूँ, तुलसी का निर्वाह निश्चय ही स्वामी के निबाहने से होगा ॥४॥

(२६०)

साहेब उदास भये दास खास खीस होत, मेरी कहा चली है बजाइ जाइ रहेउ हौं । लोक मैं न ठाउँ परलोक को भरोसो कौन, हौं तो बलिजाउँ राम नामही तें लहेउ हौं ॥ १ ॥

स्वामी के अनमने होने से ख़ास सेवक बरबाद होते हैं, फिर मेरी क्या चली है ? मैं तो डङ्का बजा कर जा रहा हूँ । लोक में जगह नहीं है तब परलोक का कौन भरोसा है, हे रामचन्द्रजी ! बलि जाता हूँ, मैं तो नाम ही से ठिकाना पाता हूँ ॥१॥

करम स्वभाव काल काम कोह लोभ मोह, ग्राह अति गहनि गरीब गाढ़े गहेउ हौं । छोरिबे को महाराज बाँधिबे को कोटि भट, पाहि प्रभु पाहि तिहुँ ताप पाप दहेउ हौं ॥ २ ॥

कर्म, स्वभाव, काल, काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी मगर के बड़े गहरे पकड़ान में मैं ग़रीब पकड़ा हुआ हूँ । महाराज ! छोरने के लिये आप हैं और बाँधने के लिये करोड़ों योद्धा हैं, हे प्रभो ! मेरी रक्षा कीजिये, मुझे बचाइये; मैं तीनों ताप और पाप रूपी आग से जलता हूँ ॥२॥

समअभेदरूपक अलंकार, अनुप्रास और भय की विप्सा की संसृष्टि है ।

रीझि बूझि सब की प्रतीति प्रीति एही द्वार, दूध को जरो पियत फूँकि फूँकि महेउ हौं । रटत रटत लटेउ जाति पाँति भाँति घटेउ, जूठन को लालची चहउँ न दूध नहेउ हौं ॥ ३ ॥

सब की प्रसन्नता समझ कर विश्वास और प्रीति इसी द्वार पर है, मैं दूध का जला माठा फूँक फूँक कर पीता हूँ। रटते रटते दुबला हो गया, जाति पाँति से सब तरह घट गया, मैं आप के जूठन का लालची दूध-मलाई नहीं चाहता हूँ ॥३॥

सब की रीति समझ ली वह खोखली है इससे प्रीति विश्वास आप के दरवाज़े पर ही है। प्रस्तुत कथन तो यह है कि मैं दूसरों का विश्वास और प्रीति मान कर बहुत धोखा खा चुका हूँ, अब आप को छोड़ कर दूसरे पर विश्वास नहीं है। इस बात को सीधे न कह कर उसका प्रतिविम्ब मात्र लोकोक्ति द्वारा प्रगट करना कि दूध का जला माठा फूँक कर पीता हूँ 'ललित अलंकार' है।

अनत चहेउँ न भलो सुपथ सुचाल चलो, नीके जिय जानि इहाँ भलो अनचहेउँ हौं। तुलसी समुझि समझायो मन बार बार, आपनो सो नाथहू सौं कहि निरबहेउ हौं ॥ ४ ॥

दूसरी जगह भलाई नहीं चाहा और न सुमार्ग में अच्छी चाल चला; किन्तु जी में अच्छी तरह जानता हूँ कि यहाँ अनचहे (न सुहानेवाले) का भी भला होता है। यह समझ कर तुलसी ने बार बार मन को समझाया कि चिन्ता का कुछ भी कारण नहीं है, इसी से अपनी छुट्टी स्वामी से कह कर पाता हूँ ॥४॥

मैं पतित आप पतितपावन दोनों ओर की बात बार बार कह कर छुट्टी पा गया। अपनी नामवरी की ओर देखिये और मुझे अपनाइये यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२६१)

मेरी न बनै बनाये मेरे कोटि कलप लौं, राम रावरें बनाये बनै पल पाउ मैं। निपट सयाने हौं कृपानिधान कहा कहउँ, लिये बेर बदलि अमोल मनि आउ मैं ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी! मेरे बनाये मेरी करोड़ों कल्प पर्यन्त न बनेगी और आप के बनाने से चौथाई पल में बन जायगी। हे कृपानिधान! आप सब प्रकार से चतुर हो (अपनी मूर्खता) मैं क्या कहूँ, आयु रूपी अमूल्य रत्न के बदले में ने बेर फल लिया है ॥१॥

आयु और रत्न में समान रूप से एकरूपता 'सम अभेद रूपक अलंकार' है। बेर उपमान कह कर विषय-उपमेय का नाम न लेना 'रूपकातिशयोक्ति' है। मणि देकर बदले में बेर का फल लेना 'परिवृत्त अलंकार' और अनुप्रास की संसृष्टि है।

मानस मलीन करतब कलिमल पीन, जीहहू न जपेउ नाम बकेउ आउबाउ मैं। कुपथ कुचाल चलो भयेउ न भूलिहू भलो, बालदसाहू न खेलेउ खेलत सुदाउ मैं ॥ २ ॥

मन मैला, करनी पुष्ट पाप की, जीभ से भी मैं ने नाम नहीं जपा अण्डबण्ड बकवाद किया। कुपन्थ और कुचाल चला, भूल कर भी किसी की भलाई नहीं की और न बालपन ही में मैं ने अच्छी बाजी (रामलीला आदि) की खेल खेली ॥२॥

देखीदेखा दम्भ तैं की सङ्ग तैं भई भलाई, प्रगट जनाइ कियेउ दुरित दुराउ मैं। राग रोष दोष पोषें गोगन समेत मन, इन्हकी भगति कीन्ही इन्हहीं को भाउ मैं ॥ ३ ॥

देखीदेखा, घमण्ड से अथवा सङ्ग से जो परोपकार हुआ उसे कह कर प्रगट किया और पाप को मैंने छिपाया। ममता, क्रोध और दोष की रक्षा मन सहित इन्द्रियों से इन्हीं की भक्ति की और मैं ने इन्हीं का सत्कार किया ॥३॥

आगिली पाछिली अबहूँ की अनुमानही तैं, बूझियत गति कछु कीन्हे तौ न काउ मैं। जग कहइ राम को प्रतीति प्रीति तुलसीहू, झूठे साँचे आसरो साहेब रघुराउ मैं ॥ ४ ॥

आगे की, पीछे की और इस समय की अनुमान ही से अपनी दशा विचारता हूँ कि मैं ने तो कभी कुछ (उत्तम साधन) नहीं किया। जगत मुझे रामचन्द्रजी का दास कहता है, तुलसी को भी विश्वास और प्रीति है कि झूठे सच्चे मैं स्वामी रघुनाथजी के भरोसे हूँ ॥४॥

(२६२)

कहेउ न परत बिनु कहे न रहेउ परत, बड़ो सुख कहत बड़े सौं बलि दीनता। प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोटाई छोटी, प्रभु की पुनीतता आपनी पाप पीनता ॥ १ ॥

कहते नहीं बनता और बिना कहे भी नहीं रहा जाता; बलि जाता हूँ, बड़े से दीनता कहने में बड़ा आनन्द आता है। प्रभु की बड़ी बड़ाई अपनी तुच्छ छोटाई, स्वामी की पवित्रता और अपनी पापों की पुष्टता ॥१॥

दुहूँ ओर समुझि सकुचि सहमत मन, सनमुख होत सुनि स्वामी समीचीनता। नाथ गुन गाथ गाये हाथ जोरि माथ नाये, नीचऊ नेवाजे प्रीति रीति की प्रबीनता ॥ २ ॥

दोनों ओर की (बड़ाई छोटाई) समझ कर लाज से मन सहम जाता है; किन्तु स्वामी की श्रेष्ठता सुन कर सामने होता है। स्वामी के गुणों की कथा गाने से और हाथ जोड़ कर मस्तक नवाने से (आप) नीचों पर भी दयालु होते हैं, प्रीति की रीति में ऐसी कुशलता है ॥२॥

एही दरबार है गरब तेँ सरब हानि, लाभ जोग छेम को गरीबी मिसकीनता। मोटो दसकन्ध सौँ न दूबरो बिभीषन सौँ, बूझि परी रावरे की प्रेम पराधीनता ॥ ३ ॥

यही दरबार है जहाँ गर्व से सर्वस्व की हानि होती है, ग़रीबी और दीनता से कल्याण के लाभ का संयोग होता है। रावण के समान मोटा नहीं और विभीषण के बराबर दुर्बल नहीं, प्रेम से परवश होने की बात आप की समझ पड़ी ॥३॥

विभवशाली गर्वीले रावण का तिरस्कार कर प्रेम के नाते दीन विभीषण के वश में हो गये, इससे प्रत्यक्ष है कि आप प्रेमाधीन हैं।

इहाँ की सयानप अयानप सहस सम, सूधी सतिभाय कहे मिटति मलीनता। गीध सिला सबरी की सुधि सब दिन किये, होयगी न साँईं सौँ सनेह हित हीनता ॥ ४ ॥

यहाँ की चतुराई हज़ारों मूर्खता के समान है, सीधे सरल भाव से कहने पर मलिनता मिट जाती है। गिद्ध, शिला (अहल्या) और शबरी की सुधि सब दिन किये, स्वामी से स्नेह के सम्बन्ध में न्यूनता न होगी ॥४॥

सकल कामना देत नाम तेरो कामतरु, सुमिरत होत कलिमल छल छीनता। करुनानिधान बरदान तुलसी चहत, सीतापति भक्ति-सुरसरि मन-मीनता ॥ ५ ॥

आप का नाम रूपी कल्पवृक्ष सारी कामनाओं को देता है और स्मरण करने से कलियुग के पाप-छल का नाश होता है। हे दयानिधान! सीतानाथ की भक्ति रूपी गङ्गा में मन मछली होकर विहार करे तुलसी यही वरदान चाहता है ॥५॥

(२६३)

नाथ नीके कै जानबी ठीक जन जीय की। रावरो भरोसो नाह कै सुप्रेम नेम लिये, रुचिर रहनि रुचि गति मति तीय की ॥१॥

हे नाथ! आप इस दास के जी की सच्ची बात अच्छी तरह जानते हैं। मेरी बुद्धि रूपी स्त्री की सुन्दर रहनि, अभिलाषा और दशा (साध्वी पतिव्रता के समान) आप को पति मान कर उत्तम प्रेम का नेम लिये आप का ही भरोसा रखती है ॥१॥

अपनी बुद्धि पर पतिव्रता स्त्री और रघुनाथजी में पति की पूर्ण रूप से एकरूपता करना 'समअभेदरूपक अलंकार, है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

दुकृत सुकृत बस सबही सौं सङ्ग परेउ, परखी पराई गति आपनेहू कीय की । मेरे भले कों गोसाँई भलो पोंच सोच कहा, किये कहउँ सौंह खाँचि साँची सियपीय की ॥ २ ॥

पाप पुण्य के अधीन (भले बुरे) सभी से साथ पड़ा, पराये की चाल और अपनी करनी की परीक्षा की। हे स्वामिन्! मेरी भलाई करनेवाले आप हैं फिर भले बुरे का सोच क्या ? सीतानाथ की सौगन्द करके रेखा खींच कर सच्ची बात कहता हूँ ॥२॥

ज्ञानहू गिरा के स्वामी बाहर अन्तरजामी, इहाँ क्यौं दुरैगी बात मुख की औ हीय की । तुलसी तिहारो तुम्हहीं पै तुलसी के हित, राखि के कहे तेँ कछु होइहौँ माखी घीय की ॥ ३ ॥

आप वाणी और ज्ञान के भी स्वामी हैं, बाहर तथा अन्तःकरण की बात जाननेवाले हैं, यहाँ मुख की और हृदय की (दुरङ्गी बात) क्योंकर छिप सकती है ? तुलसी आप का है और आप ही निश्चय तुलसी के हितकारी हैं, कुछ कपट रख कर कहने से घी की मक्खी होऊँगा ॥३॥

यहाँ असली कथन तो यह है कि आप से छल लेकर बात करूँगा, तो नष्ट हो जाऊँगा, परन्तु इसे सीधे न कह कर उसका प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंङ्कार' है। घी में पड़ने से मक्खी निकाल बाहर कर दी जाती है उससे घी का कुछ बिगाड़ नहीं होता; किन्तु मक्खी उड़ने की शक्ति खोकर प्राण भले ही गँवाती है। व्यङ्गार्थ में उदाहरण है।

(२६४)

मेरो कहेउ सुनि पुनि भावइ तोहि करि सो । चारिहू बिलोचन बिलोकु तू तिलोक महँ, तेरो तिहुँ काल कहूँ को है हित हरि सो ॥ १ ॥

मेरा कहना सुन कर फिर तुझे जो अच्छा लगे वह कर। चारों नेत्रों (दो प्रत्यक्ष और दो अन्तःकरण के ज्ञान-वैराग्य) से तू तीनों लोक में देख, भगवान के समान तेरा हितकारी तीनों काल में कहीं कोई है ? (कोई नहीं) ॥१॥

नये नये नेह अनुभये देह गेह बसि, परखे प्रपञ्ची प्रेम परत उघरि सो । सुहृद समाज दगाबाजिही को सौदा सूत, जब जाको काज तब मिलइ पाय परि सो ॥ २ ॥

शरीर रूपी घर में बस कर नये नये स्नेह अनुभव किये, परीक्षा से उघर गया उनके प्रेम छलबाजी से भरे ज्ञान पड़े। मित्रमण्डली का सौदासूत (लेना देना) दग़ाबाज़िही का है, अब जिसका काम पड़ता तब वह पाँव पड़ कर मिलता है ॥२॥

बिबुध सयाने पहिचाने कैधौँ नाहीँ नीके, देत एकगुन लेत कोटिगुन भरि सो। करम धरम स्रमफल रघुबर बिनु, राख को सो होम है ऊसर को सो बरिसो ॥ ३ ॥

देवता चतुर हैं वे कोटिगुणा भरा कर तब एकगुणा देते हैं, न जाने मैं ने उनको अच्छी तरह पहचाना नहीं। रघुनाथजी की प्रीति के बिना कर्म धर्म करना केवल परिश्रम फल है, वह राख में हवन करने के समान और ऊसर की वर्षा के बराबर है ॥३॥

प्रथम विनोक्ति अलंकार और अनुप्रास की संसृष्टि है।

आदि अन्त बीच भलो भलो करइ सबही को, जा को जस लोक बेद रहेउ है बगरि सो। सीतापति सारिखो न साहेब सील निधान, कैसे कल परइ सठ बैठो है बिसरि सो ॥ ४ ॥

आदि, मध्य और अन्त भला है सब की भलाई करनेवाले जिनका यश लोक और वेद में फैल रहा है। सीतानाथ के समान शीलनिधान स्वामी कोई नहीं है, अरे दुष्ट! उन्हें भूल कर बैठा है तुझे कैसे चैन पड़ता है? ॥४॥

जीव को जीवन प्रान प्रान को परमहित, प्रीतम पुनीत कृत नीच न निदरि सो। तुलसी तो को कृपालु कियेउ जो कोसलपाल, चित्रकूट को चरित चेतु चित धरि सो ॥ ५ ॥

जीव के जीवन और प्राणों के प्राण परमोपकारी प्यारे स्वामी के पवित्र कर्म को, रे नीच! उसका अनादर न कर। तुलसी! तुझको कृपालु अयोध्यानरेश ने जो चरित्र चित्रकूट में करके दिखाया उसको स्मरण करके चित्त में रख ॥५॥

गोसाँईजी को रामचन्द्रजी ने व्याज से चित्रकूट में दर्शन दिया था, उसी को स्मरण रखने के लिये अपने मन को ताकीद करते हैं कि स्वामी की यह तुझ पर थोड़ी कृपा नहीं है।

(२६५)

तन सुचि मन रुचि मुख कहउँ जन हौँ सिय पी को। केहि अभाग जानउँ नहीँ, जो न होइ नाथ सौँ नातो नेह न नीको ॥ १ ॥

पवित्र शरीर से मन की अभिलाषा मुख से कहता हूँ कि मैं सीतानाथ का सेवक हूँ; किन्तु नहीं जानता किस अभाग्य से स्वामी से स्नेह की नतैती अच्छी तरह नहीं होती है॥१॥

जल चाहत पावक लहउँ, बिष होत अमी को। कलि कुचाल सन्तन्ह कही, सों सही मोहि कछु फहम न तरनि तमी को॥२॥

जल की चाहना करने पर अग्नि पाता हूँ और अमृत का विष होता है। सन्तों ने यह पाजीपन कलियुग का कहा वह सही है, मुझे सूर्य्य और अन्धकार की समझ कुछ नहीं है॥२॥

असली कथन तो यह है कि सुख चाहते दुःख पाता हूँ और मित्र भी शत्रु होते हैं, इस उजेले अँधेरे की मुझे समझ नहीं कि यह कौन करता है? सन्तों ने बतलाया कलि की कुचाल है इसको सीधे न कह कर प्रतिविम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है।

जानि अन्ध अञ्जन कहइ, बन-बाघिन घी को। सुनि उपचार बिकार को, सुबिचार करउँ जब तब बुधि बल हरइ ही को॥३॥

मुझे अन्धा समझ कर (कलि) कहता है वन में रहनेवाली बाघिन का घी अञ्जन करने से सूझेगा। इस सदोष चिकित्सा को सुन कर जब अच्छी तरह विचार करता हूँ तब हृदय का बल बुद्धि हर जाता है॥३॥

असली कथन है कि मुझे ज्ञान हीन जान कर कहता है विषय सेवन करो तो सुख मिलेगा; किन्तु मैं विचारता हूँ तो इसमें सर्वनाश के भय से हहर जाता हूँ। इसको सीधे न कह कर यह कहना कि वन की बाघिन देखते ही खा जायगी, जिससे आँख ही न रहेगी तो अञ्जन कहाँ होगा! 'ललित अलंकार' है।

प्रभु सौं कहत सकुचात हौं, परउँ जनि फिरि फीको। निकट बोलि बलि बरजिये, परिहरइ ख्याल अब तुलसिदास जड़ जी को॥४॥

स्वामी से कहते सकुचाता हूँ कहीं फिर फीका न पड़ जाऊँ। बलि जाता हूँ, समीप में बुला कर मना कर दीजिये जिससे अब वह जड़ जीव तुलसीदास का ख्याल छोड़ दे॥४॥

(२६६)

ज्यौं ज्यौं निकट भयेउ चहउँ कृपाल त्यौं त्यौं दूरि परेउ हौं। तुम्ह चहुँ जुग रस एक राम, हौं हूँ रावरो जद्यपि अघ अवगुनन्हि भरेउ हौं॥१॥

हे कृपालु! ज्यों ज्यों समीप होना चाहता हूँ त्यों त्यों दूर पड़ता जाता हूँ। हे रामचन्द्रजी! आप चारों युगों में एक समान रहते हैं, यद्यपि मैं पाप और अवगुणों से भरा हूँ तो भी आप का (दास) हूँ॥१॥

बीच पाइ नीच बीचही नल छरनि छरेउ हौं । हौं सुवरन कुबरन कियेउ, नृप तैं भिखारि करि सुमति तैं कुमति करेउ हौं ॥ २ ॥

अन्तर पाकर (स्वामि से बिछुड़ा हुआ जान कर) नीच कलि ने बीच ही में राजा नल की तरह धोखेबाजी से मुझे छल लिया। मुझको सुवर्ण से लोहा कर दिया और राजा से भिक्षुक करके सुबुद्धि से कुबुद्धि किया है ॥ २ ॥

ललित, उदाहरण और अनुप्रास की संसृष्टि है।

अगनित गिरि कानन फिरेउँ, बिनु आगि जरेउ हौं । चित्रकूट गये मैं लखी, कलि की कुचाल सब अब अपडरनि डरेउ हौं ॥३॥

अनगिनती पहाड़ और जङ्गल में विना आग के मैं जलता फिरा। चित्रकूट जाने पर मैं ने कलियुग का सारा पाजीपन लखा इससे अब अपडर से डरता हूँ ॥ ३ ॥

यहाँ व्यञ्जनामूलक गूढ़ व्यङ्ग है कि हनूमानजी के द्वारा विदित हुआ कलि में प्रत्यक्ष किसी को दर्शन नहीं होता।

माथ नाइ नाथ सौं कहउँ, हाथ जोरि खरेउ हौं । चीन्हो चोर जिय मारिहै, तुलसी सो कथा सुनि प्रभु सौं कहि निबरेउ हौं ॥४॥

मैं मस्तक नवा कर हाथ जोड़ कर खड़ा स्वामी से कहता हूँ कि पहचाना हुआ चोर जी मारेगा, तुलसी उसकी कथा सुन कर स्वामी से कह कर छुट्टी पाता है ॥ ४ ॥

कलि ने मुझे मारने की धमकी दी है वह मैं स्वामी से जाहिर करके निश्चिन्त होता हूँ। यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

(२६७)

पन करिहउँ हठि आजु तैं, राम द्वार परेउ हौं । तू मेरो बिनु कहे न उठिहउँ, जनम भरि प्रभु की सौंह करि निबरेउ हौं ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी ! आज से प्रतिज्ञा-पूर्वक हठ करके आप के दरवाजे पर पड़ता हूँ। तू मेरा है बिना कहे जन्म भर न उठूँगा, स्वामी की सौगन्द करके झंझट से बरी होता हूँ ॥ १ ॥

देइ देइ धका जमभट थके, टारे न टरेउ हौं । उदर दुसह सासति सही, बहु बार जनमि जग नरक निदरि निकरेउ हौं ॥ २ ॥

यमदूत धक्का दे देकर हार गये पर मैं उनके टालने से नहीं टला । बहुत बार संसार में उदर (गर्भवास) की असहनीय दुर्गति सहन की और नरक की बेइज्जती करके मैं बाहर निकला हूँ ॥ २ ॥

धक्का खाने का मैं आदी हूँ, कितनहूँ धक्का दिलवाइयेगा तो भी द्वार से न हटूँगा यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

हौं माचल लेइ छाड़िहउँ, जेहि लागि अरेउ हौं । तुम्ह दयालु बनिहै दिये, बलि बिलम न कीजे जात गलानि गरेउ हौं ॥ ३ ॥

मैं जिसके लिये अड़ा हूँ जिद करके लेकर ही छोड़ूँगा । आप दयालु हैं देते ही बनेगा; बलि जाता हूँ, देरी न कीजिये ग्लानि से गला जाता हूँ ॥ ३ ॥

प्रगट कहत जौं सकुचिये, अपराध भरेउ हौं । तौ मन मैं अपनाइये, तुलसिहि कृपा करि कलि बिलोकि हहरेउ हौं ॥ ४ ॥

यदि प्रत्यक्ष कहने में सकुचते हों कि मैं अपराध से भरा हूँ तो कृपा करके तुलसी को मन में अपनाइये, कलि को देख कर मैं डर गया हूँ ॥ ४ ॥

जो यह कहिये कि मन में अपनाने का हाल तुझे कैसे मालूम होगा ! इस पर नीचे के पद में आत्मतुष्टि प्रकट करते हैं कि मुझे इस तरह ज्ञात होगा ।

(२६८)

तुम्ह अपनायो तब जानिहउँ, जब मन फिरि परिहै । जेहि सुभाय बिषयन्हि लगेउ, तेहि सहज नाथ सौं नेह छाड़ि छल करिहै ॥१॥

जब आप अपनावेंगे मन विषयों से फिर जायगा तब मैं जान जाऊँगा । जिस भले भाव से विषयों में लगा है उसी भाव से स्वाभाविक छल छोड़ कर स्वामी से प्रेम करेगा ॥ १ ॥

अपने अंग स्वभाव का दृढ़ विश्वास प्रगट करना 'आत्मतुष्टिप्रमाण अलंकार' है ।

सुत की प्रीति प्रतीति मीत की, नृप ज्यौं डर डरिहै । अपनो सो स्वारथ स्वामी सौं, बहु बिधि चातक ज्यौं एक टेक न टरिहै ॥२॥

पुत्र की प्रीति, मित्र का विश्वास और राजा के डर जैसे डरेगा । वह अपना प्रयोजन स्वामी से बहुत तरह, कहने में चातक जैसा अपने हठ में अद्वितीय, विचलित न होगा ॥२॥

उदाहरण और अनुप्रास की संसृष्टि है ।

हरषिहैं न अति आदरे, निदरे न जरिमरिहैं । हानि लाभ दुख सुख सबइ, सम चित अनहित कलि कुचाल परिहरिहैं ॥३॥

अत्यन्त आदर पाने से हर्षित न होगा और न निरादर से जल मरेगा। हानि, लाभ, दुःख और सुख सभी को मन में बराबर जान अपकार, कलह तथा कुमार्ग को त्याग देगा ॥३॥

प्रभु गुन सुनि मन हरषिहैं, नीर नयनन्हि ढरिहैं । तुलसिदास भयेउ राम को, बिस्वास प्रेम लखि आनद उमगि उर भरिहैं ॥४॥

प्रभु के गुण सुन कर मन प्रसन्न होगा और नेत्र जल बहावेंगे। तुलसीदास रामचन्द्रजी का जन हुआ, विश्वास और प्रेम देख कर हृदय आनन्द की लहरों से भर जायगा ॥४॥

(२६९)

राम कबहुँ प्रिय लागिहौ जैसे नीर मीन को । सुख जीवन ज्यौं जीव को, मनि ज्यौं फनि को हित ज्यौं धन लोभ लीन को ॥१॥

हे रामचन्द्रजी! कभी आप मुझे ऐसे प्रिय लगेंगे जैसे मछली को पानी। जैसे जीव को सुख से जीना, जैसे साँप को मणि और लोभ ग्रस्त को जसे धन प्रिय होता है ॥१॥

मुझे प्रिय लगोगे इस बात की विशेष से समता दिखाना 'उदाहरण अलंकार' है।

ज्यौं सुभाय प्रिय नागरी, नागर नवीन को । त्यौं मेरे मन लालसा, करिये करुनाकर पावन प्रेम पीन को ॥ २ ॥

जैसे स्वभाव से नवयुवक को नवयौवना स्त्री प्यारी लगती है। हे करुणानिधान! वैसे ही मेरे मन में लालसा पवित्र पुष्ट प्रेम की उत्पन्न कीजिये ॥२॥

मनसा को दाता कहइ, स्रुति प्रभु प्रबीन को । तुलसिदास को भावतो, बलि जाउँ दयानिधि दीजै दान दीन को ॥ ३ ॥

वेद कहते हैं कि प्रभु इच्छित फल देने में निपुण हैं। हे दयानिधान! बलि जाता हूँ, दीन तुलसीदास को मनभावता दान दीजिये ॥३॥

(२७०)

कबहु कृपा करि रघुबीर मोहू चितइहौ । भलो बुरो जन आपनो, जिय जानि दयानिधि अवगुन अमित बितइहौ ॥ १ ॥

हे रघुनाथजी! कभी कृपा करके मेरी ओर भी देखियेगा। हे दयानिधान! भला या बुरा जी में अपना दास समझ कर अनन्त दोषों को क्षमा कीजियेगा ॥१॥

जनम जनम हौं मन जितेउ, अब मोहि जितइहौ। हौं सनाथ होइ हौं सही, तुम्हहूँ अनाथपति जौं लघुतहि न भितइहौ ॥ २ ॥

जन्म जमान्तर से मुझे मन जीते है अब मुझ को जिताइयेगा। मैं निश्चय सनाथ हो जाऊँगा, आप भी तो अनाथपति हैं यदि लघुता को न डरियेगा (मेरी बन जायगी) ॥२॥

विनय करहुँ अपभयहु तैं, तुम्ह परम हितै हौ। तुलसिदास कासौं कहइ, तुम्हहीं सब मेरे प्रभु गुरु मातु पितै हौ ॥ ३ ॥

आप परम हितकारी हैं मैं मन से कल्पित भय से विनती करता हूँ। तुलसीदास किससे कहे? मेरे स्वामी, गुरु, माता और पिता आप ही हैं ॥३॥

स्वामी, गुरु, पिता-माता के उत्कृष्ट गुणों की समता एक रामचन्द्रजी में करना 'तृतीय तुल्ययोगिता अलंकार' है।

(२७१)

जैसो हौं तैसो राम रावरो जन जनि परिहरिये। कृपासिन्धु कोसलधनी, सरनागत पालक ढरनि आपनी ढरिये ॥ १ ॥

हे रामचन्द्रजी! मैं जैसा हूँ वैसा आप का दास हूँ मुझे मत त्यागिये। हे कृपासिन्धु कोशलाधिराज! आप शरणागतों के रक्षक हैं अपनी सहज कृपालुता से प्रसन्न हूजिये ॥१॥

हौं तो बिगरायल और को, बिगरो न बिगरिये। तुम्ह सुधारि आये सदा, सब की सबही बिधि अब मेरियौ सुधरिये ॥ २ ॥

मैं तो दूसरे का विगाड़ा हूँ विगड़े को न विगाड़िये। आप सब की सभी तरह से सदा सुधारते आये हैं अब मेरी भी सुधारिये ॥२॥

जग हँसिहै मेरे संग्रहे, कत एहि डर डरिये। कपि केवट कीन्हे सखा, जेहि सील सरल चित तेंहि सुभाउ अनुसरिये ॥३॥

मेरा संग्रह करने से दुनियाँ हँसेगी इस डर से काहे को डरते हो? बन्दर और मल्लाह को जिस सच्चे हृदय से मित्र बनाया उसी स्वभाव के अनुसार (मुझे अपना) कीजिये ॥३॥

अपराधी तउ आपनो, तुलसी न बिसरिये । टूटी बाँह गरे परइ, फूटेहू बिलोचन पीर होत हित करिये ॥ ४ ॥

अपराधी हूँ तो भी अपना जान कर तुलसी को न भुलाइये । टूटी बाँह गले पड़ती है और फूटी आँख में भी पीड़ा होती है (उसका उपाय करना ही पड़ता है, उसी तरह) मेरा उपकार कीजिये ॥४॥

नीच सेवक हूँ पर नाथ को निर्वाह करना ही पड़ेगा, सब बिगड़ जाने पर भी कठिन कलि की पीड़ा सहता हूँ । इस प्रस्तुत कथन को सीधे न कह कर प्रतिबिम्ब मात्र कहना 'ललित अलंकार' है । व्यङ्गार्थ में दृष्टान्त है ।

(२७२)

तुम्ह जनि मन मैलो करो लोचन जनि फेरो । सुनहु राम बिनु रावरे, लोकहू परलोकहू कोउ न कहूँ हित मेरो ॥१॥

आप मन मैला न कीजिये और न आँख फेरिये । हे रामचन्द्रजी ! सुनिये, आप के बिना लोक में भी और परलोक में भी कहीं कोई मेरा हितकारी नहीं है ॥१॥

अगुन अलायक आलसी, जानि अधम अनेरो । स्वारथ के साथिन्ह तजेउ, तिजरा को सो टोटक अवचट उलटि न हेरो ॥२॥

मुझ को गुणहीन, नालायक, काहिल, कमीना और बेकाम जान कर मतलब के साथियों ने कैसे त्याग दिया जैसे तिजारी (अँतरियाज्वर) का टोटका करके अचक्के में भी फिर लोग उसकी ओर नहीं निहारते ॥२॥

स्वार्थी सङ्गियों ने साथ तज दिया, इस बात की विशेष से समता दिखाना 'उदाहरण अलंकार' है । अँतरिया छुड़ाने को तिनपैालिया में टोटका किया जाता है; किन्तु चल देने पर करनेवाला उधर देखे तो वह निष्फल होता है इससे कोई उलट कर देखता नहीं ।

भक्ति हीन बेद बाहिरो, लखि कलिमल घेरो । देवनहूँ देव परिहरेउ, अन्याव न तिन्हको मैं अपराधी सब केरो ॥ ३ ॥

भक्ति रहित और वेद मत से बाहर देख कर कलि के पापों ने घेर लिया है । हे देव ! देवताओं ने भी त्याग दिया; परन्तु इसमें उनका अन्याय नहीं मैं सब का अपराधी हूँ ॥३॥

जब मैं ने उनकी उपासना नहीं की तब देवताओं का त्यागना न्याय है । यह वाच्यसिद्धाङ्ग गुणीभूत व्यङ्ग है ।

नाम की ओट पेट भरत हौं, पै कहावत चेरो। जगत विदित बात होइ परी, समुझिये धौं अपने लोक की वेद बड़ेरो ॥ ४ ॥

नाम की आड़ से पेट भरता हूँ परन्तु आप का दास कहाता हूँ। यह बात संसार में प्रसिद्ध हो चुकी, इसको भला आप समझिए लोक बड़ा है कि वेद ? ॥४॥

दुनियाँ मुझे रामदास कहती है, मेरी दुर्दशा से आप की लोकनिन्दा फैलेगी। लोक की बात सब जानते हैं और वेद की कोई कोई, यह व्यङ्गार्थ वाच्यार्थ के बराबर तुल्यप्रधान गुणीभूत व्यङ्ग है।

होइहै जब तब तुम्हहिं तँ, तुलसी को भलेरो। दीन दिनहु दिन बिगरिहै, बलिजाउँ बिलम किये अपनाइये सबेरो ॥ ५ ॥

जब तुलसी का भला होगा तब आप ही से। बलि जाता हूँ, देरी करने से दिनोदिन यह दीन बिगड़ेगा इससे जल्दी अपनाइये ॥५॥

(२७३)

तुम्ह तजि हौं कासौं कहउँ और को हित मेरे। दीनबन्धु सेवक सखा, आरत अनाथ पर सहज छोह केहि केरे ॥ १ ॥

आप को छोड़ कर मैं किससे कहूँ दूसरा कौन मेरा हितकारी है ? हे दीनबन्धु ! दुखी अनाथों को सेवक और मित्र बना कर उन पर स्वाभाविक स्नेह किसके हृदय में है ? (आप के सिवा ऐसा अन्य कोई नहीं है) ॥१॥

बहुत पतित भवनिधि तरे, बिनु तरनी बिनु बेरे। कृपा कोप सतिभायहू, धोखेहु तिरछेहु राम तिहारेहि हेरे ॥ २ ॥

बिना नौका और बिना जहाज के बहुतेरे पापी संसार-समुद्र से पार हो गये। हे रामचन्द्रजी ! वे आप ही की कृपा, क्रोध, सीधेभाव, धोखे से अथवा तिरछी निगाह डालने से हुए हैं ॥२॥

बिना नाव और जहाज के समुद्र पार होना अर्थात् कारण के बिना कार्य्य की सिद्धि 'प्रथम विभावना अलंकार' है।

जो चितवनि सौंधी लगइ, चितइये सबेरे। तुलसिदास अपनाइये, कीजै न ढील अब जीवन अवधि नित नेरे ॥ ३ ॥

जो चितवन अच्छी लगे जल्दी चितइये। तुलसीदास को अपनाइये देरा न कीजिये अब जीवन का निर्धारित समय दिनोदिन समीप आता है ॥३॥

(२७४)

जाउँ कहाँ ठौर है कहँ देव दुखित दीन को । को कृपालु स्वामि सारिखो, राखइ सरनागत सब अँग बल हीन को ॥ १ ॥

हे देव ! मैं कहाँ जाऊँ दीन दुःखितों को कहाँ जगह है ? स्वामी के समान कृपालु कौन है जो सब बल के अङ्गों से रहित को शरण आने पर रक्षा करता हो ? ॥१॥

गनिहिं गुनिहिं साहेब चहइँ, सेवा समीचीन को । अधम अगुन आलसिन को, पालिबो फबि आयेउ रघुनायक नवीन को ॥२॥

धनी को, गुणवान को और अच्छी सेवा करनेवाले (सेवक) को मालिक चाहते हैं । नये नये पापी, निर्गुणी और काहिलों का पालन करना रघुनाथजी को ही फबता आया है ॥२॥

मुख कहा कहउँ बिदित है, जी की प्रभु प्रबीन को । तिहूँ काल तिहुँ लोक मँ, एक टेक रावरी तुलसी से मन मलीन को ॥३॥

मुख से क्या कहूँ प्रवीण स्वामी को जी की बात जाहिर है । तीनों काल और तीनों लोक में तुलसी के समान मलिन मन को एक आप का ही सहारा है ॥३॥

(२७५)

द्वार द्वार दीनता कही काढ़ि रद परि पाहूँ । हैं दयाल दुनी दसौं दिसा, दुख दोष दलन छम कियेउ न सम्भाषन काहूँ ॥१॥

दरवाजे दरवाजे दाँत काढ़ कर और पाँव पड़ कर मैं ने अपनी दीनता कही, दुनियाँ में दसों दिशा दुःख दोष नसाने में समर्थ दयालु हैं; किन्तु किसी ने अच्छी तरह बात तक नहीं की ॥१॥

त्वच तजत कुटिलकीट ज्यौं, तजेउ मातु पिताहूँ । काहे को रोष दोष काहि धौं, मेरेही अभाग मो सौं सकुचत सब छुइ छाहूँ ॥२॥

जैसे साँप केंचुली छोड़ता है उसी तरह माता-पिता ने भी मुझे तज दिया । उन पर काहे को क्रोध करूँ इसमें किसका दोष है, न जाने मेरे ही दुर्भाग्य से सब मेरी परछाहीं छूने में लजाते हैं ॥२॥

दुखित देखि सन्तन्ह कहेउ, सोचइ जनि मन माहूँ । तो से पसु पाँवर पातकी, परिहरे न सरन गये रघुबर ओर निबाहूँ ॥३॥

मुझे दुःखित देख कर सन्तों ने कहा कि तू मन में सोच मत कर। तेरे समान पशु नीच पापी शरण गये उनका रघुनाथजी की ओर निर्वाह हुआ, उन्हों ने त्यागा नहीं ॥३॥

तुलसी तिहारो भये सुखी भयेउ, प्रीति प्रतीति बिनाहूँ। नाम की महिमा सील नाथ को, मेरो भलो बिलोकि अब तैं सकुचाहुँ सिहाहूँ ॥ ४ ॥

तुलसी आप का (दास) होने से विना प्रीति और विश्वास के भी सुखी हुआ। नाम की महिमा और स्वामी के शील को देख कर अबतक सकुचाता और सिहाता हूँ कि मुझ कपटी सेवक का भला किया ॥ ४ ॥

मुझसे अधम पर इतनी बड़ी कृपा की, स्वामी की उदारता व्यञ्जित करना व्यङ्ग है।

(२७६)

कहा न कियेउँ कहाँ न गयेउँ सीस काहि न नायो। राम रावरो बिनु भये जन, जनमि जनमि जग दुख दसहूँ दिसि पायो ॥१॥

क्या नहीं किया, कहाँ नहीं गया और किसको सिर नहीं नवाया। हे रामचन्द्रजी! विना आप का दास हुए जगत में बार बार जन्म लेकर दसों दिशाओं में दुःख ही पाया ॥ १ ॥

विना रामदास हुए सुख का अभाव वर्णन 'प्रथम विनोक्ति अलंकार' है। जनमि शब्द रुचिरता के लिये दो बार आया 'पुनरुक्तिप्रकाश' है और अनुप्रास की संसृष्टि है।

आस बिबस खास दास होइ, नीच प्रभुनि जनायों। हाहा करि दीनता कही, द्वार द्वार बार बार परी न छार मुहँ बायो ॥ २ ॥

आशा के आधीन नीच स्वामियों का विशेष दास होकर जनाया। हाय हाय करके बार बार दरवाजे दरवाजे गरीबी कही और मुँह बाया; किन्तु खाक भी न पड़ी (भोजन मिलना तो दूर रहा) ॥ २ ॥

द्वार द्वार और बार बार में पुनरुक्तिप्रकाश है।

असन बसन बिन बावरो, जहँ तहँ उठि धायो। मही मान प्रिय प्रान तैं, तजि खोलि खलन्ह आगे खिन खिन पेट खलायो ॥३॥

भोजन, वस्त्र के विना पगलाकर जहाँ तहाँ उठ कर दौड़ा। धरती पर प्रतिष्ठा प्राण से बढ़ कर प्यारी है उसको त्याग कर क्षण क्षण दुष्टों के सामने पेट खोल कर खलाया ॥ ३ ॥

अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

नाथ हाथ कछु नहिँ लगेउ, लालच ललचायो । साँच कहउँ नाच कौन सो, जो न मोहि लोभ लघु निलज नचायो ॥४॥

हे नाथ! लालच से ललचाता फिरा किन्तु हाथ कुछ नहीं लगा। सच कहता हूँ वह कौन सी नाच है जो तुच्छ लोभ ने मुझे निर्लज्ज बना कर न नचाया हो ॥ ४ ॥

स्रवन नयन मग मन लगेउ, सब थल पतितायो । मूँड़ मारि हिय हारि के, हित हेरि हहरि अब चरन सरन तकि आयो ॥५॥

कान और आँख के रास्ते मन लगा; इसने सब स्थान में मुझे नीचे गिराया। सिर पीट कर हृदय में हार कर डर से अब आप के चरणों की शरण में कल्याण देख ताक कर आया हूँ (मेरी रक्षा कीजिये) ॥ ५ ॥

दसरथ के समरथ तुहीं, त्रिभुवन जस गायो । तुलसी नमत अवलोकिये, वलि बाँह बोल देइ बिरदावली बुलायो ॥ ६ ॥

हे दशरथनन्दन! आप ही समर्थ हैं तीनों लोक यश गाता है। प्रणाम करते तुलसी को देखिये-बलि जाता हूँ, आप की नामवरी ने वचन का भरोसा देकर मुझे बुलाया है ॥ ६ ॥

(२७७)

राम राय बिनु रावरे मेरो को हित साँचो । स्वामि सहित सब सौं कहउँ, सुनि गुनि बिसेष कोउ रेख दूसरी खाँचो ॥ १ ॥

हे राजा रामचन्द्रजी! आप के बिना मेरा सच्चा उपकारी कौन है? स्वामी के सहित सब से कहता हूँ, कोई बढ़ कर हो तो मेरी बात सुन कर और विचार कर दूसरी रेखा खींचे अर्थात् बतलावे ऐसा हितैषी कौन है? ॥ १ ॥

देह जीव जोग के सखा, मृषा टाँचन्ह टाँचो । किये बिचार सार कदली ज्यौँ, मनि कनक सङ्ग लघु लसत बीच बिच काँचो ॥२॥

देह और जीव की मित्रता संयोग तक है वह मिथ्या तागे से टँका है। विचार करने से कैसा सार हीन है जैसे केले का वृक्ष, इनका सङ्ग ऐसा है जैसे मणि और सुवर्ण के बीच बीच में तुच्छ काँच शोभित होता है ॥ २ ॥

देह-जीव की मित्रता स्थिर नहीं मिथ्या है, इसकी विशेष से समता दिखाना, उदाहरण अलंङ्कार, है। शरीर की शोभा जीव से है जैसे सुवर्ण और रत्न के बीच काँच का टुकड़ा, यह भी उदाहरण है। अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है।

विनयपत्रिका दीन की, बाप आपही बाँचो । हिये हेरि तुलसी लिखी, सो सुभाय सही करि बहुरि पूछिये पाँचो ॥ ३ ॥

हे पिताजी ! इस दीन की विनय-पत्रिका आप ही बाँचिये । तुलसी ने हृदय से देख कर लिखी है उस पर स्वभाव से हस्ताक्षर करके फिर पञ्चों से पूछिये ॥ ३ ॥

पञ्च-श्रीजानकी, भरत, लक्ष्मण, शत्रुहन और हनूमानजी हैं ।

(२७८)

पवनसुवन रिपुदवन भरत लाललखन दीन की । निज निज अवसर सुधि किये, बलिजाउँ दास आस पूजिहै खास खीन की ॥१॥

हे पवनकुमार ! शत्रुहनजी, भरतजी और लषणलालजी ! बलि जाता हूँ, मुझ दीन की अपने अपने मौके से सुध किये रहिये तो दुर्बल दास की आशा निश्चय ही पूरी होगी ॥ १ ॥

अनुप्रास और पुनरुक्तिप्रकाश की संसृष्टि है ।

राज द्वार भली सब कहैं, साधु समीचीन की । सुकृत सुजस साहेब कृपा, स्वारथ परमारथ गति भये गति विहीन की ॥ २ ॥

राजद्वार पर सज्जन और अच्छे पुरुषों की सब अच्छी ही कहते हैं । गति विहीन (अपङ्ग) की खबर स्वामी से करने पर उसे स्वार्थ और परमार्थ का सहारा होता है, इत्तला करनेवाले को इस दया से पुण्य और सुयश मिलता है ॥ २ ॥

समय सँभारि सुधारबी, तुलसी मलीन की । प्रीति रीति समुझाइबी, नतपाल कृपालहि परमिति पराधीन की ॥ ३ ॥

समयानुसार सँभाल करके मलिन तुलसी की सुधारियेगा । दीनपालक कृपालु स्वामी को प्रीति की रीति और पराधीनता की सीमा कह कर समझाइयेगा अर्थात् कलि के अधीन तुलसी आप से प्रीति की रीति निबाहता है ॥ ३ ॥

"समय सँभारि" शब्द में लक्षणामूलक ध्वनि है कि राज दरबार में मौका पाने पर चर्चा चलाना ठीक होता है, जब दीन पराधीनों का जिक्र उठे तब ख़्याल करके आप लोग मेरी याद दिला देंगे ।

(२७९)

मारुति मन रुचि भरत की लखि लखन कही है । कलि-कालहु नाथ नाम सौं, प्रतीति प्रीति एक किङ्कर की निबही है ॥१॥

पवनकुमार और भरतजी के मन की इच्छा लख कर लक्ष्मणजी ने (दरबार में तुलसी की बात) कही है। हे नाथ ! कलिकाल में भी आप के नाम से विश्वास और प्रीति एक सेवक की पूरी पड़ी है ॥१॥

यहाँ 'लखन' संज्ञा साभिप्राय है, क्योंकि लखनेवाला ही समय की बात लख सकता है। यह 'परिकराङ्कुर अलंकार' है। व्यङ्गार्थ से कलि नाम में प्रीति निवाहने का बाधक है उसके राज्य में रह कर नाम से प्रेम निवाहना 'तृतीय विभावना' की ध्वनि है। अनुप्रास की संसृष्टि है।

सकल सभा सुनि लेइ उठी, जानि रीति रही है। कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहिब बाँह गही है ॥२॥

सुन कर सारी सभा ले उठी अर्थात् सब लोग साथ ही बोले कि उसकी रीति हमलोगों की जानी हुई है। ग़रीबनेवाज (रामचन्द्रजी) की कृपा है देखता हूँ स्वामी ने उस ग़रीब की बाँह पकड़ी है (फिर उसकी प्रीति क्यों न निबहेगी ?) ॥२॥

बिहँसि राम कहेउ सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है। मुदित माथ नावत बनी, तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ सही है ॥३॥

रामचन्द्रजी ने हँस कर कहा सत्य है (श्रीजानकी के द्वारा) मैं ने भी ख़बर पाई है। तुलसी अनाथ की बन गई (विनय-पत्रिका पर) रघुनाथजी के हस्ताक्षर हुए, यह जान प्रसन्नता से मस्तक नवाता है ॥३॥

शुभमस्तु-मङ्गलमस्तु

रामभक्ति अरु मुक्ति प्रद, हरनि कलुष भव त्रास।
विनय-पत्रिका सम सबहि, गावत "वीर" सुपास ॥

इतिशम्।

राग-परिचय

विनय-पत्रिका में मलार, भैरव, सारंग, असावरी, कल्याण, कान्हरा, केदारा, गौरी, जयतिश्री, टोड़ी, धनाश्री, नट, विलावल, मारू, रामकली, ललित, वसन्त, विभास, सूहो, सोरठ, सोरठी, राग-रागिनियों के नाम आये हैं। पाठकों के ज्ञानार्थ उनका संक्षेप में परिचय कराना आवश्यक है। यद्यपि इनके वर्णन में बहुत ही मतभेद है, कोई संगीताचार्य कुछ और कोई कुछ कहते हैं जिससे ठीक ठीक पता लगाना अत्यन्त कठिन है तो भी कतिपय आचार्यों के मत का संग्रह करके सारांश प्रकाशित किया जाता है। तीनों लोकों के निवासियों के मन को जो आनन्दित करता है उसको राग कहते हैं। रागों की उत्पत्ति शिव-पार्वती के संयोग से वर्णन की गई है।

छे राग

भरत मुनि और हनुमानजी के मत से राग छे प्रकार के हैं, उनके नाम भैरव, कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री और मेघ राग। सब रागों की पाँच पाँच रागिनियाँ हैं। सोमेश्वर और कल्लिनाथ के मतानुसार श्री राग, वसन्त, पञ्चम, भैरव, मेघ और नटनारायण ये छे राग हैं। प्रत्येक रागों की छे छे रागिनियाँ, आठ आठ पुत्र और आठ आठ पुत्र वधुएँ हैं। कुछ आचार्यों के मत से भैरव, मालकोस, हिण्डोल, दीपक, श्री और मेघ ये छे राग हैं, इसी अंतिम मत के अनुसार नीचे के चित्र में राग-रागिनियाँ और उनके गाने का समय आदि दिखाया गया है।

रागिनियों के नाम

(१) धनाश्री, मालश्री, मधुमाधवी, सिन्धवी, असावरी और भैरवी ये छओं भैरव राग की रागिनी हैं।

(२) टोड़ी, ललिता, गुणकली, पटमञ्जरी, गुर्ज्जरी, विभास ये छओं मालकोस की रागिनी हैं।

(३) मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, बराड़ी, मोरहाटी, ये छओं हिण्डोल की रागिनी हैं।

(४) नाटिका, भूपाली, रामकली, गड़ा, कामोदा, और कल्याणी दीपक राग की रागिनी हैं।

(५) गान्धारी, शुभगा, गौरी, कोमारिका, काफ़ी, वैरागी छओं श्री राग की रागिनी हैं।

(६) विलावल, पुरवी, कान्हड़ा, माधवी, कीड़ा और केदारा ये छओं मेघ राग की रागिनी हैं।

इसके अतिरिक्त ककुभा, कमल, कर्णाट, कर्णाटी, कलिंग, कल्याण, कामोदी, किरोदस्त कुन्तल, कुसुम वा कुसुम्भ, खम्भावती वा खम्माच, गान्धार, गौड़ी, चञ्चरी, चम्पक, जयजयवन्ती, जयतिश्री वा जयश्री, टङ्का, देशाखो, देशी, नट, नटनारायण, पञ्चम, पञ्चमी, बंगाली, बिहागड़ा, मारू, मालव, ललित, लहित, सूहो, सोरठ, सोरठी, हिमाल, आदि राग रागिनियों के नाम मिलते हैं। ये सब किसी के मत से रागों के पुत्र पुत्रवधू और रागिनियाँ हैं। संगीत शास्त्र में यह भी कहा गया है कि श्रीकृष्णचन्द्रजी के सामने गोपियों ने एक साथ गीत गाना आरम्भ किया इस कारण राग-रागिनियों के सोलह हज़ार एक सौ आठ भेद हुए किन्तु उनमें अब केवल छत्तीस भेद संसार में सुनाई पड़ते हैं। मतभेद इतना है कि निश्चित रूप से कुछ कहा नहीं जा सकता, सब का सार संग्रह कर के राग रागिनियों के नाम और उनके गाने का समय नीचे के चित्र में प्रदर्शित किया जाता है तथा जहाँ तक प्राप्त हो सका मतभेदों का भी उल्लेख कर दिया गया है।

सप्तस्वर

षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद इन्हीं सातों स्वरों में सब राग-रागिनियाँ गाई जाती हैं। षड्ज का मोर के, ऋषभ का पपीहा के, गान्धार का बकरे के, मध्यम का बकुले के, पंचम का कोयल के, धैवत का मेढ़क के और निषाद का हाथी के स्वर के समान उच्चारण होता है।

भिन्नराग-रागिनियाँ

(१) ककुभा—इसको कोई कोई मालकोस की पाँचवीं रागिनी मानते हैं जो दिन के दूसरे पहर में गाई जाती है।

(२) कमल—यह दीपक राग का दूसरा पुत्र है जिसकी भार्या जयजयवन्ती है।

(३) कर्णाट—मेघ राग का दूसरा पुत्र है जिसके गाने का समय रात का पहला पहर है।

(४) कर्णाटी—किसी के मत से मालकोस की और किसी के मत से दीपक की रागिनी है।

(५) कलिंग—कलिंगड़ा राग जो दीपक का पुत्र कहा जाता है।

(६) कल्याण—किसी के मत से यह श्रीराग का सातवाँ पुत्र जिसके गाने का समय रात का पहला पहर है।

(७) कामोदी—कोई इसको मालकोस के पुत्र कामोद की स्त्री कहते हैं और कोई दीपक की चौथी रागिनी मानते हैं।

(८) किरोदस्त—यह दीपक राग का पुत्र है।

(९) कुन्तल—यह भी दीपक का चौथा पुत्र है जिसके गाने का समय ग्रीष्म ऋतु का मध्याह्नकाल है।

(१०) कुसुम्भ—यह मेघ राग का पुत्र जिसके गाने का समय मध्याह्नकाल है।

(११) खम्भावती—इसको कोई मालकोस की दूसरी रागिनी कहते हैं जिसके गाने का समय आधीरात है।

(१२) गान्धार—किसी के मत से भैरव का और किसी के मत से दीपक का पुत्र जिसके गाने का समय प्रातःकाल है।

(१३) गौड़ी—कोई इसको कल्याण का एक भेद मानते हैं और कोई रागिनी कहते हैं। गाने का समय रात का प्रथम पहर है।

(१४) चञ्चरी—चाँचरि राग जो होली में गाया जाता है।

(१५) चम्पक—दीपक राग का पुत्र जिसके गाने का समय दिन का तीसरा पहर है।

(१६) जयजयवन्ती—दीपक के पुत्र की भार्या।

(१७) जयश्री वा जयतिश्री—कुछ लोग इसे देशकार राग की रागिनी कहते हैं गाने का समय सायंकाल है।

(१८) टक्का—किसी के मत से यह मेघ राग की रागिनी है। जो त्रिपड्ज और आदि मूर्छना युक्त होती है।

(१९) देशाखी—किसी के मत से हिण्डोल की दूसरी रागिनी जिसके गाने का समय वसन्त का मध्याह्नकाल है।

(२०) देशी—किसी के मत से दीपक की भार्या जिसके गाने का समय ग्रीष्म का मध्याह्नकाल है।

(२१) नट—किसी के मत से यह दीपक का पुत्र है।

(२२) नटनारायण—किसी के मत से छे रागों में से एक राग और किसी के मत से मेघ राग का तीसरा पुत्र है।

(२३) पंचम—कोई आचार्य इसको छे रागों में एक राग मानते हैं कोई हिण्डोल का पुत्र और कोई भैरव का पुत्र कहते हैं।

(२४) पंचमी—किसी के मत से वसन्त की रागिनी है।

(२५) वंगाली—किसी के मत से यह भैरव राग की भार्या है।

(२६) विहागड़ा—कोई इसको हिण्डोल की रागिनी कहते हैं जिसके गाने का समय रात का तीसरा पहर है।

(२७) मारू—कोई वसन्त का पुत्र कहते हैं। जिसके गाने का समय युद्ध काल है।

(२८) मालव—किसी के मत से यह श्री राग की रागिनी जिसके गाने का समय दिन का चौथा पहर है।

(२९) ललित—किसी के मत से हिण्डोल का पुत्र और किसी के मत से उसकी भार्या है।

(३०) लहित—यह दीपक राग का पुत्र है।

(३१) सूहो—किसी के मत से यह हिण्डोल राग की पुत्रवधू है। इसको सोहनी भी कहते हैं।

(३२) सोरठ—किसी के मत से हिण्डोल का पुत्र जिसके गाने का समय आधीरात है।

(३३) सोरठी—यह सोरठ की भार्या है।

(३४) हिमाल—इसको कोई दीपक राग का पुत्र कहते हैं।

(१) भैरव राग

(ग्रीष्म ऋतु का प्रातःकाल)

रागिनी

१—धनाश्री (दिन का तीसरा पहर) यह भी श्रीराग की भार्या कही जाती है।

२—मालश्री (दिन का चौथा पहर) किसी के मत से यह श्री राग की रागिनी है।

३—मधुमाधवी (प्रातःकाल)

४—सिन्धवी (दिन का चौथा पहर)

५—असावरी वा आशावरी (दिन का दूसरा पहर) किसी के मत से यह श्री राग की रागिनी है।

६—भैरवी (प्रातःकाल)

(२) मालकोस राग

(शरद ऋतु की रात्रि का चौथा पहर)

रागिनी

१—टोड़ी (दिन का दूसरा पहर) किसी के मत से भैरव की और किसी के मत से यह वसन्त की रागिनी है।

२—ललिता (प्रातःकाल) कोई खम्मावती को मालकोस की दूसरी रागिनी मानते हैं।

३—गुणकली (दिन का पहला पहर)

४—पटमंजरी (आधीरात से प्रातःकाल) किसी के मत से यह हिण्डोल की रागिनी है।

५—गुर्जरी (दिन का प्रथम पहर) कोई ककुभा को मालकोस की पाँचवीं रागिनी मानते हैं। किसी के मत से यह मेघ की और किसी के मत से दीपक की रागिनी है।

६—विभास (प्रातःकाल)

(४) दीपक राग

(हेमन्त ऋतु की आधीरात)

रागिनी

१—नाटिका (सायंकाल) किसी के मत से दीपक की पहली रागिनी देशी है और नाटिका तीसरी रागिनी है।

२—भूपाली (सायंकाल) किसी के मत से यह मेघ की रागिनी है। और किसी के मत से दीपक की दूसरी रागिनी कामोदी है।

३—रामकली (दिन का पहला पहर) किसी के मत से यह हिण्डोल की रागिनी है।

४—गड़ा (प्रातःकाल)

५—कामोदा (दिन का दूसरा पहर) किसी के मत से मालकोस के पुत्र कामोद की भार्या है। किसी के मत से सारंग की पाँचवीं रागिनी केदारी है।

६—कल्याणी (रात का पहला पहर) किसी के मत से यह श्रीराग के सातवें पुत्र कल्याण की भार्या है।

(५) श्री वा सारंग राग
(शिशिर ऋतु के दिनान्त में)
रागिनी
गान्धारी (सायंकाल) इसको कोई मेघ राग की पाँचवीं रागिनी कहते हैं। १
शुभगा (प्रातःकाल) २
गौरी (दिन का चौथा पहर) किसी के मत से यह दीपक की और किसी के मत से मालकोस की रागिनी है। ३
कौमारिका (प्रातःकाल) ४
काफी वा बेलोयारी (प्रातःकाल) ५
वैरागी (मध्याह्नकाल) ६
(६) मेघ वा मलार राग
(वर्षा ऋतु का प्रातःकाल)
रागिनी
बिलावल (दिन का पहला पहर) किसी के मत से हिण्डोल की रागिनी और किसी के मत से दीपक का पुत्र है। १
पूरवी (सायंकाल) २
कान्हड़ा (रात का दूसरा पहर) किसी के मत से यह दीपक की रागिनी है। ३
माधवी (सायंकाल) ४
कौड़ा (मध्याह्नकाल) ५
केदारा (रात का दूसरा पहर) किसी के मत में यह दीपक की रागिनी तथा मेघ का चौथा पुत्र है। ६

संगीत-विचार

संगीतशास्त्र इस देश में किसी समय उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच चुका था। भरत मुनि, हनुमान्जी, कल्लिनाथ, और सोमेश्वर प्रभृति महापुरुष इस विद्या के आचार्य हो गये हैं। उनके बनाये ग्रन्थों का अवलोकन करने से इसके महत्व का पूरा पता चलता है। संगीत चौदहविद्या में एक विद्या है। विद्वानों ने 'गायनः पंचमों वेदः' नाम से इसको गन्धर्व वेद कहा है। जो साम वेद का उपवेद माना जाता है। मनुष्यादिकों की बात तो दूर रहे संगीत से पक्षी आदि जड़ जीव मोहित हो जाते हैं। संगीत में कुशल प्राणी अपने मधुर और समयोचित आलाप से बिना अग्नि के दीपक प्रज्वलित करता, जलवृष्टि करा देता तथा पत्थर को पिघला कर पानी के समान बना देता है। तानसेन और बैजू बावड़े के सम्बन्ध में ऐसी कहावतें अब तक लोग कहा करते हैं। परन्तु काल क्रम से वर्तमान में इस विद्या का बड़ा ह्रास दिखाई देता है इस शास्त्र के पूर्ण मर्मज्ञों की संख्या इस समय देश में बहुत थोड़ी है सूर, तुलसी, कबीर, आदि महात्माओं* के पद ठीक ठीक तालस्वर से गानेवाले सहस्रों में कोई एक मिलेंगे। पर अधिकांश ठुमरी, दादरा, गज़ल, कजली, टप्पे, को ही राग-रागिनियों का समुदाय मान कर गायनाचार्य कहलानेवाले देखे जाते हैं। हर्ष का विषय है कि कतिपय प्रसिद्ध नगरों में गान महा;विद्यालय खुल गये हैं और उन में गान विद्या की अच्छी शिक्षा मिलती है। जिससे समयान्तर में बहुत कुछ उन्नति की आशा की जाती है।

इतिशम्।

---

* इन महात्माओं के शब्द बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग ; से मँगाइए।

लोक परलोक हितकारी

सचित्र

(चौथा संस्करण)

यह पुस्तक लोक और परलोक सम्बन्धी शिक्षाओं का भण्डार है। इसमें संतों, महात्माओं और विद्वानों के उन वाक्यों का संग्रह है जिसके अनुसार चलने से मनुष्य अपना लोक परलोक दोनों शान्तिमय बना सकता है, इसके प्रत्येक वाक्य अमूल्य हैं। हिन्दी प्रेमी जनों से सादर निवेदन है कि इसकी एक प्रति खरीद कर पुण्य के भागी बनें। इस पुस्तक की उपयोगिता समझ कर इसका मूल्य लागत मात्र रक्खा गया है और इसकी आय धर्मार्थ में व्यय की जाती है।

बेजिल्द दाम ॥ﺎ) सजिल्द दाम १।)

प्रेम तपस्या

प्रेम वह वस्तु है जिसके बिना मनुष्य जीवन पशु तुल्य है, इस पुस्तक में दाम्पत्य प्रेम मानव प्रेम का भाव इस ढाँचे में खींचा गया है कि पढ़ने वालों के चित्त पर गहरा असर पहुँचता है, इसमें शुद्ध और सात्विक प्रेम दर्शाया गया है। पात्रों का चरित्र चित्रण भी विचित्र ढंग से किया गया है।

मूल्य केवल ॥)

कर्मफल

या

जैसी करनी वैसी भरनी

भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्म ही को प्रधान माना है, इससे स्पष्ट है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा फल पाता है, भले बुरे का क्या परिणाम होता है, यह अभूतपूर्व घटनाओं द्वारा बड़ी ही सरल और रोचक भाषा में वर्णन किया गया है। यह बड़ा ही चित्ताकर्षक उपन्यास है। मूल्य ॥।)

संतबानी पुस्तकमाला

[जीवन-चरित्र हर महात्मा का उन की बानी के आदि में दिया है]

दरिया साहिब (बिहार) का दरियासागर	।≡)॥
दरिया साहिब (बिहार) के चुने हुए पद और साखी	।−
दरिया साहिब (मारवाड़ वाले) की बानी	।≡
भीखा साहिब की शब्दावली	॥=)॥
गुलाल साहिब की बानी	॥।=
बाबा मलूकदास जी की बानी	।)
गुसाईं तुलसीदास जी की बारहमासी	−)
यारी साहिब की रत्नावली	=)
बुल्ला साहिब का शब्दसार	।)
केशवदास जी की अमीघूँट	−)॥
धरनीदास जी की बानी	।=)
मीरा बाई की शब्दावली	॥)
सहजो बाई का सहज-प्रकाश	।=)॥
दया बाई की बानी	।)
संतबानी-संग्रह, भाग १ [साखी]	१॥)
[प्रत्येक महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित]	
संतबानी-संग्रह, भाग २ [शब्द]	१॥
[ऐसे महात्माओं के संक्षिप्त जीवन-चरित्र सहित जो पहले भाग में नहीं हैं]	
	कुल ३२।−)
अहिल्या बाई	=)

दाम में डाक महसूल व रजिस्टरी शामिल नहीं है वह इस के ऊपर लिया जाएगा।

(कृपा कर अपना पता साफ़ साफ़ लिखिए)

मिलने का पता——

मैनेजर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद।